हम प्रशांत पंजियार, सुकांत चटर्जी, मंजु काला, रामनरेश महाराज, पी० पी० घोष, हिरण्मय धर, निर्मल सेनगुप्ता, हर्ष सेठी, प्रोफेसर नितीश आर० ओ, अरविन्द नारायण दास, प्रेमशंकर दुबे, अरुण कुमार, सुरेश शर्मा, अशोक शुक्ला तथा अन्य तमाम लोगों के आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक के लिखने में साधनों और विचारों से अपना अमूल्य सहयोग दिया। हम भोजपुर के उन ढेर सारे लोगों के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने खुद को गुमनाम रखना बेहतर समझा।

प्रस्तावना

1977 के मार्च के दूसरे हफ़्ते की बात है। एक खटारा जीप में हम चार लोग—दो पत्रकार, खेतिहर मज़दूरों की स्थानीय महिला नेता बनारसी देवी गुप्ता के पति और मैं—दक्षिण बिहार में भोजपुर जिले के सहार ब्लाक में स्थित गुरपा गाँव की ओर चले जा रहे थे। गर्मी और धूल का ऐसा आलम था कि सड़क मुश्किल से ही दिखायी दे रही थी।

हमारे गाइड ने हमें बताया कि प्रभावकारी सोन नहर व्यवस्था के बावजूद भोजपुर खासतौर से अकालग्रस्त इलाक़ा है। रास्ते में एक गाँव में हमने पानी पीने के लिए ड्राइवर से अपनी जीप रुकवायी। जैसे ही हमारी जीप बावनगावा के सिवान में पहुँची कि खेल में मशगूल लड़कों का एक झुंड 'पुलिस, पुलिस' चिल्लाते हुए तितर-बितर हो गया। जीप से जब हम बाहर निकले तो गाँव का एक भी आदमी हमसे मिलने आगे नहीं बढ़ा। उन्हें यह समझाने में हमें खासी मुसीबत का सामना करना पड़ा कि हम न तो पुलिस के आदमी हैं और न किसी तरह के मुखबिर ही हैं।

हमारे गाइड ने हमें बताया कि आरा मुफ़स्सिल ब्लाक का यह गाँव बावनगावा 'नक्सलाइट' गाँव नहीं है। लेकिन जब से पुलिस ने यहाँ एक बार छापा मारा तब से लोग काफ़ी शक्की हो गये हैं। जीप देखते ही लोगों में दहशत फैल जाती है। फिर भी भोजपुर के 'अशांत क्षेत्रों'—सहार, संदेस तरारी और उदवंतनगर ब्लाकों—में लोग बुज़दिली के शिकार नहीं थे। वे जीप की आवाज़ सुनकर भागते नहीं थे। रास्ते में हम सहार ब्लाक के एकवारी गाँव में रुके जिसे 'भोजपुर का नक्सलबाड़ी' कहा जाता है—यहाँ लोग बस शक की निगाह से हमें देखते रहे। यह परिवर्तन बहुत साफ़ दिखायी देता था। बाद में, बिहार मिलिट्री पुलिस (बी० एम० पी०) के एक जवान के साथ हमारी लम्बी बातचीत हुई और उस जवान ने बताया कि "नक्सलवादी क्षेत्रों में आप वहाँ की स्थानीय जनता पर क़तई भरोसा नहीं कर सकते।"

आधी रात के लगभग हम गुरपा पहुँचे। बाहर एकदम सन्नाटा था और इस सन्नाटे में केवल झींगुरों की आवाज़ ख़लल डाल रही थी। कुछ ही दिनों पहले 11 मार्च को यह गाँव भट्ठी बना हुआ था। यहाँ के सबसे बड़े भूमिहार ज़मींदार धरम पाण्डे के लठैतों ने बदले की एक कार्रवाई में गुरपा की हरिजन बस्ती को जलाकर स्वाहा कर दिया था। जैसे ही हमने गाँव में प्रवेश किया, पत्रकारों में सक्रियता आ गयी और उनके कैमरे की फ़्लैश लाइट अँधेरे में चमक उठी। गुरपा के दूसरे छोर पर पड़ी पुलिस छावनी में बेचैनी फैल गयी।

दरअसल वे पहले ही हमारी तरफ बढ़ने लगे थे। गाँव वाले हमसे लगातार कह रहे थे कि हमें उनसे जाकर मिल लेना चाहिए, वरना वे समझेंगे कि गाँव में नक्सलाइट पहुँच गये हैं। एक साल पहले 11 अगस्त, 1976 को महिला नक्सलवादी शीला चटर्जी के नेतृत्व में फ़ौजी वर्दी पहने नक्सलवादियों के एक दस्ते ने शाम के धुँधलके में गुरपा में प्रवेश किया था और पाँच भूमिहारों को गोलियों से भून डाला था। इस वारदात के बाद से ही तपेश्वर पाण्डे के मकान पर पुलिस छावनी पड़ी थी। अचानक एक कड़कती आवाज़ सुनायी दी—"रुको!"

गाँव के बीचोंबीच भूमिहारों और गुरपा के हरिजनों की विभाजन-रेखा तक जिस लड़के ने हमें हिफ़ाज़त के साथ पहुँचाया था, उसका कहीं अता-पता न था। हम एकदम हक्के-बक्के हो गये और चारों ओर से हमारे ऊपर पुलिस की टार्चों की रोशनी टूट पड़ी थी और उनकी बंदूकों की नालें हमारी ओर तनी हुई थीं। हमने अपने हाथ उठा लिये और हममें से एक बताने लगा, "हम लोग पत्रकार हैं।" दहशत ख़त्म होने के बाद अब हम एक टूटी-फूटी चारपाई पर बैठ गये थे और हमारे परिचय से अब तक संतुष्ट नज़र आ रहे पुलिस अधिकारी ने कहा, "हम करें भी तो क्या? हमें सावधानी तो बरतनी ही पड़ती है।"

गुरपा, बहुआरा, सोनाटोला, एकवारी, दुल्लमचक तथा ज़िले के जिन असंख्य गाँवों में हम बाद में गये, हमने देखा कि वहाँ एक बेचैनी-भरी शांति विद्यमान थी और बंदूकधारी पुलिस तैनात थी। मैली और सिलवट-भरी वर्दियों में तैनात मामूली-सी तनख़्वाह वाले पुलिस कर्मचारी बड़ी मुश्किल में अपना वक़्त काट रहे थे। कुछ ने तो यह भी स्वीकार किया कि यहाँ ऐसी हालत है कि दिन-ब-दिन उनकी हालत खस्ता होती जा रही है। दरअसल वे चाहते थे कि किसी तरह वे हमेशा के लिए भोजपुर से कहीं दूर चले जायें।

जब मैं उत्तर बिहार के छपरा क़स्बे के कॉलेज में पहुँचा—जहाँ मैं अँग्रेज़ी पढ़ाता था—उस समय भी गुरपा की याद मेरे मस्तिष्क में बनी हुई थी। यहाँ पहुँचकर सबसे पहले मैंने 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' के लिए एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था "भोजपुर : आतंक की एक कहानी।" लेकिन यह पीड़ा बनी रही। जब भी मैं अपने छात्रों और सहकर्मियों को भोजपुर की घटनाओं के बारे में बताता, वे यूँ ही सर हिला देते। लेकिन उनमें से एक ने मुझे बताया कि इस कॉलेज का एक भूतपूर्व छात्र जगदीश महतो इस आंदोलन के संस्थापकों में से था। गंगा के उस पार बसे इस ज़िले के बारे में उनकी बस यही जानकारी थी।

1978 में मेरे सामने एक प्रस्ताव आया। नयी दिल्ली स्थित नेशनल लेबर इंस्टीट्यूट भोजपुर में कृषक-विद्रोह के कारणों का पता लगाने की संभावनाओं पर काम कर रहा था और इसने मुझसे अनुरोध किया कि एक शोध-अनुसंधाता के रूप में मैं इस परियोजना में शामिल हो जाऊँ। मैं फ़ौरन राज़ी हो गया। विश्वविद्यालय के उप-कुलपति द्वारा छुट्टी की अर्ज़ी नामंज़ूर होने पर मैंने राजेन्द्र कॉलेज, छपरा की इस नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और तीन अन्य शोध-अनुसंधाताओं के साथ मैंने भोजपुर के कोने-कोने की यात्रा की। लगभग इन्हीं दिनों मैं राजेन्द्रसिंह यादव के सम्पर्क में आया जो भोजपुर के ज़िला मुख्यालय, आरा में 'नक्सलाइट' वकील थे।

आरा की कस्बाई कचहरी में चौड़े डील-डौल वाले यादव अपने काले कोट में अन्य मामूली दिख रहे मुंसिफ़ों और उनके मुवक्किलों से कुछ अलग ही दिखायी पड़ते थे। सड़क के पार बने एक घटिया-से ढाबे में चाय पीते हुए यादव ने कहा, "लोग मुझे 'नक्सलाइट' वकील कहते हैं क्योंकि मैं ही ज़िले के ग़रीब, अपढ़ किसानों के मुक़दमे देखता हूँ।" इन वर्षों के दौरान यादव को ज़िले के गाँवों में एक शोहरत मिल चुकी है और हिंसा की वारदातों तथा इलाक़े के लोगों के बारे में उन्हें काफ़ी जानकारी हासिल हो गयी है। ज़िले में इस ख़ूनी किसान-समस्या के बारे में यादव ने हमारे एक मूल्यवान पथ-प्रदर्शक का काम किया।

मई के अंत तक नेशनल लेबर इंस्टीट्यूट का सर्वेक्षण पूरा करने के समय तक हम पूरे मामले के एक मामूली-से अंश को ही देख सके थे। हमने ढेर सारे ब्यौरों से अपनी नोटबुकें भर लीं, लेकिन बार-बार हमारे दिमाग़ में केसरी महतो का यह वाक्य गूँजता रहा, "अगर हम वहाँ नहीं होते तो ज़िले में नक्सलबाड़ी आंदोलन कभी नहीं हो पाता।" केसरी महतो सफ़ेद बालों वाले एक व्यक्ति थे जिनसे हमारी भेंट आरा के लच्छमीपुर गाँव में हुई थी। वह त्रिवेणी संघ आंदोलन के एक पुराने सदस्य थे जिसने 1930 वाले दशक में भोजपुर के मैदानी इलाक़े को हिला दिया था। महतो ने अहीर, कुरमी और कोइरी जैसी पिछड़ी जातियों के बीच आयी पहली जागृति के बारे में विस्तार से बताया। उन्होंने बड़े पछतावे और अफ़सोस के साथ कहा, "हमारा एक संगठन था, हमारे अपने गीत थे, अपने नारे थे, पर हम हार गये। हमारे अधिकांश नेता ऊँची जाति के कांग्रेसियों के हाथ बिक गये। लेकिन समस्या बनी रही। ग़रीब बनिहार बने रहे और जुलुम भी बना रहा। जगदीश महतो और रामेश्वर अहीर ने हमारे अधूरे काम को पूरा करना

चाहा—हिंसक तरीक़े से।" बाद में भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली द्वारा परिवर्तित एक दूसरी परियोजना पर सितम्बर 1978 से जनवरी 1979 के बीच काम करते समय परम्परा और परिवर्तन, संघर्ष और निरंतरता तथा दूसरे जागरण के मार्ग की रूपरेखा स्पष्ट हुई।

ज़िले के आंदोलन के दो दौर हैं : 1930 का दशक यानी त्रिवेणी संघ का दौर और 1960 का दशक अर्थात नक्सलवादी उथल-पुथल का दौर। कई स्थानों पर यह भेद समाप्त हो जाता है—ख़ासतौर से जाति और वर्ग के संयोग-स्थल पर। समाजवादी मसीहा डॉ० राममनोहर लोहिया ने 1955 में अपनी पुस्तक 'व्हील ऑफ़ हिस्ट्री' (इतिहास-चक्र) में इस विषय का रूप प्रस्तुत करते हुए लिखा था, "वर्ग गतिशील जाति है। जाति अगतिशील वर्ग है। प्रत्येक समाज या सभ्यता ने वर्ग से जाति और जाति से वर्ग की इस क्रिया को जाना है। यह लगभग हमेशा ही न्याय और समानता की माँग से प्रेरित रहा है, लेकिन बुनियादी माँगों को अब तक हमेशा भ्रष्ट किया जाता रहा है।"

आमतौर से बिहार में और ख़ासतौर से भोजपुर में इन लुप्त उद्देश्यों की झलक बनी हुई है। दक्षिण-पश्चिम ज़िले भोजपुर के दीर्घ और अन्दर-ही-अन्दर उबलते उद्वेलन ने एक नाटकीय मोड़ ले लिया। जहाँ उत्तर बिहार में मुसहरी का आंदोलन 1971 आते-आते प्रमुख नक्सलवादी नेताओं की गिरफ़्तारी और मृत्यु के साथ समाप्त हो गया, वहीं भोजपुर की घटनाएँ महज़ एक शुरुआत साबित हुईं। जगदीश महतो, रामेश्वर अहीर, बूटन मुसहर, डॉ० निर्मल जैसे अज्ञात नामों को पुलिस की फ़ाइलों में स्थान मिलने लगा। इनमें से कोई कभी किसी कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य नहीं था। लेकिन इन लोगों ने जिस संघर्ष की शुरुआत की, वह उत्तर बंगाल के नक्सलबाड़ी और आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम के उस हथियारबंद संघर्ष की ही अगली कड़ी थी जो इस समय तक उन इलाक़ों में ख़त्म हो चला था।

हमने जो ख़ाका तैयार किया था उसमें नामों और घटनाओं की सूची बढ़ती चली गयी, जिसकी मदद से इस पुस्तक का एक प्रारंभिक प्रारूप तैयार करने में हम जुट गये। जनता संघर्षरत है—यह तय था। इसे तो पुलिस ने भी स्वीकार किया था। आंदोलन की तसवीर पेश करते समय हमने जान-बूझकर नारों को अलग छाँट दिया और स्थानीय अख़बारों में प्रकाशित ख़बरों का सहारा लिया है। पुस्तक का पहला प्रारूप पूरा होते-होते अनेक घटनाएँ घट गयीं। ख़ासतौर से रोहतास, औरंगाबाद, गया, पटना आदि अगल-बग़ल के ज़िलों में इस आंदोलन के फैलने की घटना उल्लेखनीय है। अधिकांश पुराने नेताओं की मृत्यु हो गयी और नये लोगों ने नेतृत्व संभाल लिया। हमने जो विवरण पेश किया है, वह अलग-अलग टुकड़ों में बँटा है और बहुधा जान-बूझकर ऐसा किया गया है और प्रायः विवरण

उपलब्ध न होने से भी ऐसा किया गया है। इस सिलसिले में अंतिम कोशिश हम यह करना चाहते थे कि इस सदा बदलते परिदृश्य को एक सुसंगतता दें। कोई भी पुस्तक एक अपूर्ण रचना होती है। संघर्ष के एक दशक से भी अधिक समय बीत जाने के बाद भोजपुर आज भी अन्दर-ही-अन्दर उबल रहा है। यह राज्य के लिए भले ही अभिशाप हो, पर उन सैकड़ों-हज़ारों ग़रीब किसानों के लिए आशा है जिनके लिए जगदीश महतो और रामेश्वर अहीर न्याय की प्राप्ति के लिए एक दृढ़प्रतिज्ञ बलिदान का प्रतीक बन गये हैं।

—कल्याण मुखर्जी

नयी दिल्ली
12 जून, 1980

विषय-सूची

अध्याय 1 सोन के तट पर पाँच दशक	15
अध्याय 2 दूसरी लहर	36
अध्याय 3 भोजपुर—टुकड़ों में बँटी एक कहानी	47
अध्याय 4 राज्य की हिफ़ाज़त के लिए	129
अध्याय 5 प्रतिक्रियाएँ	173

अध्याय 1

सोन के तट पर पाँच दशक

13 अप्रैल, 1977। सहार (भोजपुर) के धौरी गाँव में जिस समय डी०एस०पी० पहुँचे, लाखो की हत्या हो चुकी थी। उत्तेजित और गुमसुम बैठी औरतों ने पहले तो कुछ भी कहने से इंकार किया। फिर धीरे-धीरे उत्तेजना कम होने पर उन्होंने रुक-रुककर आतंक और दुख-भरी अपनी कहानी को भोजपुरी में बताना शुरू किया।

लाखो की भाभी पानपती देवी ने कहा, "शाम के तकरीबन सात बजे हम लोग नहर के किनारे बैठे थे। हम लोग थोड़ा छिटककर बैठे थे—लाखो खड़ी थी। इतने में विजय पीछे से आया और उसने लाखो की पीठ में छुरा भोंक दिया। लाखो कराहते हुए चीख पड़ी, 'भौजी, ओ भौजी, विजय ने हमें छुरा मार दिया।' मैं दौड़ पड़ी। तब तक विजय भाग गया था। रोपन चौधरी की पत्नी 15-वर्षीया पौना ने खुद अपनी आँखों से सारी घटना को देखा था।" उसने आगे बताया, "वह पच्छिम की ओर से दौड़ता हुआ आया और टार्च जलाकर उसे छुरा मारकर निकल भागा। उसने (विजय) लुंगी से अपना चेहरा ढँक रखा था और लाखो के क़रीब इस तरह आया गोया वह कन्हैया हो। लेकिन हमने उसे पहचान लिया...।" लालधारी चौधरी की बीवी पियारी ने उनके बयानों की पुष्टि की। एक दूसरी चश्मदीद गवाह अमीरचंद चौधरी की 20-वर्षीया पत्नी सुमित्रा ने भी इन्हीं बातों को दोहराया, "रामबच्चा के बेटे विजय ने आकर टार्च जलायी और लाखो को छुरा मार दिया। इसके बाद वह भाग निकला। फिर लाखो चीख पड़ी...।"

लाखो के पिता एक भूमिहीन मल्लाह[1] थे और वह विजय के पिता बच्चा

1. मल्लाह लोग पिछड़ी जाति के अन्तर्गत आते हैं, जो परम्परागत तौर पर नाव खेने का काम करते हैं।

नारायणसिंह के घर पर काम करते थे। पिछले तीन दिनों से विजय लाखो के पीछे हाथ धोकर पड़ा था। जैसा कि लाखो के पिता ने बताया, 13 अप्रैल को जब लाखो खेत में मवेशियों को चरा रही थी, विजय ने उससे छेड़खानी की। लाखो ने उसे फटकार दिया और इस पर विजय ने धमकी दी, "अगर तुम सही ढंग से राज़ी नहीं होती हो तो शाम तक ज़िन्दा नहीं बचोगी।" और सचमुच लाखो को अपनी जान गँवानी पड़ी।

सत्तर साल से भी पहले की बात है। शाहाबाद[1] में केसरी महतो 'मास्टर' नामक एक अहीर ज़िले के कलक्टर रदरफ़ोर्ड से बहस कर रहे थे। आरा के धमार गाँव के राजपूत ज़मींदारों ने एक दुसाध लड़की से साथ बलात्कार किया था और केसरी महतो इंसाफ़ की माँग कर रहे थे। रदरफ़ोर्ड ने अपनी लाचारी ज़ाहिर की। केसरी मास्टर ने बौखलाकर जवाब दिया, "रदरफ़ोर्ड साहब, अगर आप कुछ नहीं कर सकते तो बताइये हम क्या करें? हमारे पास पुलिस नहीं है। हमारे पास वकील नहीं हैं। हमारे पास कोई नेता नहीं है। हमारे लिए कोई काम भी नहीं है। आखिर हम करें क्या?" शाहाबाद की पिछड़ी जाति वालों की न तो कोई इज़्ज़त थी और न ही उनके लिए कोई उम्मीद।

दक्षिण बिहार का ज़िला शाहाबाद 1873 के स्थायी बंदोबस्त के अधीन आ गया था। कार्नवालिस ऐक्ट के लागू किये जाने के 26 वर्षों बाद लार्ड हेस्टिंग्स ने जिन ख़ामियों का वर्णन किया था, वह शाहाबाद के मामले में भी सच थीं। 31 दिसम्बर, 1891 के एक कार्य-विवरण में हेस्टिंग्स ने बड़ी कटुता के साथ कहा था, "यह ऐक्ट कार्नवालिस का ही प्रताप था जो निश्चय ही सद्भावपूर्ण उद्देश्यों से प्रेरित था और बहुत सोच-विचार कर तैयार किया गया था लेकिन हमें यह कष्टकर जानकारी है (इस ऐक्ट को लागू होने के कारण) कि इन सूबों की लगभग समूची पिछड़ी जाति को भीषण उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा और इस यातना को हमारे वचन की ऐसी गारंटी प्राप्त है कि हम उत्पीड़न के शिकार लोगों को राहत दिलाने में असमर्थ हैं।"

रैयतों (किसानों) पर, जिनमें से अधिकांश पिछड़ी जाति के थे, गंभीर प्रभाव पड़ा था। अँग्रेज़ लोग, जिन्होंने बिचौलियों के रूप में ज़मींदारों को खड़ा किया था, अपनी अंतरात्मा की हलकी-सी कसक के बावजूद (जैसा हेस्टिंग्स-घोषणा में नज़र आती है) इनके प्रति उदासीन बने रहे। 1873 के क़ानून के मुताबिक़ तय राजस्व की माँग, जो लगान का 9/10 भाग थी, बेहद कड़ी थी और ज़मींदारों

1. दक्षिण-पश्चिम बिहार के इस ज़िले को 1970 के दशक के आरंभ में भोजपुर और रोहतास नामक दो ज़िलों में बाँट दिया गया।

ने जिसे लगान घोषित किया था, उसमें अबवाब[1] और सलामी[2] शामिल नहीं थी। शाहाबाद में डुमराँव के महाराजा के परिवार वाले शादी-ब्याह, मातम अथवा किसी पर्व-त्योहार के अवसर पर अपनी रैयत से घी, दही और ईंधन के रूप में नाजायज़ तरीक़े से उप-कर वसूलते थे। इस नाजायज़ वसूली का भुगतान करने के अलावा किसानों के पास और कोई चारा न था।

शाहाबाद के किसानों की तकलीफ़ें पड़ोस के ज़िलों पटना और गया की तुलना में कम थीं, पर लगान के रूप में फसल देने की प्रणाली[3] से इन तकलीफ़ों में और भी इज़ाफ़ा हुआ। यह प्रणाली विवादास्पद अभिधारणाओं पर आधारित थी; इनमें से एक अवधारणा सद्भावनापूर्ण संरक्षण प्रदान करने की थी। लगान देने की फसल-लगान प्रणाली ख़ासतौर से भभुआ और सासाराम[4] में सामान्य प्रणाली थी। शाहाबाद के इलाक़ों ने, जो फसल-लगान वाले इलाक़े थे, बाद में 1930 के दशक में ज़िले को हिला देने वाले किसान आंदोलनों को काफ़ी प्रभावित किया।

दक्षिण शाहाबाद, भभुआ और सासाराम सब-डिवीज़नों के किसानों ने जहाँ अपनी माँग को फसल-लगान के बदले नकद-लगान के आंदोलन का रूप दिया, वहीं बक्सर और आरा सदर सब-डिवीज़नों के किसानों की प्रतिक्रिया अलग ढँग से सामने आयी। ओ'माले ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि फसल-लगान के बदले

1. काश्तकारों से वसूला जाने वाला ग़ैर-क़ानूनी उप-कर।
2. जोतों की दख़लकारी के हस्तांतरण के समय भुगतान की जाने वाली राशि।
3. फसल-लगान प्रणाली मुख्य रूप से बिहार के तीन ज़िलों शाहाबाद, पटना और गया में तथा कुछ हद तक भागलपुर तथा मुंगेर ज़िलों में प्रचलित है। मोटेतौर पर इन ज़िलों में फसल-लगान के भुगतान की दो प्रणालियाँ क़ायम हैं : पहली प्रणाली है अगोरबट्टा, जिसे बटाई भी कहते हैं। बटाई प्रणाली के विभिन्न रूप हैं जैसे बटाई ननसाते, बटाई निस्फ़, और बटाई टिकुली। इस प्रणाली के अन्तर्गत, यदि कोई और समझौता न हुआ हो तो सामान्य तौर पर फ़सल का आधा हिस्सा ज़मींदार को मिलता है। दूसरे, भाउली अथवा दानाबंदी के अन्तर्गत फसल काटने से पहले इसका मूल्यांकन किया जाता है और वास्तविक फसल के अनुसार नहीं बल्कि इस मूल्यांकन के आधार पर ज़मींदार के हिस्से का नकद भुगतान किया जाता है। उत्तर बिहार में बहुधा भाउली का इस्तेमाल बटाई निस्फ़ के रूप में किया जाता है। दानाबंदी का अर्थ फसल का आवंटन है। इसका महत्व उतना ही है जितना भाउली का। (बिहार टेनेन्सी ऐक्ट, 1885, 153वाँ ऐक्ट, अध्याय 8, 'लगान के संदर्भ में आम व्यवस्था', पृ० 443।)
4. यह सासाराम और भभुआ (25.73% से 28.44%) में, जिसे आज रोहतास के नाम से जानते हैं, प्रचलित है और इसने उस क्षेत्र को स्वामी सहजानंद सरस्वती की किसान राजनीति के लिए काफ़ी अनुकूल बनाया। दूसरी तरफ़ बक्सर और आरा सदर (जो आज भोजपुर है) के सब-डिवीज़नों में आज़ादी के पहले और बाद के दिनों में भी नहर की दरों को लेकर सरकार-विरोधी प्रदर्शन हुए।

नक़द-लगान का आंदोलन "वसूली की इस जटिल प्रणाली में निहित कठिनाइयों और नुक़सान" के बारे में काश्तकारों की अनुभूति से प्रभावित है; "सोन नहर सिंचाई व्यवस्था ने, जिसने ज़मींदारों से अलग किसानों को एक हद तक पानी सुलभ बना दिया है, इस दिशा में काफ़ी काम किया है।"[1]

इसके अलावा फसल-लगान क्षेत्रों में रैयत के प्रति अपने दायित्व के मामले में ज़मींदार लोग प्रायः उदासीन रहते थे। क़ानूनन कुछ ज़िम्मेदारियों के पूरा किये जाने के बाद ही ज़मींदारों द्वारा फसल-लगान की वसूली की जा सकती थी। इनमें से ज़मींदार की सबसे महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारी यह थी कि "पानी की आवश्यक सप्लाई की देख-रेख के लिए उसे पूंजी प्रदान करनी चाहिए।"[2] ओ'माले के अनुसार शाहाबाद में "फिर भी व्यवहार में ज़मींदार प्रायः अपनी ज़िम्मेदारी से कतरा जाता है और मूल्यांकन तथा बँटवारे की जटिल प्रणाली से स्वाभाविक तौर पर संदेह और आपसी तनाव पैदा होता है।"[3] सलामी, अबवाब तथा बेगार के रूप में अतिरिक्त फसल की अमानवीय लूट ने ज़मींदारों के ख़िलाफ़ असंतोष और नफ़रत को जन्म दिया।

विषमता का भी कोई जवाब न था। एक तरफ़ तो डुमराँव और जगदीशपुर के धनी ज़मींदार थे और दूसरी तरफ़ ग़रीब और बदहाल किसान। 1911 की जनगणना ने जो भय पैदा किया था, उससे पिछड़ी जाति के किसानों में असुरक्षा की भावना बढ़ती जा रही थी। ओ'माले ने लिखा है, "बंगाल में (बिहार उन दिनों बंगाल का एक हिस्सा था) यह आम धारणा थी कि जनगणना की योजना का उद्देश्य अलग-अलग जाति के लोगों की संख्या प्रदर्शित करना नहीं है—इसका उद्देश्य विभिन्न जातियों की सापेक्षिक स्थितियाँ निर्धारित करना तथा सामाजिक श्रेष्ठता के प्रश्न को निबटाना है।" 1901 के जनगणना आयुक्त रिज़ली ने पहले की जनगणना रिपोर्ट में सामाजिक श्रेष्ठता के अनुसार जातियों का वर्गीकरण किया था।

रिज़ली की इस पीड़ा देने वाली हरकत ने पिछड़ी और अनुसूचित जातियों के अन्दर 'हीनता' के कच्चे रेशों को स्पर्श किया था। भूमिहारों और कायस्थों जैसी ऊँची जाति के लोगों द्वारा अपनी जाति के उत्थान के लिए किये जा रहे छल-कपट के प्रदर्शन से उनका ज़ख्म और गहरा होता गया। डॉ० सच्चिदानंद सिन्हा के जाति सिद्धांत को उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के कायस्थ पाठशाला के आयोजकों द्वारा बड़ी उदारतापूर्वक बनाये रखा गया। बिहार के भूमिहारों ने

1. एल० एस० एस० ओ'माले : "रेंट्स, वेजेज एंड प्राइसेज", शाहाबाद गजेटियर (1924, पृ० 99)
2. वही।
3. वही।

श्री गणेशदत्त सिंह के इर्द-गिर्द अपने को एकजुट किया। यहाँ तक कि स्वामी सहजानंद सरस्वती ने, जो बाद में विख्यात किसान नेता बने, अपना प्रारंभिक राजनीतिक जीवन बिहटा के आर्थिक सहायता-प्राप्त आश्रम में भूमिहार ज़मींदारों के वंशजों को पुरोहिताई के गुणों की शिक्षा देने में बिताया। शाहाबाद के पिछड़ी जाति के काश्तकार यह महसूस करने लगे कि वे ऊँची जाति के लोगों की गोलबंदी से निरंतर घिरते जा रहे हैं। उनके अनेक स्थानीय नेताओं के अन्दर असुरक्षा की भावना तीव्र होती गयी।

फिर भी, सोन के तट पर रहने वालों के दुख को सोन नहर ने एक हद तक कम किया। धूप में झुलसे और पानी की कमी से त्रस्त शाहाबाद की गर्मियों को स्वर्गीय कर्नल सी० एच० डिकेन्स के इस निर्माण-कार्य ने असाधारण राहत दी। फ्रैंसिस बुकानन ने, जिन्होंने 1812-13 में घोड़े पर सवार होकर इस इलाक़े का भ्रमण किया था, लिखा है, "हालाँकि सोन नदी वर्ष के आधे समय तक अनेक स्थानों पर लाँघ जाने योग्य रहती है, फिर भी यह जातीय अथवा भाषाई तौर से भिन्न लोगों के बीच हमेशा एक विभाजन रेखा रही है। शाहाबाद ज़िले में वर्तमान इलाक़ा प्राचीन करुष देश का हिस्सा था और उसे कभी मगध में शामिल नहीं माना गया। बौद्ध धर्म के इतिहास से सम्बद्ध स्थलों से भरपूर तथा बौद्ध प्रभाव का प्रमाण देने वाले पुरावशेषों से समृद्ध मगध की ओर से सोन को पार कर शाहाबाद पहुँचने पर आप ऐसे प्रदेश में प्रवेश करते हैं जहाँ शायद ही कोई बौद्ध अवशेष है, जहाँ के लोग अपेक्षाकृत ज्यादा विद्रोही स्वभाव के हैं, जो न केवल अलग बोली बोलते हैं बल्कि एक ही जैसी वस्तुओं और पौधों के लिए मगध की तुलना में अलग-अलग शब्दों का भी इस्तेमाल करते हैं।"[1]

सोन नहर प्रणाली का 75 प्रतिशत भाग शाहाबाद ज़िले में पड़ता है।[2] लेकिन अँग्रेज़ों की उम्मीदें आसानी से लाभप्रद साबित नहीं हो सकीं, जैसाकि ओ'माले ने बड़े दुख के साथ दर्ज किया है, "नहरों का निर्माण जिन दिनों चल रहा था, इस बात की काफ़ी आशा की जाती थी कि इनसे उल्लेखनीय मात्रा में राजस्व की प्राप्ति होगी लेकिन घटनाओं ने इन उम्मीदों का भ्रम प्रकट कर दिया। मार्ग-कर के रूप में जो राशि प्राप्त हुई है, उनसे भी शुरू में की गयी आशाएँ व्यर्थ साबित हुई हैं। नतीजा यह हुआ है कि अनेक वर्षों तक यह नहर घाटे का सौदा रही और अभी बिलकुल हाल के वर्षों में (अर्थात् 1921-22 तक) इसके निर्माण के तक़रीबन 50 वर्षों बाद इससे प्राप्त राशि ब्याज की लगी राशि से 6 प्रतिशत अधिक पहुँची है।"[3]

1. शाहाबाद ज़िले के सर्वेक्षण के दौरान (1812-13) रखा गया फ्रैंसिस बुकानन का जरनल।
2. भोजपुर 68.8%, रोहतास 6.2%, गया 11% और पटना 14%
3. ओ'माले, उपरिवत, पृ० 79-80

यद्यपि नहर से प्राप्त राजस्व से अँग्रेज़ों की तिजोरी मालामाल नहीं हुई, लेकिन सोन के तट पर बसे लोगों को आंशिक राहत मिली। ओ'माले ने लिखा है, "1873-74 के अकाल, अपर्याप्त बारिश होने से ख़रीफ की चावल की फसल में प्रत्याशित विफलता और 1888-89 में एकदम बारिश के न होने से गंभीर अकाल पड़ने की आशंका को टाला जा सका।"[1]

लेकिन सोन नहर प्रणाली के संचालन का काम अँग्रेज़ों के लिए सरदर्द साबित हुआ। उन्होंने सिंचाई के लिए पट्टे की एक व्यापक प्रणाली और पानी का चार्ज इकट्ठा करने के लिए एक व्यवस्था तैयार की थी—इसे अमली रूप देने में स्थानीय मालिक एक महत्वपूर्ण रुकावट थे। पानी की दरें या तो सीधे-सीधे उस समूचे रक़बे पर वसूल की जाती थीं जो सिंचाई के नियंत्रणाधीन क्षेत्र में पड़ता था अथवा नहर के पानी के वास्तविक इस्तेमाल पर। आमतौर से पहला तरीक़ा इस्तेमाल होता था जिनमें वास्तविक प्राप्तकर्ता तथा अन्य लोगों (वे जो बहुत मामूली या बिलकुल ही नहीं लाभान्वित होते थे) के बीच फ़र्क नहीं किया जाता था।

इस प्रकार राजस्व इकट्ठा करने वाले तथा उपेक्षित रैयत के बीच बने निरंतर तनाव ने इनके बीच की दूरी को बरक़रार रखा; जब अनाज की क़ीमतों में अचानक ज़बरदस्त गिरावट आयी तो किसानों पर, जो पानी की समान दर दे रहे थे, मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा। 1930 का दशक शाहाबाद के लिए निश्चय ही थका देने वाला होने जा रहा था। बिहार में केवल दो राजनीतिक पार्टियाँ थीं जो किसी सीमा तक इसका सामना कर सकती थीं : ऊँची जाति वालों की कांग्रेस पार्टी जिसका नेतृत्व मुख्यतया राजपूत और कायस्थ कर रहे थे और स्वामी सहजानंद सरस्वती के गतिशील नेतृत्व में गठित किसान सभा।

शाहाबाद की अशांति का कारण वहाँ के काश्तकार थे। इसके एक से दूसरे छोर तक की यात्रा के दौरान अपनी पीड़ा का वर्णन फ्रैंसिस बुकानन ने किया था। किसी जमाने में परमार वंश के लोगों से आबाद नवानगर उजाड़ पड़ा हुआ था : "नवानगर एक बहुत ही अभागा छोटा-सा क़स्बा है। यह परमार वंश की एक कनिष्ठ शाखा का नगर है जिसका पाँच पीढ़ियों का अतीत है और जो तीन हिस्सों में विभाजित है। ऐसा लगता है कि इसकी दुर्दशा का कारण उन लोगों की निष्क्रियता रही है। उन्होंने अपने कामकाज ख़ुद न देखकर खेतों को किराये पर उठा दिया है और ठेकेदारों ने अहारों की इतनी उपेक्षा की है कि चावल के मामले में इतने उपयुक्त इलाक़े की लगभग समूची फसल बरबाद है। मैले-धुमैले

1. वही, पृ० 80

कपड़ों में और भूख से पीड़ित चेहरे वाले एक व्यक्ति ने, जो परिवार का मुखिया था, बताया कि उनके पास खेती करने की ताक़त नहीं है और वे जो कुछ भी बोते हैं उसे बगल के जंगल से आकर जंगली जानवर खा जाते हैं।"[1]

किसान सभा की स्थापना के समय से ही काश्तकारी की समस्या इसकी कार्य-सूची में शामिल रही और काफ़ी पहले 30-31 मई, 1931 को जहानाबाद में तथा जुलाई 1931 में सोनपुर में आयोजित बिहार प्रदेश किसान सभा के सम्मेलन में फसल-लगान की दानाबंदी प्रणाली के ख़िलाफ़ प्रस्तावों को बहस के लिए पेश किया गया था। सभा ने लगान की रसीदों की माँग को फिर दुहराया। बक्सर सब-डिवीज़न में डुमराँव राज्य में 1924-25 में विनिमय को लेकर काफ़ी तनाव देखा गया और 1931-32 में सलामी तथा अबवाब का सवाल काफ़ी गंभीर हो गया। 1940-41 तक यह स्थिति और भी बिगड़ गयी।

शाहाबाद की ज़िला कांग्रेस कमेटी को इस समस्या से काफ़ी जूझना पड़ा। ज़िला कांग्रेस कमेटी के कुछ प्रमुख सदस्य चौगाईं के चन्द्रशेखर प्रसाद सिंह, सूरजपुर के बाबू राधिकारमण प्रसाद सिंह, आरा के बाबू शत्रुंजय प्रसाद, हरगोबिन्द मिश्रा और कुल्हरिया परिवार के लोग ज़मींदार घरानों के थे। सूबे के नेताओं में राजपूत जाति के कांग्रेस-अध्यक्ष अनुग्रहनारायण सिंह जैसे व्यक्ति ने अपनी आत्मकथा 'मेरे संस्मरण' में डुमराँव राज्य के वकील के रूप में अपने अतीत को बड़े मोह के साथ चित्रित किया है और महाराजा डुमराँव को श्रद्धांजलि अर्पित की है। ज़िला कांग्रेस कमेटी और बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के नेतागण ऊँची जाति के थे और अपनी अत्यंत समृद्ध पृष्ठभूमि के कारण वे पिछड़ी जाति के काश्तकारों की समस्याओं को नहीं समझ पाते थे।

दूसरी तरफ़ स्वामी सहजानंद सरस्वती का कांग्रेस से मोहभंग होता जा रहा था और इस दल के प्रति उनके मन में कड़वाहट पैदा होने लगी थी। उन्होंने महसूस किया कि "राजनीति हमारा साधन है, लेकिन हमारा उद्देश्य है रोटी", और उनकी इस अनुभूति का शाहाबाद के काश्तकारों की समस्या पर प्रभाव पड़ा। लेकिन बिहार प्रदेश किसान सभा के चरित्र ने ज़िले में इसके प्रसार को पंगु बना दिया था। यहाँ तक कि सहजानंद के जीवनी-लेखक वाल्टर हाउज़र तक ने जाति और वर्ग के ज़बरदस्त दबावों को महसूस किया :

"सामाजिक दृष्टि से किसान सभा के नेतृत्व में भूमिहारों का प्रभुत्व था—इसमें राजपूत, ब्राह्मण और कायस्थ भी थे, लेकिन इनकी संख्या काफ़ी कम थी। नेतृत्व की सामाजिक संरचना में विभिन्नता का आभास ज़िला स्तर पर मिलता था जहाँ स्थानीय तौर पर प्रमुख जाति के लोग दिखायी देते थे—इनमें कभी-

1. बुकानन, उपरिवत, पृ० 21

कभार कोइरी और कुरमी भी होते थे। भूमिहारों के प्रभुत्व ने 'ज़मीन के मालिक भद्रजनों' और उस काल विशेष के 'उद्यमी' जनों के बीच एक मुख्य तत्व के रूप में इस समूह की शक्ति को उपेक्षित कर दिया था। जहाँ तक वर्ग संबंधी पृष्ठभूमि का संदर्भ है, किसान नेता मुख्यतया ज़मीन के स्वामी परिवारों के थे—कुछ इलाक़ों में ऐसे थे जिनके पास काफ़ी ज़मीन थी, ज़्यादा सामान्य तौर पर मध्यम जोत वाले और कुछ गिने-चुने मामलों में छोटी जोत वाले परिवार थे। इनमें से कुछ नेता अपने को काश्तकार समझते थे, लेकिन इससे यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं है कि क्या उनके पास व्यक्तिगत जोत बिलकुल नहीं थी ?"[1]

1936 में दक्षिणी शाहाबाद में काश्तकारों का क्रोध-भरा उन्माद अपने शिखर पर पहुँच गया। 1936 के शुरू के दिनों से ही अथक परिश्रमी स्वामी सहजानंद ने अपने विश्वस्त सहयोगी जदुनंदन शर्मा के साथ ज़िले का दौरा किया और 29 जनवरी, 1936 को जितौरा में विराट किसान सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें अन्य बातों के अलावा लगान में कमी की माँग की गयी थी। काश्तकारों की शिकायतों को लेकर 27 और 28 मार्च, 1936 को बिहार प्रदेश किसान सभा ने एकवाँ में प्रदर्शनों का आयोजन किया। शाहाबाद में किसान सभा का विस्तार कांग्रेस पार्टी के चौकन्ना होने के लिए काफ़ी था।

काश्तकारी के प्रश्न पर 12-14 अप्रैल, 1935 को लखनऊ में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 49वें अधिवेशन के कृषि कार्यक्रम और 11 जुलाई, 1936 को पारित बिहार प्रदेश किसान सभा के घोषणापत्र में अद्‌भुत मतैक्यता देखी गयी। दोनों में कृषि ऋणों से काश्तकारों को प्रस्तावित राहत की बात कही गयी थी। काफ़ी पहले 1931 से ही काश्तकारों की शिकायतों की जाँच के मामले में कांग्रेस ने बेमन से जो प्रयास किये थे, उनसे काफ़ी मुसीबतें पैदा हुईं—अनुचित मूल्य निर्धारण, अबवाब, लगान की रसीद न देना और सलामी। 1936 में जैसे-जैसे सूबे की राजनीति में काश्तकारी का सवाल प्रमुख स्थान पाने लगा और बिहार प्रदेश किसान सभा का राज्य की राजनीति में प्रवेश होने लगा, कांग्रेस ने भी चुप्पी साधे रहने की अपनी पुरानी रणनीति में संशोधन किया।

1936 के प्रारंभ में बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने शाहाबाद के लिए एक किसान जाँच समिति के गठन का फ़ैसला किया। श्रीकृष्ण सिंह और के० बी० सहाय ने चौधरी कालिकाप्रसाद सिंह की ज़मींदारी के एक गाँव दरिहाट, बाबू निर्मलकुमार जैन की जागीर के एक गाँव जितौरा, डुमराँव राज्य में बक्सर दिआरा के छोर पर बसे गाँवों अतमी और सिमरी तथा भभुआ सब-डिवीज़न में कुदरा तथा डेहरी की यात्रा की। ये सारे गाँव किसान सभा की गतिविधियों

1. वाल्टर हाउज़र, द बिहार प्रावेंशियल किसान सभा 1929-42, पृ० 77-78

के प्रमुख गढ़ थे। शाहाबाद के ज़मींदारों ने समिति की बैठकों में भाग नहीं लिया हालाँकि उनके कई एजेंटों (अमलों) ने इन बैठकों की कार्यवाहियों को देखा। एक ज़मींदार ने डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट को बताया कि सूरजपुर के राजा साहब तथा कुछ अन्य ज़मींदार कांग्रेस की हमदर्दी प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। मैजिस्ट्रेट ने अपने ख़ास अंदाज़ में झट से जवाब दिया, "बड़े दुख की बात है कि अभी भी ज़मींदार लोग समान दुश्मन के ख़िलाफ़ अपने को गोलबंद नहीं कर पा रहे हैं।"[1]

यदि और कुछ नहीं तो कम-से-कम बिहार प्रदेश किसान सभा द्वारा काश्तकारों को मिल रहे समर्थन पर रोक लगाने के लिए कांग्रेस में काश्तकारों का मसला एक कसक के रूप में ज़िंदा रहा। 1937 के चुनावों में कांग्रेस की विजय ने और इसके बाद किसानों से पहले से किये गये वायदों को पूरा करने के मामले में हुई असफलता ने 1938 में बिहार प्रदेश किसान सभा के साथ कांग्रेस के संबंध को हमेशा के लिए तोड़ दिया। दिसम्बर 1936 में कांग्रेस ने फ़ैज़पुर कृषि कार्यक्रम में काश्तकारों का कष्ट दूर करने का वायदा किया था, लेकिन 1937 की विजय के बाद इस दिशा में जो भी साधारण उपाय किये गये उनसे ये वायदे झूठे साबित हुए।

यह बात काफ़ी स्पष्ट रूप से सामने आ गयी थी कि उन्हें बिहार काश्तकारी संशोधन अधिनियम (1937 का अधिनियम 8) तथा बकाश्त भूमि एवं बकाया लगान में कमी अधिनियम (1938 का अधिनियम 9) से कोई लाभ नहीं मिला। डुमराँव में बिहार प्रदेश किसान सभा के झंडे तले 15,000[2] काश्तकारों की अपूर्व बैठक हुई और बक्सर, पीरो, बिहिआ और नवानगर में प्रदर्शनों में इनकी संख्या और भी ज़्यादा बढ़ गयी।[3] बकाश्त ज़मीनों को जबरन जोतने के साथ किसान सभा पूरी तरह ग़ैर-क़ानूनी बन गयी। बिहार प्रदेश कांग्रेस समिति द्वारा इसे प्रतिबंधित कर दिया गया और बाद में जनवरी 1938 में कांग्रेस कार्यसमिति ने इस फ़ैसले की पुष्टि कर दी। अब बिहार प्रदेश किसान सभा में फूट पड़ना निश्चित था। जनवरी 1938 में ही भभुआ और सासाराम में बकाश्त संबंधी समस्या ने ज़ोर पकड़ लिया था लेकिन उस समय तक उत्तरी शाहाबाद, जो काफ़ी दूर था, ऐसे संकट में फँस चुका था जिस पर कांग्रेस का ज़्यादा ध्यान जाना था और यह कहना आसान था कि किसान सभा इस समस्या की उपेक्षा ही करेगी।

उत्तरी शाहाबाद के नहर सिंचित क्षेत्रों में 1930 के दशक की तबाही के फल-

1. पटना के कमिश्नर के नाम शाहाबाद के मैजिस्ट्रेट का पत्र, 10 जुलाई, 1936
2. अमृत बाज़ार पत्रिका, 21 अक्तूबर, 1937
3. पटना के कमिश्नर की पाक्षिक रिपोर्ट, 26 मार्च, 1937

स्वरूप अनाजों की क़ीमत में असामान्य रूप से गिरावट आयी। इसका नतीजा यह हुआ कि काश्तकारों के सामने पानी की समान दर चुकता करने की बहुत बड़ी समस्या पैदा हो गयी। स्पष्टतः कांग्रेस के नेतृत्व ने ब्रिटिश विरोधी आंदोलन की संभावना को बख़ूबी महसूस किया। 24 दिसम्बर, 1931 को राजेन्द्रप्रसाद ने बिहार और उड़ीसा सरकार के मुख्य सचिव एम० जी० हैलेट के नाम एक पत्र के ज़रिये अपील की :

"शाहाबाद ज़िले में नहर की दरों के प्रश्न पर मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। क़ीमतों में इधर आयी असामान्य गिरावट तथा आमतौर पर फैली आर्थिक मंदी के कारण उन काश्तकारों को काफ़ी दिक़्क़तों का सामना करना पड़ रहा है जो नहर के पानी से अपना खेत सींचते हैं। नहर की दर और लगान—ये दोनों मिलकर इतना बड़ा बोझ बन जाते हैं कि मंदी के कारण किसानों को इसे ढो पाना बहुत मुश्किल हो गया है। यह ध्यान देने की बात है कि नहर की दरों में पिछले 40 वर्षों के दौरान उल्लेखनीय वृद्धि हुई है और यह वृद्धि खाद्य-सामग्रियों तथा अनाजों की क़ीमतों में वृद्धि के समरूप है। निम्नांकित विवरण से इसे देखा जा सकता है :

वर्ष	प्रति एकड़ नहर-दर रु० आ० पै०	खाद्यपदार्थ—प्रति रुपया दर	
		सेर	छटाँक
1886	1.0.0	16	—
1890	1.8.0	15	12
1896	2.0.0	12	$12\frac{2}{3}$
1902	2.8.0	11	14
1906	3.0.0	10	$14\frac{1}{3}$
1914	3.8.0	8	12
1921	4.8.0	7	3

"क़ीमतें पिछली शताब्दी के अंतिम दशक के स्तर तक पहुँच गयी हैं और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि मौजूदा निर्धारित मूल्यों की स्थिति में उन भारी नहर-दरों को काश्तकार पूरा नहीं कर सकेंगे जो ज़मींदारों ने उनके लिए तय कर रखा है। स्थिति काफ़ी गंभीर है और इन दरों में कमी करके उन्हें फ़ौरन राहत पहुँचाने की ज़रूरत है...मैं अनुरोध करता हूँ कि नहर दरों को कम करके उस स्तर तक लाया जाये, जहाँ चीज़ों की वर्तमान क़ीमतों और दरों के स्तर अनुकूल हों। मैं यह भी अनुरोध करना चाहूँगा कि लगान की वसूली को अगली फ़रवरी

तक स्थगित रखा जाये, क्योंकि उम्मीद यह है कि फ़रवरी तक धान की फ़सल बाज़ार में पहुँच जायेगी और किसानों को इसकी बिक्री से कुछ नक़द राशि प्राप्त हो सकेगी।"[1]

काश्तकारों और ज़मींदारों के बीच यहाँ सहमति थी। यह समय भी बहुत उचित था, क्योंकि 1930 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में ही सविनय अवज्ञा आंदोलन का दूसरा दौर शुरू हुआ था। नहर का मसला चूंकि वर्ग-चरित्र से ऊपर उठा हुआ मसला था, इसलिए उत्तर प्रदेश के 'चौकीदारी टैक्स' जैसे मसलों की तुलना में इसे कांग्रेस का वरदहस्त मिलना ज़्यादा आसान था।

प्रदेश कांग्रेस कमेटी की कार्यसमिति ने सदाक़त आश्रम, पटना में आयोजित एक बैठक में कृषि जाँच समिति की रिपोर्ट पर विचार-विमर्श किया और एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें कहा गया था कि "नहर जाँच समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद कार्यसमिति ने यह राय व्यक्त की कि खाद्यान्नों की क़ीमतों में असामान्य गिरावट तथा ग्रामीण इलाक़ों में भारी तबाही के कारण सरकार से यह अनुरोध किया जाना चाहिए कि वह नहर की दरों को कम करके उस स्तर तक लाये जो उसी वर्ष उस समय थी, जब खाद्यान्नों की क़ीमतें वही थीं जो इस साल हैं और साथ ही वसूली के काम को अगली फ़रवरी तक स्थगित रखे।"[2]

यहाँ तक कि 1931 के अंतिम दिनों में भी पानी को लेकर छिड़े आंदोलन में किसी तरह की कमी का संकेत नहीं मिला। शाहाबाद ज़िला कांग्रेस कमेटी ने "नहर की वसूली की जाँच" शीर्षक से एक नोटिस प्रसारित किया जिस पर श्रीकृष्ण सिंह, प्रो० अब्दुल बारी और बलदेव सहाय के हस्ताक्षर थे। सभी प्रमुख कांग्रेसी नेता शाहाबाद पहुँचे। आरा के दो कांग्रेसी नेताओं श्री गुप्तेश्वर पाण्डे और विंध्याचल प्रसाद के साथ ज़िले का दौरा करते हुए उन्होंने विक्रमगंज, कोरान सरैया, जमुली (रायपुर ब्लाक) डुमराँव और चौंसा में सभाएँ कीं। उन्होंने क्षेत्र के स्थानीय ज़मींदारों के साथ विचार-विमर्श किया, जिनकी एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार यह धारणा थी कि "यदि प्रचलित क़ीमतें अपनी मौजूदा दर पर 7-8 वर्षों तक बनी रहीं तो दरों में उल्लेखनीय कमी करनी होगी।"[3]

अपनी प्रतिक्रिया के रूप में सरकार ने काश्तकारों पर प्रतिबंध लगाकर और ज़मींदारों का समर्थन करके ज़मींदारों के साथ अंतर्संबंध बनाये रखने के

1. द सर्चलाइट, 29 दिसम्बर, 1931
2. द सर्चलाइट, 24 दिसम्बर, 1931
3. 5 दिसम्बर, 1931 को कुछ ज़मींदारों के साथ शाहाबाद के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट की बातचीत पर एक टिप्पणी।

बुनियादी इरादों को ही प्रदर्शित किया। नहर के सवाल पर असहाय काश्तकारों और समृद्ध ज़मींदारों को कांग्रेस एकजुट कर सकती थी और इसे एकदम निचले स्तर पर भी ज़मींदार-काश्तकार के बीच मौजूद वैरभाव को अस्थायी तौर पर जड़ बना सकती थी। अतीत में, कर न देने के मसले का समर्थन करने से इंकार करने के कारण कांग्रेस ने अपने ज़मींदार-समर्थक रवैये को प्रदर्शित कर दिया था।

एम० जी० हैलेट ने राजेन्द्रप्रसाद के पत्र का जो उत्तर दिया, वह बहुत स्पष्ट था : "नहर की दरों के बारे में कांग्रेस ने जो आंदोलन शुरू किया था, वह ज़मींदारों के खिलाफ़ नहीं बल्कि सरकार के खिलाफ़ था--इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए।"[1] इस प्रकार चूंकि आंदोलन अब शुरू हो चुका है, इसलिए किसी भी "उचित शिकायत पर विचार करना अथवा इसमें सुधार करना कठिन है।" यह निश्चित कर लेने पर कि "कांग्रेस ने इसे निस्संदेह रूप से अपने निजी हितों की पूर्ति के लिए शुरू किया है," शाहाबाद के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने 5 दिसम्बर, 1931 को कुछ ज़मींदारों की बैठक की ताकि इस आंदोलन की जवाबी कार्रवाई की जा सके। यह मालूम होने पर कि इन लोगों की पहले ही कांग्रेसी नेताओं से बातचीत हो चुकी है, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने उन्हें फटकारा और ज़ोरदार शब्दों में कहा कि भविष्य में "कांग्रेसियों के साथ किसी तरह का सरोकार न रखें और कोशिश करें कि उनके काश्तकार भी ऐसा न करें।" उन्होंने आगे कहा, "इस तरह के किसी भी आंदोलन को पूरी ताक़त के साथ कुचलने के लिए सरकार तैयार थी और इस बात को ध्यान में रखकर उन्हें अपना व्यवहार उसी के मुताबिक़ बदलना चाहिए।"

डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट का इरादा कड़े क़दम उठाने का था। विद्रोह के लिए उत्तेजित करने वाले भाषण देने के आरोप में श्रीकृष्ण सिंह को धारा 144 के तहत गिरफ़्तार कर लिया गया। इन्होंने अपने भाषण में 1857 के विद्रोही जगदीशपुर, शाहाबाद के वीर कुँवरसिंह का कई बार उल्लेख किया था। लेकिन आंदोलन जारी रहा। यह आंदोलन जनवरी 1932 तक किसी तरह चलता रहा और रामपुर ब्लाक की रैयत ने सिंचाई विभाग के मुख्य इंजीनियर श्री ग्लास को एक अर्ज़ी दी जिसमें पानी की दर कम करने तथा लगान वसूली को स्थगित करने की माँग थी। लेकिन डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने स्थानीय अधिकारियों को सख्त निर्देश भेजे कि काश्तकारों को समझाया जाये कि यदि इस मुद्दे पर नहर विभाग को बंद कर दिया गया तो इससे वे ही भूखों मरेंगे, और यह भी कि आंदोलन का नेतृत्व करके कांग्रेस किसानों का कोई हित न करके अपनी राज-

1. फ़ाइल संख्या 34/1931, बिहार और उड़ीसा सरकार, 9 दिसम्बर, 1931

नीतिक गोटी बैठाना चाहती है। उन्हें यह भी चेतावनी दी जानी चाहिए कि अगर वे नहर की दरें न देने पर अड़े रहे तो सरकार अधिसूचित कर्ज़ के रूप में यहाँ भी वैसी ही वसूली शुरू कर देगी, जैसा उसने चम्पारन ज़िले में किया था।[1] सरकार को इसका मौक़ा भी मिल गया। 22 जनवरी, 1932 को आरा में आयोजित एक बैठक में डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट एन० एफ़० पेक ने ग्लास के साथ सलाह-मशविरा करके मातहत भारतीय अफ़सरों के अनुनय-विनय को नामंजूर कर दिया। साथ ही सरकार को बताया गया कि नहर के पानी की दरों में कमी करने की कोई वास्तविक आर्थिक ज़रूरत नहीं है और "अगर कुछ करना ही है तो अस्थायी तौर पर थोड़ी-बहुत छूट दी जा सकती है।"[2] कांग्रेस का आंदोलन दम तोड़ गया, हालाँकि मसला बना ही रहा।

काश्तकार लोग राजनीतिक सनक के शिकार होते रहे। सामाजिक तौर पर शाहाबाद में पिछड़ी और अनुसूचित जाति के किसानों को आघात सहना पड़ा। रिज़ली की यातना ने उन्हें जकड़ लिया। 1901 के बाद 1911 की जनगणना आते-आते उल्लेखनीय मात्रा में संत्रास का वातावरण बन गया। विभिन्न जातियों की सैकड़ों अर्ज़ियाँ प्राप्त की गयीं जिनका कुल वज़न लगभग डेढ़ मन था और इन अर्ज़ियों में अनुरोध किया गया था कि उन्हें एक नया नाम दिया जाये, श्रेष्ठता के क्रम में उन्हें उच्च स्थान दिया जाये, उन्हें क्षत्रिय और वैश्य के रूप में मान्यता दी जाये। अनेक जातियों ने अपनी निर्धारित स्थिति पर असंतोष व्यक्त किया और शिकायत की कि जनता की निगाह में उनका महत्व कम कर दिया गया है। लेकिन जनता की यह प्रतिक्रिया रिज़ली की महज़ असावधान भूल का परिणाम नहीं थी और अँग्रेज़ शासकों को इसके भावी दुष्परिणामों का आभास था। ख़ासतौर से दक्षिणी बिहार में ऐसी स्थितियाँ पर्याप्त रूप से मौजूद थीं जिनसे कभी भी आग भड़क सकती थी।

"ज़मींदारों द्वारा अबवाब और बेगारी के रूप में की जाने वाली ग़ैर-क़ानूनी वसूली में निस्संदेह कमी आयी। फिर भी अभी यह नहीं कहा जा सकता कि इस तरह की बात दुर्लभ है। संघर्ष का दूसरा कारण कुछ निचली जातियों द्वारा अपनी सामाजिक स्थिति को विकसित करने का दृढ़ संकल्प था। कृषि संबंधों में तनाव के फलस्वरूप आमतौर से फसल-लगान को माफ़ करने की अर्ज़ियों का आना एक छूतहे रोग की तरह फैल गया, जबकि इस तरह की अर्ज़ियाँ प्रायः संबंधों को और भी तनावपूर्ण बनाने के लिए ज़िम्मेदार हैं।"[3] "इस तरह की गतिविधियाँ मुख्यतया ऊँची जाति के शूद्रों में पायी जाती हैं—जो कुछ वर्षों से अपनी

1. शाहाबाद के डी० एम० की टिप्पणी, 5 दिसम्बर, 1931
2. वही
3. लैंसी (1928), पृ० 97-98

सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील हैं—इनकी कुछ महत्वाकांक्षाएँ पर्याप्त रूप से वाजिब हैं पर इससे पैदा होने वाले ख़तरे भी स्पष्ट हैं।"[1]

शाहाबाद में जातिगत जागरण को भी साफ़तौर पर देखा जा सकता था। मुख्य पिछड़ी जातियाँ अर्थात अहीर (13.1%), कुरमी (13.3%) और कोइरी (8.0%) कुल आबादी का 24.4% (लगभग एक-चौथाई) थीं। इससे भी तीव्रता के साथ तिरस्कार के मसले ने एक सोख्ते का काम किया। महतिन दाई की कहानी—जिसकी स्मृति में बिहिआ (भोजपुर) में एक मंदिर बना है—निचली जातियों के निष्क्रिय अतिक्रमण की संस्कृति का प्रतीक है। ओ'माले के अनुसार बिहिआ हरिहोबंश राजपूतों के एक वंश का पुराना निवास था। उनकी ही परंपराओं के अनुसार वे मूलतः मध्यप्रदेश में रतनतुर में बसे थे, लेकिन ईसवी सन् 850 में वे उत्तर में सारन ज़िले में घाघरा के तट पर माँझा में बस गये, जहाँ उन्होंने चेरो आदिवासियों के ख़िलाफ़ एक सफल युद्ध का संचालन किया। दो शताब्दी बाद उन्होंने माँझा को छोड़ दिया और गंगा के दक्षिण में बिहिआ में बस गये और कई सौ वर्षों के संघर्ष के बाद उन्होंने आदिम जाति के चेरो लोगों को—जिनका उस क्षेत्र पर अधिकार था—हरा दिया। 1528 ई० में या इसके आसपास राजा भूपत देव ने एक ब्राह्मण औरत माहिनी का शीलभंग किया जिसने इस अपमान के बदले अपने को जला दिया और मरते समय उसने हरिहोबंश के राजपूतों को भयंकर शाप दिये। इस दुखद घटना के बाद यह परिवार बिहिआ छोड़ कर गंगा पार कर बलिया, उत्तर प्रदेश में बस गया।

इस अपमानित महिला से संबंधित कहानी के अन्य विवरण भी मिलते हैं। एक दूसरे इतिहासकार का कहना है कि बिहिआ में रणपाल सिंह नाम का एक राजा रहता था। वह बहुत अत्याचारी था और डोला लिया करता था, अर्थात हर नयी दुल्हन को शादी के बाद वाली पहली रात अपने साथ बिताने के लिए मजबूर करता था। उसकी इस आदत के फलस्वरूप एक बार ज़बरदस्त संघर्ष हुआ जिसमें महतिन दाई के समर्थक मारे गये। महतिन दाई का पति भी मारा गया और दाई सती हो गयी। इन कहानियों और दंतकथाओं में हमेशा महतिन को याद किया जाता है। बिहिआ रेलवे स्टेशन के पास हर मंगलवार को भारी संख्या में औरतें इकट्ठी होती हैं और महतिन दाई की समाधि पर प्रार्थना करती हैं। ओ'माले का कहना है कि हरिहोबंश घराने के सदस्यों को बिहिआ में प्रवेश करने के लिए कोई भी चीज़ प्रेरित नहीं कर सकी, हालाँकि एक ज़माने में यह इस वंश का मुख्य गढ़ था।

महतिन की याद निचली जाति के बेशुमार निरक्षर लोगों के दिल पर एक

1. वही, पृ० 7

निर्मम फफोले की तरह बनी हुई है, जिनकी औरतें ऊँची जाति के रईस ज़मींदारों की वासना का शिकार बनती हैं। राजपूतों और भूमिहारों के प्रभुत्व वाले क्षेत्र शाहाबाद में डोला वाली परंपरा क़ायम रही। 1930 का दशक आते-आते पिछड़ी जातियों के अपेक्षाकृत स्पष्टभाषी लोगों के बीच असंतोष की आग भड़कने लगी और इनकी बातचीत में 'इज़्ज़त' और 'लड़ाई' शब्दों का प्रायः इस्तेमाल होने लगा। दरअसल, देश-भर में पिछड़ी जातियों के लोग दिनोंदिन एक बेचैनी महसूस करने लगे थे।

पटना ज़िले में 1914 के आसपास शुरू हुआ अहीर (ग्वाला) आंदोलन असंतोष की इस देशव्यापी धारा का ही एक अंग था। 1912 में स्थापित 'गोपी जातीय सभा' का समूचे उत्तर भारत में पंजाब से लेकर बंगाल तक गाय पालने वाली जातियों के बीच प्रसार होने लगा। संयुक्त प्रांत में मैनपुरी से सभा द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र 'अहीर समाचार' ने उत्तर भारत के विभिन्न भागों से हज़ारों अहीरों को आकर्षित किया।[1] यहाँ तक कि कुरमियों ने भी इसमें भाग लिया। सभा की परम्परा को फिर से शुरू करने के लिए पहले 1908 में 'कुरमी-क्षत्रिय हितैषी' नामक एक पत्र के ज़रिये दीपनारायण सिंह ने कुरमी जाति के लोगों को प्रोत्साहित किया था। अंततः 5 मार्च, 1910 को शाहाबाद के भभुआ सब-डिवीज़न में स्थित एकलासपुर गाँव में एक सभा आयोजित की गयी और बाद में अखिल भारतीय कुरमी-क्षत्रिय महासभा का पटना में पंजीकरण कराया गया। दक्षिण बिहार में पटना, मुंगेर और नालन्दा ज़िलों के और गंगापार दरभंगा तथा मुज़फ़्फ़रपुर के कुरमी लोगों के समर्थन ने इसे ज़बरदस्त ताक़त दी। 1930 का दशक आने तक अहीरों, कुरमियों और कोइरियों ने अपनी सामाजिक दूरी मिटाने का काम तेज़ कर दिया था और एक व्यापक एकता के सूत्र में बँधने लगे थे। यह एकता काफ़ी हद तक दीर्घकालिक ब्रिटिश शासन ने प्रदान की थी।[2]

एकता बहुत ज़रूरी थी और 1930 में यादवों तथा कोइरियों का एक ज़िला स्तर का सम्मेलन करगहर ब्लाक (अब रोहतास ज़िले में है) में गारवे नामक गाँव में आयोजित हुआ। इसका कार्य-विवरण बहुत नाटकीय था। एक कुरमी नेता और कुरमी महासभा के एक महत्वपूर्ण सदस्य डॉ० शिवपूजन सिंह

1. एच० एन० श्रीनिवास, सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, 1966, पृ० 10

2. मुख्यतया भारत में ब्रिटिश शासन के फलस्वरूप राष्ट्रीय एकता प्राप्त की जा सकी। श्रीनिवास की दलील है कि 'पैक्स ब्रिटानिका' की स्थापना ने जातियों को उन क्षेत्रीय सीमाओं से मुक्त किया जो अँग्रेज़ों के आने से पूर्व की राजनीति में सहज रूप से मौजूद थीं। कहने का मतलब यह है कि संगठन संबंधी मामलों में यह सगोत्रीय जाति पंचायतों के दायरे से निकल कर जाति सभाओं के बीच समान रूप से एकता क़ायम कर सका।

इस सम्मेलन में भाग लेने पहुँचे और वहाँ पहुँचने पर उन्हें पता चला कि उनको दो अलग-अलग सम्मेलनों की अध्यक्षता करनी है। गुस्से से बौखलाये हुए वह आयोजकों के पास पहुँचे और उनसे कहा कि फ़ौरन वे एक संगठन का रूप लें। इसके बाद दोनों गुटों के मिले-जुले सम्मेलन-स्थल पर पीरो के जितौरा गाँव के एक अहीर चतुर्गनसिंह ने तथा बिक्रमगंज में तेनुनी गाँव के एक कोइरी ने उनसे अपनी एकता बैठक की अध्यक्षता का अनुरोध किया। एक अच्छी मनःस्थिति बन गयी थी और इतने दिनों से जो एकता नहीं हो पा रही थी, वह पूरी हो गयी।

बाद में, 1934 में अहीरों, कुरमियों और कोइरियों की एकता का प्रतीक त्रिवेणी संघ की स्थापना शाहाबाद ज़िला सम्मेलन में हुई। संगठन को यह नाम डॉ० शिवपूजन प्रसाद सिंह ने दिया था।[1] इसके उद्देश्य अन्य किसी भी जाति सभा की ही तरह व्यापक थे; जनतांत्रिक, राजनीति में भाग लें रहे जाति समुदाय के विभिन्न वर्गों के बीच एकता बनाये रखना; कोरवी, बेगार, बलात्कार और सामाजिक निर्वासन जैसे ऊँची जाति वालों के अत्याचार का विरोध और मुक़ाबला करना। भभुआ सब-डिवीज़न के एकलासपुर गाँव के एक कुरमी, आरा के वकील गौचरनसिंह चौधरी, को संगठन का अध्यक्ष तथा डुमराँव के एक अहीर रघुवीर सिंह को मंत्री चुना गया।

दो वर्ष बाद, 1936 में, शाहाबाद के पीरो थाने में बड़हरा गाँव में दूसरा ज़िला सम्मेलन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में वर्गीय दृष्टि के उभरकर आने का खतरा पैदा हुआ, क्योंकि इसके सिद्धांतकारों ने संघ को परिभाषित करते हुए बताया कि इस संगठन में किसानों, मज़दूरों और छोटे व्यापारियों की आकांक्षाएँ शामिल हैं। इस समय तक संगठन के सदस्यों की संख्या दस लाख पहुँच गयी थी और पिछड़ी जाति के लोगों ने—जिन्होंने वार्षिक सदस्यता शुल्क के रूप में चार आने दिये थे—संघ को शक्तिशाली संगठन का रूप दे दिया। बड़हरा में नये लोगों का चुनाव हुआ, सासाराम के एक कुरमी वकील बाबू शिवसुन्दर प्रसाद सिंह को अध्यक्ष पद के लिए और आरा मुफ़स्सिल के एक अहीर रामराज सिंह को मंत्री-पद के लिए चुना गया। इन पदों के लिए चुनाव तब तक होते रहे, जब तक 1948 में संघ अंतिम रूप से पिछड़ी जातियों के संघ में नहीं मिल गया।

1935-37 के आसपास एक प्रांतीय त्रिवेणी संघ बनाने का फ़ैसला किया गया। इसकी ज़िम्मेदारी दो महत्वपूर्ण व्यक्तियों को सौंपी गयी : गुरुसहाय लाल को, जो ऊँची जाति के कड़े आलोचक थे, इसका प्रवक्ता, और एक कुरमी दासूसिंह

1. यह एक ग़लत धारणा है कि संगठन का नामकरण गुरुसहाय लाल ने किया जो एक एडवोकेट थे और 1930 के दशक में पिछड़ी जाति के आंदोलनों के नेताओं में प्रमुख थे (महेन्द्र पी० सिंह : कोहेजन इन ए प्रीडॉमिनेन्ट पार्टी : द प्रदेश कांग्रेस एंड पार्टी पॉलिटिक्स इन बिहार)।

को अध्यक्ष चुना गया।[1] इस अड़ियल मनोवृत्ति के वातावरण में 1937 के चुनाव संपन्न हुए और संघ की निगाह चुनाव की कार्यवाहियों पर पहले से ही जमी हुई थीं।

कांग्रेस को इस बात की जानकारी थी और कुछ क्षेत्रों में कतिपय कांग्रेसजन इस पर पछतावा भी प्रकट कर रहे थे। वर्षों बाद अनुग्रह नारायण सिंह ने अफ़सोस ज़ाहिर किया : "पिछले 15 वर्षों का यह मेरा अनुभव रहा है कि जब तक कांग्रेस ने अपने सदस्यों को सरकारी संस्थानों तथा एक गुलाम भारत के पदों पर आसीन होने से दूर रखा, बिहार को जातिवाद की बुराइयों से बचाये रखा जा सका, लेकिन जैसे ही कांग्रेस के सदस्यों ने सत्ता के दलदल में ख़ुद को डाला, जातिवाद फैलने लगा...।"[2] इसके अलावा, संघ के इस विचार से कि वह किसी तरह का राजनीतिक संरक्षण नहीं स्वीकार करेगा और अपना अलग अस्तित्व बनाये रखेगा, शाहाबाद ज़िला कांग्रेस कमेटी और बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के नेतृत्व को बड़ी असुविधा महसूस होने लगी। त्रिवेणी संघ के एक प्रमुख नेता दासू सिंह के अनुसार, महात्मा गांधी तक को क्लेश हुआ।

संघ उस समय भी पिछले चुनाव में अपनी पराजय के दर्द को झेल रहा था, जब 1930-31 में उसने ज़िला परिषद के महत्वपूर्ण चुनावों में भाग लिया और हार गया था। इन चुनावों को जीतना बहुत ज़रूरी था, क्योंकि इसकी जीत पर ही राजनीतिक सत्ता के उच्च पदों के लिए टिकट पाना निर्भर था। चुनाव में जिन्होंने भाग लिया था उनमें बेगमपुर के एक कोइरी तपसी राम, पीरो थाना के अंतर्गत जितौरा गाँव के एक अहीर शिवपूजन सिंह, डुमराँव के एक कोइरी रघुवीर सिंह और जगदीशपुर थाना के अंतर्गत तेनुनी के एक अहीर नंदकिशोर सिंह बाद में अच्छे-खासे नेता बने। इस पराजय के पीछे आर्थिक कारण थे—जो मालगुज़ारी के रूप में 64 रुपये देते थे केवल वे ही चुनाव लड़ सकते थे। वर्षों बाद केसरी 'मास्टर' ने इन दिनों के बारे में अफ़सोस ज़ाहिर किया, "हमारे पास पैसा भी नहीं था।"

1937 का चुनाव जब आया, पराजय की स्मृतियाँ अभी भी कसक पैदा कर रही थीं। टिकट के लिए संघ के अनुरोध पर शुरू में कांग्रेस ने ध्यान दिया, लेकिन राजेन्द्रप्रसाद इस बात पर ज़ोर देते रहे कि जिन लोगों ने कांग्रेस आंदोलन में भाग लिया था, केवल उन पर ही विचार किया जायेगा। असंतोष बढ़ता गया। अंतिम धक्का तब लगा, जब प्रस्तावित नामों में से एक भी नाम उम्मीदवारों की सूची में नहीं दिखायी दिया।

उस शाम बेगमपुर में तपसी महतो के घर पर जुटी भीड़ बौखला उठी। तपसी महतो गुस्से से चीख पड़े, "ये साले कांग्रेस वाले भीख माँगने से भी सीट

1. ऊँची जाति के कुछ अभिजात लोगों द्वारा गुरुसहाय लाल को अपमानित होना पड़ा, जिसके कारण अन्ततः उन्होंने पिछड़ी जाति के लोगों को संगठित किया (महेन्द्र पी० सिंह)।
2. अनुग्रह नारायण सिंह, मेरे संस्मरण, पृ० 4

नहीं देंगे तो इज़्ज़त की लड़ाई करनी होगी।" एक ऐसी दरार पैदा हो गयी थी जिसे पाट पाना मुश्किल था।

त्रिवेणी संघ की निगाह में शाहाबाद ज़िला कांग्रेस कमेटी ने अपनी इस हरकत से अपने उच्च जातीय चरित्र को ही प्रकट किया है।[1] शाहाबाद की पराजय एक विशाल राज्यव्यापी पराजय का अंग थी।[2] ज़िले से त्रिवेणी संघ के दो लोगों को नामज़द किया गया था : पीरो से नंदकिशोर सिंह और आरा से तपसी महतो। उनकी हार के बाद ऊँची जाति के लोगों पर पिछड़ी जाति से बदला लेने का भूत सवार हो गया। जगदीशपुर में चुनाव से पहले प्रचार-कार्य के दौरान चार अहीर मारे गये थे। कांग्रेस की जीत के बाद जगदीशपुर थाना में आयर गाँव के राजपूतों ने पास के एक गाँव लच्छमीपुर को महज़ इसलिए लूटा कि यहाँ के निवासी अहीरों और कोइरियों ने चुनाव में संघ का समर्थन किया था।

इन झगड़ों और मारपीट में एक राजपूत भूमिपति खोभारी सिंह मारे गये।[3] लेकिन इस हार के बावजूद पिछड़ी जाति के मतदाताओं के दिल-दिमाग़ पर इसने विद्रोह आशा की जो भावना पैदा की थी, उसका वोटों से कहीं ज़्यादा महत्व था।[4]

1. (क) 25वें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, इलाहाबाद, 1910 (शाहाबाद ज़िला कांग्रेस कमेटी) में शाहाबाद से भाग लेने वाले प्रतिनिधियों की सूची :

पंडित गोवर्धन मुन्ना, बी० ए०, बी० एल०	ब्राह्मण—वकील, गया
बाबू अवधविहारीलाल	कायस्थ—ज़मींदार, गया
पंडित गयादत्त मिसिर	ब्राह्मण—प्लीडर, आरा
बाबू इन्द्रदेव नारायण सिंह	राजपूत—ज़मींदार, शाहाबाद
मंगल चरण, बी० ए०, बी० एल०	कायस्थ—वकील, आरा

(ख) शाहाबाद ज़िला कांग्रेस कमेटी के प्रमुख सदस्य, जो 1930 के दशक में महत्वपूर्ण थे : पीरो के शिवपूजन राय (भूमिहार), डुमराँव के कपिलदेव चौधरी (भूमिहार), सरदार हरिहर सिंह (राजपूत), हरगोबिन्द मिश्रा (ब्राह्मण)।

2. बिहार में त्रिवेणी संघ के उम्मीदवार : जादू महतो (कोइरी)—गया, सरदार जगदेवसिंह (अहीर)—बाढ़, रामचरितर चौरसिया (बरई)—हाजीपुर, गनपति मंडल—भागलपुर, दासू सिंह (कुरमी)—पटना।

3. 2 दिसम्बर, 1978 को आरा, भोजपुर में रामराज सिंह के साथ बातचीत।

4. 1937 के आम चुनावों (शाहाबाद) के परिणाम—

आरा निर्वाचन क्षेत्र :

हरनंदन सिंह (राजपूत)—कांग्रेस—17,911 वोट।
तपसी महतो (कोइरी)—त्रिवेणी संघ—5,877 वोट।

पूर्व मध्य शाहाबाद :

बूधनकुमार वर्मा (राजपूत)—कांग्रेस—19,211 वोट।
नंदकिशोर प्रसाद (कुरमी)—त्रिवेणी संघ—5,104 वोट।

(स्रोत : बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के दस्तावेज़)

उन दिनों की याद करते हुए रामराज सिंह बताते हैं, "वोट से हम भले हार गये, लाठी से नहीं हारे।"

त्रिवेणी संघ के प्रति कांग्रेस की असहिष्णुता की नीति पर्याप्त रूप से स्पष्ट थी। लेकिन एक और 'नरम नीति' थी जो बरक़रार थी। काफ़ी पहले 1935 में पिछड़ी जाति के प्रांतीय स्तर के नेताओं—मसलन देवशरण सिंह, बीरचंद पटेल और शिवनंदन मंडल को कांग्रेस ने अपने में सहयोजित कर लिया था। कांग्रेस की मदद से और इसके संरक्षण में बनाये गये संगठन 'बैकवर्ड क्लासेज़ फ़ेडरेशन' को सामने रखकर उन्होंने त्रिवेणी संघ से अनुरोध किया कि वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त कर दे। पिछड़ी जाति के नेताओं को अपने पक्ष में कर लेने के बाद बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी को इन जातियों के वोट सुरक्षित रखने में सफलता मिल गयी।[1] त्रिवेणी संघ की निगाह में इन नेताओं की कोई साख नहीं थी।

दूसरी तरफ़ ब्रिटिश शासक अपनी चाल से बाज़ नहीं आये। वे चाहते थे कि उच्च और निम्न जाति के बीच का अंतर्विरोध बना रहे। उन्होंने जाति-व्यवस्था की बुराइयों को कभी हतोत्साहित नहीं किया; उल्टे कुछ समूहों को ऊँचे स्थान, हुंडियाँ और ज़मीन देकर इस विकृत निरंतरता को बढ़ावा दिया। दरअसल, पिछड़ी जाति के संगठनों का कांग्रेस से बाहर बने रहना, जो इसकी उच्च-जातीय संरचना का विरोध करते रहें—यह ब्रिटिश नीति का अभिन्न अंग था। उपकर मूल्य-निर्धारण योजना में पिछड़ी जाति के लोगों के रोज़गार के सिलसिले में जब रामराज सिंह ने ज़िला अधिकारियों से अपील की तो 400 जगहें उनके लिए छोड़ दी गयीं।

कांग्रेस की असहिष्णुता तथा जगजीवनराम के नेतृत्व वाले दलित वर्ग लीग में पिछड़ी जातियों के अन्य वर्गों को शामिल करने की इसकी कोशिश के बावजूद, त्रिवेणी संघ का अस्तित्व बना रहा। 1932 के शुरू के दिनों में अखिल भारतीय छुआछूत विरोधी लीग के लिए विशाल बिहार के समर्थन के एक अंग के रूप में शाहाबाद में जो सभाएँ हुई थीं, उनको भी पिछड़ी जातियों का कोई उल्लेखनीय समर्थन नहीं प्राप्त हुआ। वे अछूतों को संदिग्ध श्रेणी में रखते थे और ऊँची जाति के साथ कांग्रेस के गठजोड़ को लेकर शंकालु थे—उनकी निगाह में कांग्रेस, संघ के विघटन या विलयन को देखने के लिए काफ़ी उत्सुक थी।

1938 के आसपास ज़िला परिषद के चुनावों के दौरान शाहाबाद में एक

1. अनुग्रह नारायण सिंह का ग्रुप : रघुनाथ सिंह (अहीर)—डुमराँव, रामप्रीतसिंह (अहीर)—सहार, शिवनंदन मंडल—सहरसा, बीरचंद पटेल।
श्रीकृष्ण सिंह का ग्रुप : रामलखनसिंह यादव, देवशरण सिंह (कोइरी)—बरुही, सहार, राजाराम आर्य (कोइरी)—नवानगर।

बार फिर खलबली मच गयी। दासू सिंह और गुरुसहाय लाल जैसे पिछड़ी जाति के सिद्धांतकारों ने इस क्षेत्र की यात्रा की और ज़िले-भर में त्रिवेणी संघ के लिए प्रचार किया। संगठन की तरफ़ से 30 उम्मीदवार मैदान में आये और इनमें से 8-9 उम्मीदवारों को कांग्रेसी प्रत्याशियों को हराने में सफलता मिली। हिंसा की छुटपुट घटनाओं के बावजूद इस विजय से पता चला कि पिछड़ी जाति के व्यापक वर्ग की ताक़त में वृद्धि हुई है।

लेकिन त्रिवेणी संघ और कांग्रेस के संघर्ष के दुष्परिणाम आगे चलकर सामने आये। संघ के नेतृत्व वर्ग की संरचना ने उल्लेखनीय नुक़सान पहुँचाया। इसके अधिकांश नेता शिक्षित और सम्पत्तिवान वर्ग के थे[1], जो धर्मनिरपेक्ष होने के बावजूद सीमित जाति का ही समर्थन जुटा सके।[2] पिछड़ी जाति के अन्य वर्गों की निगाह में यह धीरे-धीरे केवल अहीर-कोइरी-कुरमी गठबंधन का रूप ले सका। बुनियादी तौर से वर्गीय समस्या पर यह ऐसी प्रतिक्रिया थी, जो जाति पर आधारित थी क्योंकि अबवाब, बेगार, भूमिहीनता (बकाश्त) और सामाजिक बहिष्कार की समस्याएँ वर्ग-संबंधित समस्याएँ थीं जिनका जाति पर आधारित समाधान ढूंढ़ने की कोशिश की गयी और इस प्रकार कांग्रेस को उसके समर्थन के आधार से अलग नहीं किया जा सका। 1946 आते-आते कांग्रेस में इसके विलयन की प्रक्रिया लगभग पूरी हो गयी थी।

दरअसल आत्मसात किये जाने की यह प्रक्रिया और भी पहले शुरू हो चुकी थी। 1940 वाले दशक के शुरू के वर्षों में संघ के सदस्यों को विभिन्न पद दिये गये थे। 1946 में त्रिवेणी संघ के सदस्यों ने समूचे बिहार में अपने उम्मीदवार खड़े किये, लेकिन ये सभी उम्मीदवार कांग्रेस के टिकट पर थे। अंततः 1948 में संघ ने कांग्रेस द्वारा प्रवर्तित पिछड़ी जातियों के फ़ेडरेशन में अपना विलय कर लिया और इस प्रकार अपने अलग अस्तित्व को समाप्त कर दिया।

इस घटना से, पिछड़ी जाति के पुनरुत्थान के दौर में गहरे संघर्ष का जो बीज पड़ा था वह अंकुरित न हो सका। कांग्रेस और इसके संरक्षकों को यह समझने में थोड़ी भी देर नहीं हुई कि संघ ने जिन मसलों को उठाया है, उनसे एक वर्ग-संगठन के रूप में इसके विकसित होने की अपार क्षमता है। दूसरी तरफ़ काश्त-

1. सहरसा के शिवनंदन मंडल के पास चार सौ बीघा ज़मीन थी; गुरुसहाय लाल एक धनी किसान और वकील थे; रामराज सिंह एक बड़े समृद्ध वकील थे; जयनारायण सिंह (बेतिया), देवनारायण सिंह (आरा), बासुदेव सिंह (पूर्णिया), बीरचंद पटेल (हाजीपुर)—ये सभी लोग अत्यंत समृद्ध थे।
2. हरिजन और मुसलमान लोग त्रिवेणी संघ के सदस्य थे। 1946 के चुनावों में संघ के उम्मीदवारों में जो लोग शामिल थे, उनमें उदवंत नगर से एक दुसाध और दियारा से काज़ी क़फ़ीउल्लाह नामक एक मुस्लिम भी थे।

कारों का समर्थक एकमात्र संगठन बिहार प्रदेश किसान संघ पिछड़ी जातियों के पुनरुत्थान से अलग-थलग पड़ा रहा। बकाश्त समस्या और लगान में कमी जैसे मसलों को किसान संघ ने समर्थन दिया था, उससे किसानों का एक ऐसा वर्ग इसके इर्द-गिर्द इकट्ठा हो गया था जिसके पास पर्याप्त ज़मीन थी। इसके अलावा छोटे किसानों और खेतिहर मज़दूरों से सम्बन्धित मसलों पर किसान संघ के नीति-सम्बन्धी निर्णय ने काश्तकारों के एक बड़े वर्ग के बीच इसके प्रसार को पंगु बना दिया।

भूमिहारों के मसीहा स्वामी सहजानंद सरस्वती और त्रिवेणी संघ के सिद्धांत-कारों के बीच कोई पुल नहीं बनाया जा सका। हालाँकि संघ के सदस्य मिले-जुले संघर्ष के बारे में स्वामी सहजानंद सरस्वती का संदेश सुनने के लिए भारी संख्या में इकट्ठा होते थे, लेकिन उनपर भूमिहार होने का ठप्पा लगा रहा। पटना ज़िले में बीहटा में स्वामीजी के आश्रम पर जिस समय केसरी 'मास्टर' पहुँचे, रात हो चुकी थी। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि स्वामी के आसपास जितने लोग थे, वे सभी ऊँची जाति के भूमिहार लोग थे। इससे घबराकर पिछड़ी जाति का यह नेता अँधेरे में ही वहाँ से खिसक गया।

अध्याय 2

दूसरी लहर

रोइ-रोइ के कहेली सुदामा से बहुरिया
दिनवा पातर भइले,

खाएके सतुवा नइखे
रहेके झोपड़िया नइखे
दिनवा पातर भइले

गोड़वाए जूता नइखे
दिनवा पातर भइले ।[1]

विश्व बैंक के विशेषज्ञ वुल्फ़ लैडेजिन्स्की शाहाबाद से बहुत बौखलाये हुए लौटे थे। जून 1963 की बिहार की तपती धूप में उन्हें गहन क्षेत्र विकास परियोजना (आइ० ए० डी० पी०) की संभावनाएँ धुंधली नज़र आ रही थीं। तीसरी पंच-वर्षीय योजना के तत्वावधान में अक्तूबर 1960 में शाहाबाद में गहन क्षेत्र विकास परियोजना—जिसे आमतौर पर एकमुश्त कार्यक्रम कहा जाता है—शुरू की गयी थी। इसका लक्ष्य था—'हरित क्रांति'। चूंकि सोन नहर व्यवस्था के कारण यहाँ पानी मिलते रहने की गारंटी थी, इसलिए दक्षिणी बिहार के इस दक्षिण-पश्चिमी ज़िले को इस काम के लिए आदर्श माना गया था। लेकिन लैडेजिन्स्की के अनुसार हरित क्रांति का कार्यक्रम धराशायी हो गया। सोन के तट की काली-भूरी पट्टी पर फँसे कार्यक्रम का कुछ ऐसे कारणों से दम घुटने लगा जिनके बारे में

1. एकवारी (सहार) के मुसहर बिहारीराम द्वारा रचित ग़रीब किसानों का एक गीत।

विकास विशेषज्ञों और खाद्य नीति-निर्धारकों ने कभी अनुमान भी नहीं लगाया था।

दरअसल इस बात के संकेत मिल रहे थे कि यह हरित क्रांति लाल क्रांति का रूप ले सकती है। काश्तकारों के मनमुटाव का सबसे निर्णायक मुद्दा ज्यों-का-त्यों बना हुआ था। किसानों में से अधिकांश की अच्छी स्थिति नहीं थी और वे ज़मींदारों की दया पर थे। बिहार सरकार के साथ अत्यंत कटु बातचीत में वुल्फ़ लैडेजिन्स्की ने दो-टूक शब्दों में अपनी दलील पेश की थी, "भूमि-संबंधी क़ानून बनाने की समूची योजना के लिए किसानों के ज़मीन रखने के अधिकार की सुरक्षा के प्रावधानों का होना अत्यंत आवश्यक है और समूचे भारत का यह अनुभव रहा है कि ज़मींदार द्वारा स्वयं खेती के लिए ज़मीन के पुनर्ग्रहण के अधिकार ने काश्तकारों के ज़मीन रखने के अधिकार की व्यवस्था को विफल कर दिया है। यह पुनर्ग्रहण उन छोटे ज़मींदारों के मामले में और भी ज़्यादा नुक़सान पहुँचाने वाला है जिन्होंने अतिरिक्त रूप से एक या दो एकड़ ज़मीन पट्टे पर देकर खेती के लिए व्यवहार्य यूनिटें जुटा ली हैं।"[1]

बीस वर्षों से कभी कार्यान्वित न किये गये भूमि क़ानूनों ने काश्तकारों को एक लाचार और असुरक्षित रैयत की स्थिति में ला पटका है। लैडेजिन्स्की ने शाहाबाद में ज़मीन संबंधी अस्पष्ट दस्तावेज़ों की शिकायत की, जिनमें काश्तकार का कहीं कोई स्थान ही नहीं था। इसके कारणों के बारे में स्पष्ट समझ के साथ उन्होंने आगे कहा, "काश्तकारों को ज़मीन से बेदख़ल करने का काम अतीत में हुआ है और काश्तकारी क़ानून को नाकाम बनाने के लिए आज भी ज़मींदार काश्तकारों की एक खेत से दूसरे खेत पर अदलाबदली करते रहते हैं। जिन गिने-चुने काश्तकारों को काफ़ी समय तक एक ही ज़मीन जोतने दिया गया है, वे भी असुरक्षित महसूस करते हैं। इस प्रकार खेतिहरों की एक भारी संख्या ऐसी है जिनका पट्टे वाली ज़मीन पर कोई दावा नहीं है, जो कमरतोड़ लगान देते हैं और जिन्हें अपनी वास्तविक स्थिति की कभी तयशुदा जानकारी नहीं होती। उनके पास जो कुछ भी बचता है, वह जीविका चलाने के लिए काफ़ी कम और खेती में पूँजी लगाने के लिए उससे भी कम होता है। इस स्थिति के दो कारण हैं : एक तो स्वयं दोषपूर्ण क़ानून और दूसरे, राज्य, ज़िला, ब्लाक या गाँव स्तर पर सरकारी अधिकारियों का नकारात्मक रवैया।"[2]

भूमि हदबंदी क़ानून के फलस्वरूप पट्टे पर दी गयी ज़मीन को ज़मींदार लोगों ने बड़े पैमाने पर फिर से प्राप्त कर लिया और काश्तकारों को बेदख़ल

1. वुल्फ़ लैडेजिन्स्की, 'ऐग्रेरियन रिफ़ॉर्म ऐज अनफ़िनिश्ड बिज़नेस', ओ० यू० प्रे०, 1970, पृ० 337।
2. वही, पृ० 336।

कर दिया। लेकिन यह ख़तरे की घंटी थी। उस ज़िले में जहाँ न्यूनतम मज़दूरी क़ानून एक निर्मम मज़ाक था, यह एक मध्यस्थ गुलामी थी। बटाईदारों की दुर्दशा भी असह्य थी। मोटेतौर पर दो तरह की बटाईदारी का चलन था। एक में पट्टे पर लेने वाले और पट्टे पर देने वाले को सिंचाई तथा मज़दूरी निकालकर लागत में बराबर की हिस्सेदारी निभानी पड़ती थी पर उत्पादन का बँटवारा बराबर होता था। दूसरे में, जहाँ लागत और उत्पादन दोनों का हिसाब पट्टे पर देने वाला व्यक्ति करता था, जो दो-तिहाई लागत देता था और पट्टाधारी के हिस्से में लागत का एक-तिहाई आता था। उत्पादन में दोनों का बराबर हिस्सा होता था।

अनुबंध के अनुसार बटाईदार को ख़राब फसल होने का भी घाटा बरदाश्त करना पड़ता था, क्योंकि वह क़ानूनी तौर पर साल में एक निश्चित मात्रा देने के लिए बाध्य था। अपना घाटा पूरा करने के लिए वह अपने बनिहार पर बोझ डालता था—बनिहार उस मज़दूर को कहते हैं जिसे उसकी मज़दूरी के एवज़ में ज़मीन का एक निश्चित अंश (कोला) दिया जाता है और जो व्यवहार में बँधुआ ग़ुलाम होता है। असंख्य बनिहारों की दिन-ब-दिन बढ़ती पीड़ा कृषि-व्यवस्था की एक अत्यंत दुखद गाथा बनती गयी। बनिहारों के रूप में भूमिहीन चमार और मुसहर एक छोटी-सी झोपड़ी में जानवरों से भी बदतर ज़िंदगी बिताते थे—इन्हें गुज़र-बसर करने के लिए तीन से पाँच रुपया प्रतिदिन मिलता था और खाने के लिए मालिक से खेसारी मिलती थी—जो भूसी से तैयार मवेशियों का चारा है और जिसे खाने से शरीर की त्वचा में गड़बड़ी तथा प्रायः गठिया की बीमारी हो जाती थी।

शाहाबाद में निचली जाति वालों के उत्पीड़न का कारण ऊँची जाति वालों का काफ़ी तादाद में होना नहीं था बल्कि इसका संबंध आर्थिक क्रम-परंपरा, ज़मीन की मिल्कियत तथा मज़दूरों पर इजारेदारी से था।[1] दूसरे, यहाँ की हिंसा की संस्कृति से यह इत्मीनान रहता था कि चमारों और मुसहरों ने कभी भी विरोध में सर नहीं उठाया।

1. कृषीय जनगणना, 1970-71

	जोत का प्रतिशत	क्षेत्रफल का प्रतिशत
सीमांत किसान	78.5	30.9
छोटे किसान	12.3	23.0
मध्यम किसान	7.7	30.9
धनी किसान	1.3	11.2
जमींदार	0.2	4.0
	100.00	100.00

हालाँकि बेगार की प्रथा गुज़रे वक़्त की बात थी, फिर भी बनिहारों को प्रायः बिना किसी लाभ के काम करना पड़ता था। साफ़ धोती पहनना, मालिक के सामने अपनी झोंपड़ी के बाहर भी चारपाई पर बैठे रहना, तनकर चलना—ये बातें उनके लिए निषिद्ध थीं। शाम के धुँधलके में या किसी सुनसान खेत में उनकें घर की आँखों के साथ ज़मींदार के लठैतों या उसके वंशजों द्वारा बलात्कार की घटना राजपूत-भूमिहार के निर्विवाद दबदबे को याद दिलाये रखने का काम करती थीं।

राजपूतों और भूमिहारों द्वारा निचली जाति की औरतों के साथ बलात्कार लगभग एक दस्तूर बन गया था। त्रिवेणी संघ आंदोलन में यह भी एक मुद्दा था, लेकिन इस हरकत में कोई कमी नहीं आयी। बहुधा इसे बड़े सामंतों का विशेषाधिकार माना जाता था लेकिन इसकी जड़ें ऊँची जाति के यौन संबंधों की सामाजिक संरचना में पायी जा सकती हैं। इस दृष्टि से भूमिहारों और राजपूतों के पुरुषों और महिलाओं के नाकाफ़ी अनुपात महत्वपूर्ण हैं। 25 प्रतिशत भूमिहारों ने ज़िले से बाहर की दूसरी जाति की औरतों के साथ विवाह किया है; जहाँ तक राजपूतों का प्रश्न है, उन्होंने प्रायः छोटानागपुर और संथाल परगना के आदिवासी इलाक़ों की औरतों को ख़रीदकर रखा है। बाद में इन 'बाहरी औरतों' को शादी-ब्याह तथा रीति-रिवाज़ों के ज़रिये स्थानीय सामाजिक व्यवस्था का अंग बनाया गया। लेकिन सामाजिक अवरोधों के अंदर इन ऊँची जाति के लोगों ने—जिनका प्रभुत्व है—अपनी दमित यौन पिपासा को शांत करने के लिए बहुधा भोजपुर की ग़रीब और निम्न जाति यानी चमारों और मुसहरों की औरतों को अपना शिकार बनाया है।

लेकिन 1967 आते-आते शाहाबाद में भीषण गड़बड़ी के आसार नज़र आने लगे थे। बिहार में ग़ैर-कांग्रेसवाद की एक आम लहर चल पड़ी थी और इसे 1966-67 के अकाल ने और प्रबल रूप दे दिया था। राज्य स्तर पर कांग्रेस के भ्रष्टाचार की और चुनाव से पूर्व छात्रों पर गोली चलाये जाने ख़बरें बढ़ती जा रही थीं। इस राज्यव्यापी ग़ैर-कांग्रेसवाद को देखते हुए समाजवादी विचारक डॉ० राममनोहर लोहिया एक टिकाऊ ग़ैर-कांग्रेसी गठबंधन बनाने में लगे थे। उनकी इस परिकल्पना पर कि जब तक सारी विरोधी पार्टियाँ—उनकी नीतियाँ और विचारधारा कुछ भी क्यों न हो—एक नहीं होंगी, तब तक कांग्रेस को सत्ता से नहीं हटाया जा सकता, तरह-तरह के गठजोड़ होने लगे थे। इस रणनीति के तहत संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर ने अपने साधनों को एक जगह लगाकर कांग्रेस की हालत ख़राब कर दी।

1967 में राज्य में मिला-जुला मंत्रिमंडल बना जिसमें संसोपा का बहुमत था—इसे अभूतपूर्व विजय मिली थी और 128 स्थान प्राप्त हुए थे। यहाँ तक कि कांग्रेस के गढ़ शाहाबाद ज़िले में संसोपा को सात स्थान मिले थे। उन्हें अद्‌भुत सफलता मिलने का कारण यह था कि शाहाबाद में उनके तीस वर्षों के काम ने यह साबित कर दिया था कि ये लोग और कुछ नहीं तो कम-से-कम ग़रीबों के अंशतः मसीहा तो हैं ही।

ज़िले में समाजवादी विचारधारा के प्रसार का श्रेय मुख्यतया राम इकबाल, लक्ष्मणसिंह, रघुनाथ गोप और प्रणव चटर्जी को था। सोशलिस्ट पार्टी में 1952 की फूट से पूर्व शाहाबाद में अनेक ऐसे लोग थे जो इस विचारधारा के आरम्भिक कर्णधार थे: केरथ के एक राजपूत धरीछनसिंह, भोजपुर के पीरो ब्लाक के अहीर 'गांधी' राम इकबाल, पीरो के चौराई गाँव के एक कोइरी कमलकांत वर्मा और आरा के एक अहीर राम सकलसिंह। तरारी ब्लाक के राम नगीनासिंह, राम सिंहासनसिंह, राधामोहन राय और सहार ब्लाक के रघुनाथ राय जैसे व्यक्तियों के साथ सोशलिस्ट आगे बढ़ते रहे। उन्हें गहन क्षेत्र विकास परियोजना के अंतर्गत गेहूँ की फसल से समृद्ध उत्तरी शाहाबाद, सहार और तरारी खंडों में अपना राजनीतिक आधार बनाने में सफलता मिली और इन क्षेत्रों को सोशलिस्ट पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और बाद में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का गढ़ माना जाने लगा।[1]

पिछड़ी भूमिहीन जातियों का सामाजिक उत्पीड़न भोजपुर का एक स्वीकृत यथार्थ था और सोशलिस्टों ने इसे चुनौती दी। 1957-58 में केरथ के एक राजपूत ज़मींदार द्वारा चमार जाति की एक औरत के साथ बलात्कार के मामले को लेकर धरीछनसिंह काफ़ी समय तक एक क़ानूनी लड़ाई में लगे रहे। तरारी ब्लाक के जोरसी गाँव में राम इकबाल ने गाँव की वेश्याओं को सामाजिक मान्यता दिलाकर उन दिनों के सामाजिक रीति-रिवाज़ों को तोड़ने का प्रयास किया। इसके अलावा इन लोगों ने बड़ी चतुराई के साथ जातिगत और वर्गगत तत्वों को मिलाकर अहीरों, कुरमियों और कोइरियों में से मध्यम किसानों को छाँटकर अपने साथ ले लिया। इसके स्पष्ट लाभ थे—प्रमुख पिछड़ी जातियों की काफ़ी बड़ी

1. गहन क्षेत्र विकास परियोजना की अधिकांश गतिविधियाँ ज़िले के 50% सिंचित खंडों में केंद्रित रहीं, यथा—राजपुर, इटरही, नवानगर, पीरो, चारपोखरी, तरारी, संदेस, सहार, जगदीशपुर और उदवंतनगर।

संख्या थी।[1] गाँवों के स्कूल-अध्यापक, पिछड़ी जाति के मुखिया और ग्रामीण युवकों ने सोशलिस्टों को अपना अगुआ माना।

ऊँची जाति के ज़मींदारों ने इन्हें एक प्रारंभिक जातीय ख़तरे के रूप में देखा, क्योंकि 1960 वाले दशक के उत्तरार्द्ध तक सोशलिस्टों को लोग अहीर-कुरमी-कोइरी पार्टी के नाम से जानने लगे थे। 1967 में जब संसोपा को विजय मिली तो शाहाबाद में 22 में से 7 स्थानों पर इसके उम्मीदवार विजयी घोषित हुए। इन 7 स्थानों में से 4 स्थानों पर अहीर जाति के उम्मीदवार विजयी हुए थे। अपने लोगों के बीच रामसकल सिंह ने प्रतिक्रिया व्यक्त की कि "हमारे चार आदमी जीते।" ये चारों व्यक्ति थे—संदेस से स्वयं रामसकल सिंह, बालीगंज से चंद्रदेव प्रसाद वर्मा, करकट से तुलसी सिंह और रघुनाथपुर से रामदेव सिंह।

ऐसा लगने लगा जैसे 1930 वाले दशक के त्रिवेणी संघ के दिनों में जो हलचल थी, वह एक बार फिर वापस आ गयी। सोशलिस्ट नेता कमलकान्त वर्मा ने जो संघर्ष छेड़ा था, उससे पीरो ब्लाक के चौराही गाँव को असाधारण ख्याति मिल गयी थी। सहार, संदेस, पीरो और जगदीशपुर में नहर के पानी का बहाव बहुत कम और अनियमित था जिससे किसानों को आर्थिक दृष्टि से काफ़ी बोझ उठाना पड़ता था। 1954-56 के आसपास चौराही के लोगों ने नहर-शुल्क देने से इनकार कर दिया। इस संघर्ष ने हिंसक रूप ले लिया। जब शुल्क न देने वाले आंदोलनकारियों की संपत्ति ज़ब्त करने के लिए अधिकारीगण पहुँचे तो उन पर हमला कर दिया गया। सोशलिस्टों द्वारा चौराही में नहर-शुल्क देने से इनकार करने के साथ-साथ 1962-63 तक आंदोलन जारी रहा।

आरा में रामसकल सिंह के नेतृत्व में सोशलिस्टों ने आटा-चक्की के मालिकों के ख़िलाफ़ संघर्ष छेड़ा। ये लोग ग़रीब उत्पादकों की क़ीमत पर बेतहाशा मुनाफ़ा कमा रहे थे। इन दोनों संघर्षों का शाहाबाद के गाँवों में ज़मींदारों के गहरे स्वार्थों से कोई टकराव नहीं हुआ और यह ज़मींदारों की हिंसा के सांस्कृतिक पहलुओं

1.

ऊँची जाति	प्रतिशत	निचली/पिछड़ी जाति	प्रतिशत
भूमिहार	4.61	अहीर	20.55
ब्राह्मण	15.02	कुरमी	4.44
कायस्थ	2.74	कोइरी	11.19
राजपूत	15.08	अन्य	26.37
	37.45		62.55

कुल संख्या : शाहाबाद की 12.3 लाख आबादी में विभिन्न जातियों का वर्गीकरण मोटे तौर पर इस प्रकार होगा : ऊँची जाति—3.89 लाख; पिछड़ी जातियाँ और निम्न जातियाँ—6.51 लाख; अनुसूचित जातियाँ—1.90 लाख

(भारत की जनगणना 1921 पर आधारित)

तक जाने में असफल रहा। अहीर-कुरमी-कोइरी के एक उभरते हुए और समृद्ध गठजोड़ से उत्पन्न चुनावी महत्वाकांक्षाओं ने हरिजन की इज़्ज़त वाले प्रश्न को दबा दिया। ग़रीब और भूमिहीन किसान उपेक्षित ही रह गये।

नहर संबंधी आंदोलन ही मुख्य मसला बना रहा, जिसे लेकर ज़िले की राजनीतिक शक्तियों ने अपना आंदोलन जारी रखा। काफ़ी पहले 1953 में आरा के रमन मैदान में रवि नारायण रेड्डी के भाषण के बाद भोजपुर में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सी० पी० आई०) की स्थापना हुई थी। इसके नेताओं में ज़्यादातर पढ़े-लिखे राजपूत और ब्राह्मण थे; राजपूतों में महान क्रांतिकारी भगतसिंह के एक साथी चंद्रमा सिंह, बिदेश्वरी सिंह, सत्यनारायण सिंह; ब्राह्मणों में पंडित मुक्तिनाथ मिश्रा जैसे लोग थे—इसके अलावा एक कोइरी सूरजप्रसाद सिंह और एक अहीर संतप्रसाद भी इसमें शामिल थे। इन लोगों के साथ भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी काम आगे बढ़ाने के लिए आरा मुफ़स्सिल, कोइलवर, तरारी और नवानगर—संक्षेप में कहें तो उत्तरी भोजपुर के बाढ़पीड़ित इलाक़ों में संभावनाओं की तलाश शुरू कर सकी।

इस मसले पर सोशलिस्ट और सी० पी० आई० के लोग एक-दूसरे के क़रीब आये। सबसे पहले 1955-56 में नहर की दर को लेकर संसोपा के नेताओं राम इकबाल, रामनगीना दुसाध और लक्ष्मण सिंह ने उस समय आंदोलन शुरू किया था, जब इस दर को 5 रुपया से बढ़ाकर 10 रुपया कर दिया गया था। यह एक ऐसा मसला था जिसका सीधा और गहरा संबंध सहार, पीरो, संदेस और नवानगर से था। सहार ब्लाक के एकवारी गाँव से—जो बाद में भोजपुर का नक्सलबाड़ी बना—गिरफ़्तारियाँ भी हुईं। आंदोलन में सी० पी० आई० के सक्रिय कार्यकर्ताओं के रूप में मुखियाजी के नाम से मशहूर रामनरेश दुसाध और महाराज महतो गिरफ़्तार किये गये। बाद में रामनरेश दुसाध के इर्द-गिर्द सहार में नक्सलवादी आंदोलन ने जन्म लिया जिसमें जगदीश महतो और रामेश्वर अहीर ने शहादत दी। नहर संबंधी आंदोलन के दौरान यहाँ 300 से भी अधिक लोग गिरफ़्तार हुए थे।

सोन नदी की निष्ठुरता में कोई कमी नहीं आयी और इसके तट पर बसे किसानों के दुख-दर्द सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों को आंदोलन छेड़ने के लिए कोई-न-कोई मसला देते रहे। अभी 1974 में भी ज़िले में टैक्स कलक्टरों की लुटेरी भूमिका की भर्त्सना की गयी। मार्च 1974 में बक्सर (शाहाबाद को बक्सर और भोजपुर नामक दो ज़िलों में बाँट दिया गया है) के एक कांग्रेसी विधायक ने भोजपुर के सरकारी अधिकारियों की इस बात के लिए भर्त्सना की कि वे ख़ास तौर से उत्तरी भोजपुर के बाढ़ग्रस्त दिआरा इलाक़े में जबरन लेवी और लगान की वसूली कर रहे हैं।

1969 में लोहिया के मरने तक और संविद सरकार के पतन के लिए ज़िम्मेदार बी० पी० मंडल की पार्टी शोषित दल के गठन तक अंदर-ही-अंदर भयंकर उथल-पुथल शुरू हो गयी थी। शाहाबाद में सी० पी० आई और संसोपा से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए कुछ लोग लोहियावाद की धीमी रफ़्तार से ऊबने लगे थे। सी० पी० आई० के अंदर भी असंतोष बढ़ने लगा था। और जिन दिनों 'मास्को पेपर' को अंतिम रूप दिया जा रहा था, भोजपुर की सी० पी० आई० में फूट की प्रक्रिया पूरी हो रही थी। 1964 में सी० पी० आई० के प्रमुख नेताओं द्वारा पार्टी से अलग होकर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (सी० पी० एम०) में शामिल होने तथा फलस्वरूप ब्रह्मपुर के बरुहा गाँव के केशोप्रसाद सिंह, दावथ के धीरज ठाकुर तथा सत्यनारायण सिंह को खो देने के बाद सी० पी० आई० को जो क्षति हुई, उसकी कभी पूर्ति न हो सकी। 1966 में बेहतर मज़दूरी के लिए खेतिहर मज़दूरों का पहला संघर्ष मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में ही शुरू हुआ। इस संघर्ष में बीरबहादुर सिंह नामक एक प्रमुख नेता को ज़मींदारों के लठैतों ने मार डाला।

लेकिन बात यहीं नहीं ख़त्म होती है। ख़ुद सी० पी० एम० के भीतर सत्यनारायण सिंह के नेतृत्व में चीन-समर्थक गुट पश्चिम बंगाल में सी० पी० एम० के असंतुष्ट तत्वों के मन को टोहने में लगा था। 1968 में मार्क्सवादी नेता सुशीतल राय चौधरी ने, जिन्हें बंगाल के नक्सलवादी नेतृत्व में प्रमुख स्थान मिला, पीरो में हसन बाज़ार में सी० पी० एम० के असंतुष्ट लोगों को संबोधित किया। घटनाक्रम तेज़ी से आगे बढ़ रहा था।

पिछड़ी जाति के शिक्षित लोगों के बीच एक जागृति भी थी। शिक्षित होने की उन्हें भारी क़ीमत अदा करनी पड़ रही थी। पढ़े-लिखे कुरमी, कोइरी और अहीर जाति के युवकों के ख़िलाफ़ ऊँची जाति के ज़मींदारों के अंदर जो विरोध पनप रहा था, वह अकसर हिंसा तक पहुँच जाता था। कुछ नेताओं के आंशिक संस्कृतिकरण की बात छोड़ दें तो देखेंगे कि त्रिवेणी संघ के सारे मसले ज्यों-के-त्यों बने हुए थे। उन नेताओं का समुदाय इस समय तक आकर सौम्य एवं विनीत हो चला था।

इधर अभी कुछ ही वर्ष पूर्व मई 1975 में राज्य संसोपा के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रणव चटर्जी ने आरोप लगाया था कि भोजपुर में जातिगत उद्दंडता जारी है। डोम जाति के लोग अपनी साधारण पंचायत के लिए एक जगह इकट्ठे हुए थे कि तभी ऊँची जाति के लोगों और पुलिस ने मिल कर उन्हें बेरहमी से पीटा। ब्रह्मपुर ब्लाक (भोजपुर) में नीमज गाँव में एक लड़के को मार डाला गया और 15 लोगों को गंभीर चोटें आयीं। पुलिस ने कुछ लोगों को गिरफ़्तार करके काफ़ी पीटा और

आरोप लगाया कि ये लोग डकैत थे।[1]

लेकिन एक वर्ग ऐसा भी था, जो इस तरह के अत्याचारों को एक दूसरे ही नज़रिये से देख रहा था। इस वर्ग में पिछड़ी जाति के शिक्षित युवक थे जो इन घटनाओं को अपने पुरखों में व्याप्त दास-भाव से नहीं देखना चाहते थे। इनमें से अनेक 1930 के दशक की जागृति को स्मरण करते थे। आरा मुफ़स्सिल के लछमीपुर गाँव में केसरी 'मास्टर' अभी भी रह रहे थे और उनका कहना था: "बुनियादी तौर पर कुछ भी नहीं बदला है, सिवाय इस तथ्य के कि हम में से कुछ के नाम के आगे 'सिंह' की उपाधि जुड़ गयी है और शरीर पर पवित्र जनेऊ चढ़ गया है। अब 'बेगार' नहीं होती, पर हमारी औरतों के साथ आज भी बलात्कार किया जाता है। संघ के कारण जो प्रतिष्ठा मिली थी उसे देखते हुए आज के अत्याचारों को महसूस करके हम आज भी विचलित हो उठते हैं। अगर हम नहीं होते तो शायद नक्सलवादी आंदोलन यहाँ नहीं शुरू हो पाता।"

भोजपुर में हरित क्रांति के फलस्वरूप पिछड़ी जाति के लोगों में समृद्धि के विकास के साथ-साथ इज़्ज़त की समस्या पलीते में काफ़ी पहले की लगी आग की तरह बनी रही। समृद्धि का यह हाल था कि लोग सहार को 'बिहार का हरियाणा' कहने लगे थे। सहार के इस समृद्ध इलाक़े में ही असंतोष पनप रहा था।

सोन के उत्तरी तट पर बसा सहार, आरा रेलवे स्टेशन से लगभग 50 मील की दूरी पर स्थित है। 112 गाँवों वाले इस क्षेत्र में अनुसूचित जाति की आबादी काफ़ी है: कुल 1,12,075 की आबादी में 18,352। सहार के दक्षिण में सोन नदी बहती है; उत्तर में 17 किलोमीटर लम्बी एक नहर है जो इसके गाँवों को सिंचाई के लिए जल प्रदान करती है। सहार में ज़मीन की क़ीमत बहुत ज़्यादा है। अपनी उपजाऊ मिट्टी के कारण यह गहन क्षेत्र विकास परियोजना के एक आदर्श गाँव के रूप में उभर रहा था पर यहाँ के काश्तकारों की हालत ख़राब ही बनी रही।

सहार के एकवारी गाँव के बारे में बुकानन की टिप्पणियाँ आज भी सच थीं, हालाँकि 'खेतिहरों के इस ख़ासे बड़े गाँव' में अब ज़्यादा दूकानें थीं और यहाँ अपेक्षाकृत अब ज़्यादा कारीगर थे। आरा से खैरा जाने वाली सड़क पर बसें वहाँ रुकती हैं। गाँव के ही जगदीश महतो, जो जाति के कोइरी थे, अध्यापक बने। उनके चाचा कम्युनिस्ट थे पर इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा, सिवाय इसके कि गाँव के भूमिहारों को उन्होंने कभी इज़्ज़त नहीं दी। उनकी मौजूदगी में वह चारपाई से खड़े भी नहीं होते थे और ऊँची जाति वालों की निगाह में यह एक जघन्य अपराध था। उनकी निगाह में जगदीश महतो एक कोइरी थे जो अब 'मास्टर' बन गये थे।

1. 'द इंडियन नेशन', 24 मई, 1975

पढ़ने-लिखने के बाद उन्हें रामनरेश दुसाध का साथ अच्छा लगता था। अन्य लोगों के विपरीत वह ज़िंदगी में तरक्की करना चाहते थे। किसानों के लिए यहाँ बड़ा दुःसह जीवन था। 1973-74 में शाहाबाद के भोजपुर और रोहतास नामक दो ज़िलों में बँट जाने के बाद भोजपुर को काफ़ी घाटा उठाना पड़ा था: इस ज़िले के हिस्से में केवल एक-तिहाई उपजाऊ ज़मीन और 20 प्रतिशत सिंचित ज़मीन पड़ी थी। उत्तरी भोजपुर के आरा मुफ़स्सिल जैसे कुछ स्थानों में ज़मीन का अधिकांश भाग हर साल बाढ़ की चपेट में आ जाता था। उत्तर प्रदेश में गंगा के बाएँ तट पर बलिया-बैरिया बाँध और पटना ज़िले में सोन के दाहिने तट पर मनेरा-सैदाबाद तटबंध एक प्रमुख कारण था। रबी की एक फसल और भदई से थोड़ी पैदावार हो जाती थी, लेकिन तमाम स्थानों पर खेत बंजर पड़े रहते थे। भोजपुर के अन्य ब्लाकों की तुलना में सहार को कम नुक़सान उठाना पड़ा था। पिछड़ी जाति के लोग हरित क्रांति का फल चख रहे थे। दरअसल, कोइरी परिवार में जन्मे जगदीश महतो को कम कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और वह गाँव के पहले शिक्षित कोइरी बन सके। एकवारी के कोइरियों के लिए जगदीश महतो प्रतिष्ठा और उपलब्धि के प्रतीक थे।

1967 के चुनाव नजदीक आने पर जगदीश महतो गाँव में रहने के इच्छुक थे---इस समय तक वह एकवारी के मुखिया और सी० पी० आई० के सदस्य रामनरेश दुसाध के काफ़ी निकट आ चुके थे। चौथा आम चुनाव भोजपुर के लिए एक महत्वपूर्ण घटना थी। सोशलिस्टों का चुनाव-प्रचार जारी था और सहार सुरक्षित निर्वाचन-क्षेत्र में वे कम्युनिस्टों तक के लिए प्रचार कर रहे थे। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के राजदेव राम, जगदीश महतो के साथी रामनरेश राम के मुक़ाबले चुनाव लड़ रहे थे। जगदीश अपने साथी की विजय के लिए काफ़ी सक्रिय थे।

17 फरवरी, 1967 को, मतदान वाले दिन, जगदीश अपना वोट डालने मतदान-केन्द्र पर गये। रास्ते में उन्होंने एक भूमिहार को वोटों की गड़बड़ी करते पकड़ा, जो अपने उम्मीदवार राजदेव राम के पक्ष में गड़बड़ कर रहा था। भूमिहार लोग काफ़ी दिनों से इस निडर और अक्खड़ कोइरी को सबक़ सिखाने का मौक़ा तलाश कर रहे थे। जैसे ही जगदीश ने उस भूमिहार को पकड़ा, चारों ओर से भूमिहारों ने उन पर हमला कर दिया और इतना पीटा कि उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। अपमान और क्षोभ से ग्रस्त जगदीश महतो ने उसी दिन संकल्प किया कि 1930 के दशक में जो युद्ध समाप्त हो गया था उसे जारी करना पड़ेगा। उत्तरी बंगाल के एक छोटे-से गाँव नक्सलबाड़ी में किसानों के नेतृत्व में हुए सशस्त्र संघर्ष की ख़बरें निरंतर अख़बारों तथा अन्य प्रचार-साधनों

के ज़रिये फैल रही थीं। और जगदीश ने शपथ ली कि भोजपुर में भी कुछ-न-कुछ करना ही होगा। दूसरी लहर का समय क़रीब आ चुका था। लेकिन इस बार फिर किसी दूसरे त्रिवेणी संघ के नेतृत्व में नहीं—भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) के नेतृत्व में : क्रांति की ओर एक हिंसक माओवादी रास्ता !

अध्याय 3

भोजपुर—टुकड़ों में बँटी एक कहानी

"1967 में नक्सलबाड़ी से एक राजनीतिक सिद्धांत का नामकरण हुआ। इस नक्सलबाड़ी से एकवारी तक, जो अभी कल तक बिहार के भोजपुर ज़िले के एक शांत गाँव के रूप में जाना जाता था, भौतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक धरातल पर एक काफ़ी लम्बा रास्ता है। नक्सलबाड़ी में जहाँ लहलहाती हरियाली के दर्शन होते हैं, वहीं एकवारी सोन नदी की रेतीली पट्टी पर बसे उदास गाँव के रूप में दिखायी देता है।"[1]

—बी० एन० सिन्हा

17 फ़रवरी, 1967
एकवारी, सहार

जगदीश महतो की पत्नी कमलेश्वरी देवी उन बीती घटनाओं का वर्णन करती हैं : "गाँव में काफ़ी तनाव था और सबको इस बात का डर था कि किसी भी क्षण हिंसा भड़क सकती है।"[2] बिहार राज्य विधानसभा के चौथे आम चुनाव के दिनों की बात है। उस दिन सहार सुरक्षित निर्वाचन-क्षेत्र में मतदान होना था। मुक़ाबला मुख्य रूप से प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के राजदेव राम और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के रामनरेश राम के बीच था। रामनरेश राम एकवारी के मुखिया थे और राजदेव राम को ऊँची जाति के ज़मींदारों ने खड़ा किया था। जगदीश महतो, जो जाति से कोइरी थे, आरा के एच०डी० जैन कॉलेज में विज्ञान के अध्यापक थे और वह खुले रूप में रामनरेश राम की मदद कर रहे थे। रामनरेश राम को नीची जाति के खेतिहर मज़दूरों और ग़रीब किसानों का भारी

1. 'द सर्चलाइट', 'फ्राम नक्सलबाड़ी टु एकवारी', 11 जून, 1975
2. 12 दिसंबर, 1978 को आरा, भोजपुर में कमलेश्वरी देवी से लिया गया इंटरव्यू

समर्थन प्राप्त था। 6,000 की आबादी वाले एकवारी गाँव में चुनाव को लेकर अभूतपूर्व सरगरमी थी और भूमिहारों तथा मज़दूरों के बीच बड़ी स्पष्ट विभाजन-रेखा खिंच गयी थी।

"मेरे पति बराबर यह कहते रहे कि वह वोट देने ज़रूर जायेंगे, क्योंकि अगर रामनरेश एक वोट से भी हार गया तो उन्हें अपने वोट न देने का अफ़सोस बना रहेगा। दूसरी तरफ़ गाँव के भूमिहार, जो मेरे पति की निर्भीकता से चिढ़े हुए थे, इस मौक़े की तलाश में थे कि कोई अकसर आते ही उन्हें सबक़ सिखाया जाये। मेरे लाख समझाने-बुझाने के बावजूद मेरे पति दिन में तीन बजे घर से निकले और मतदान-केन्द्र पर गये।" वहाँ पहुँचने पर उन्होंने देखा कि राधारमण सिंह नामक एक भूमिहार वोटों की गड़बड़ी करना चाहता है और रामनरेश राम उसे ऐसा करने से रोक रहे हैं जिससे चिढ़कर भूमिहारों ने रामनरेश राम को बुरी तरह पीटा। जगदीश महतो की भी बर्बरता के साथ पिटाई की गयी और लगभग पाँच महीने तक वह अस्पताल में ज़िंदगी और मौत के बीच जूझते रहे। जिस समय वह अस्पताल से बाहर आये, उनके अन्दर बहुत बड़ा परिवर्तन हो चुका था।"

जुलाई, 1969
बक्सर, आरा

आरा शहर की दीवारों पर नक्सलवादी नारे दिखायी दिये जिनमें हथियार-बंद क्रांति की अपील की गयी थी। सत्यनारायण सिंह के नेतृत्व में उनकी पार्टी—भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी)—ने बक्सर के निकट दियारा में जबरन खेत काटने और फसल लूटने की कोशिश की। लगभग उन्हीं दिनों बक्सर की अदालत की इमारत पर माओ-समर्थक पोस्टर दिखायी दिये।[1]

फ़रवरी, 1970
नाथूपुर, कुंदरा

चारु मजुमदार ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) के राज्य सम्मेलन को सम्बोधित किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि उनकी पार्टी के लोगों को परंपरागत हथियारों के इस्तेमाल में प्रशिक्षित होना चाहिए और उन्हें भूमिहीन मज़दूरों को संगठित करने के लिए पूरी ताक़त लगा देनी चाहिए ताकि "वर्ग दुश्मनों" के सफ़ाए के लिए छापामार दस्ते तैयार किये जा सकें।[2]

1. चवरी गोलीकांड जाँच आयोग की रिपोर्ट, पृष्ठ 12
2. वही

बिहार के भोजपुर जिले का मानचित्र

गहन क्षेत्र विकास परियोजना ब्लाक

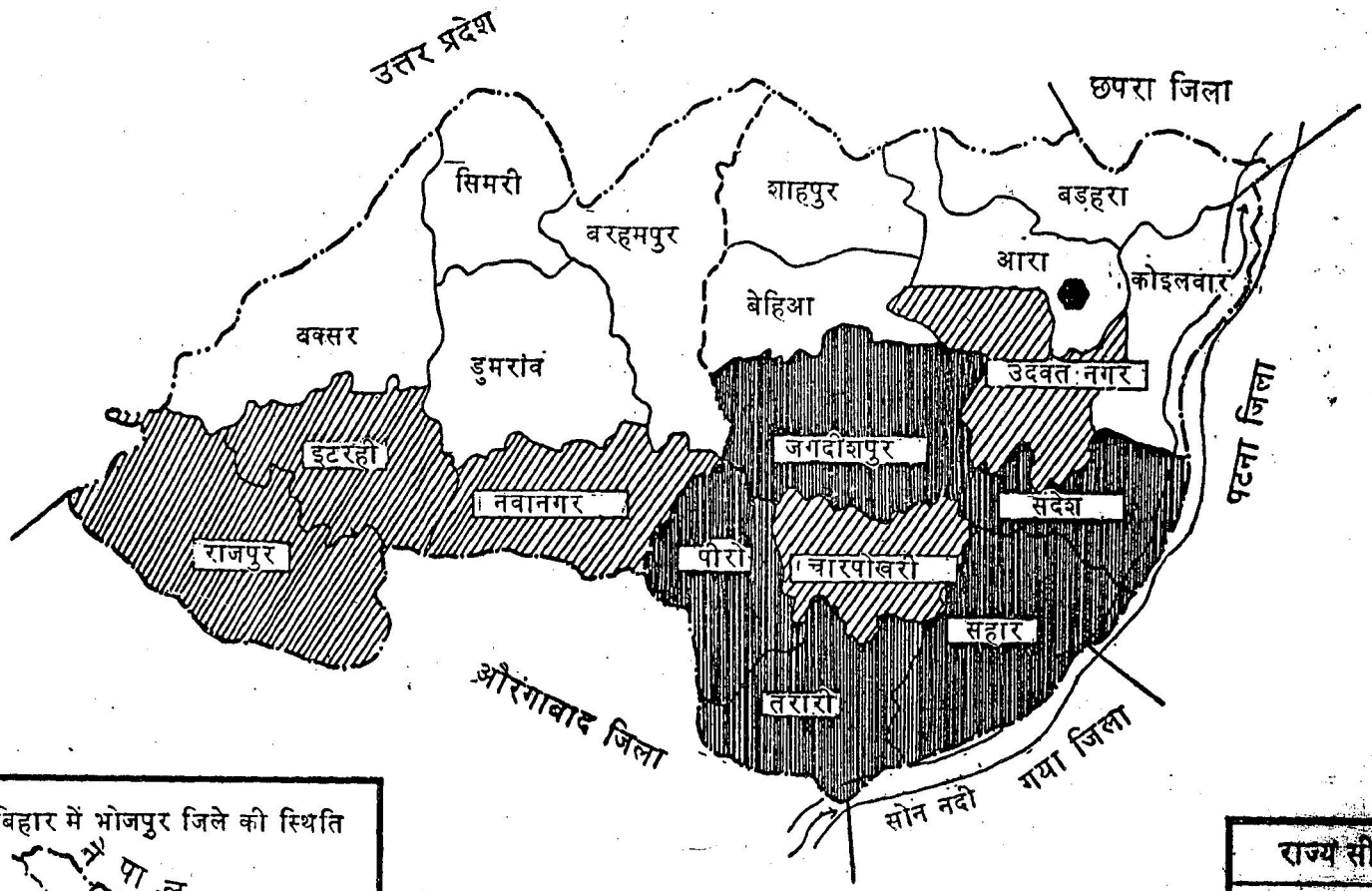

बिहार में भोजपुर जिले की स्थिति

संदर्भ

राज्य सीमा	
जिला सीमा	
जिला मुख्यालय	
सबडिवीजन	
ब्लाक अंचल सीमा	
ग क्षे.वि.प. ब्लाक	
ग क्षे.वि.प. का अशांत ब्लाक	

समर्थन
अभूतपू
रेखा ।

रामन
रहेगा
थे, इ
मेरे
और
नाम
ऐसा
तरह
पाँच
समय
था।

जुल
बक

बंद
भा
में
बब

फ़
ना

र
प
उ
त

)

8 अक्तूबर, 1970
पटना

बिहार मंत्रिमंडल की एक असाधारण बैठक में नक्सलवादी विद्रोह की समीक्षा की गयी, पुलिस को 'विशेष अधिकार' देने का फ़ैसला किया गया, गुप्तचर विभाग को 'आधुनिक' बनाने तथा निरोधक नजरबंदी क़ानून को पूरी ताक़त के साथ लागू करने का निर्णय लिया गया। मंत्रिमंडल की इस बैठक की अध्यक्षता कांग्रेस पार्टी के मुख्यमंत्री दारोगाप्रसाद राय कर रहे थे और इस बैठक में 'सभी 571 पुलिस स्टेशनों को' जीप देने की संभावना पर विचार किया गया तथा मुज़फ़्फ़रपुर, दरभंगा, मुंगेर और जमशेदपुर में "जहाँ नक्सलवादी गतिविधियों में ख़तरनाक रूप से वृद्धि हुई थी", 'विशेष पुलिस सेल' स्थापित करने का फ़ैसला लिया गया।[1] सरकारी रिपोर्टों के अनुसार राज्य में नक्सलवादी हिंसा की शुरुआत के बाद से अब तक 26 व्यक्ति मारे गये थे और हिंसा की 102 प्रमुख घटनाएँ हुई थीं। बिहार सरकार ने चारु मजुमदार को गिरफ़्तार करने की मुहिम भी तेज़ कर दी।

23 फ़रवरी, 1971
एकवारी, सहार

भोजपुर में नक्सलवादियों द्वारा किया गया पहला 'सफ़ाया'! उस दिन सूर्यास्त के बाद के धुंधलके में एकवारी के ज़मींदारों का एक लठैत शिवपूजन सिंह गाँव के बाहर सोन नहर के किनारे मृत पाया गया। उसकी हत्या के सिलसिले में चितरंजन सिंह ने पुलिस में जो रिपोर्ट दर्ज करायी, उसमें जगदीश महतो, रामेश्वर अहीर, भिखारी कहार, महाराज महतो और सिंहासन चमार को फँसाया गया था। जगदीश महतो और रामेश्वर अहीर फ़रार हो गये।

शाहाबाद के डी० एस० पी० श्री एस० झा ने हत्या के इरादे के बारे में यह राय व्यक्त की :

"यह एक पूर्व-नियोजित बर्बर हत्या है। पता चला है कि पिछले कुछ दिनों से ऊँची जाति और पिछड़ी जाति के लोगों के बीच कुछ तनातनी चल रही थी। पहले भी कुछ मामले सामने आये थे और धारा 107 सी० आर० पी० सी० के तहत एक रिपोर्ट दर्ज हुई थी। ग्राम पंचायत के मुखिया-पद के चुनाव के लिए पिछड़ी जाति के लोगों ने रामनरेश दुसाध को और भूमिहारों ने—जिनका यहाँ प्रभुत्व है—दीनानाथ सिंह, वैद्यनाथ सिंह, और अखिलेश सिंह का नामांकन किया था। बताया जाता है कि मृतक शिवपूजन सिंह ऊँची जाति के लोगों का पक्ष ले

1. 'द सर्चलाइट', 9 अक्तूबर, 1970

रहा था और इसीलिए उसकी हत्या कर दी गयी। मुलज़िम जगदीश महतो के बारे में कहा जाता है कि उसने रामेश्वर अहीर (अभियुक्त) की मदद ली थी, जो एक कांस्टेबल की हत्या और एक ए० एस० आई० पर घातक हमला करके उसकी बंदूक छीनने के आरोप में आजीवन सज़ा काटकर हाल ही में जेल से बाहर आया था। बाक़ी तीन अभियुक्त रामेश्वर अहीर के साथी बताये जाते हैं।"

10 सितम्बर, 1972
गड़हनी, पीरो

पीरो में गड़हनी डाकबँगले में डेपुटेशन पर तैनात सशस्त्र होमगार्डों की एक टुकड़ी पर नक्सलवादियों के एक समूह ने बम फेंककर हमला किया, जिसमें तीन होमगार्ड बुरी तरह घायल हो गये और उनसे तीन थ्री-नाट-थ्री राइफलें और 45 चक्कर गोलियाँ छीन ली गयीं। यह मामला पीरो पुलिस स्टेशन में केस नम्बर 10(9)72, धारा 395 भारतीय दंडसंहिता के तहत और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 3 के तहत दर्ज किया गया। जाँच से पता चला कि इस वारदात में एकवारी के नक्सलवादी नेता जगदीश महतो, रामेश्वर अहीर और रामनरेश दुसाध का हाथ था। इनमें से एक राइफल को बाद में 30 अक्तूबर, 1973 को पटना ज़िले में पुनपुन पुलिस स्टेशन के अन्तर्गत नक्सलवादी-विरोधी पुलिस कैम्प (नीमा स्थित) की पुलिस ने बरामद कर लिया।[1]

9 दिसम्बर, 1972
आयर, जगदीशपुर

जगदीशपुर के अत्यंत खूँखार और अत्याचारी राजपूत ज़मींदार थानासिंह की हत्या कर दी गयी। आयर गाँव और आसपास के ग़रीब मुसहर और चमार किसानों ने इस ख़बर को सुनकर राहत की साँस ली। लोग नक्सलवादियों की तारीफ़ किये बिना नहीं रह सके। जगदीशपुर ब्लाक के बरनाऊ गाँव के एक बूढ़े मुसहर ने कहा, "अगर थानासिंह की हत्या हो सकती है तो लगता है कि यहाँ की हालत भी बदल सकती है।" थानासिंह बहुत कुख्यात था और उसके बारे में लोग कहते थे, "एक थाना जगदीशपुर, दूसरा थाना थानासिंह।" इस घटना के बाद अधिकांश लोगों के लिए 'नक्सलवादी' शब्द का अर्थ उस व्यक्ति से लगाया जाने लगा जो अपने ख़ून की अंतिम बूंद तक यौन संबंधी अत्याचारों का विरोध करने के लिए तैयार हो। हरिजनों की आधी रात को होने वाली गुप्त बैठकों में 'ग़रीब पार्टी' की कार्रवाइयों और इसके सदस्यों से संबंधित कहानियाँ चर्चा का

1. चवरा गोलीकांड जाँच आयोग की रिपोर्ट (आर० सी० एफ़० आई० सी०), पृष्ठ 19

विषय बन गयीं।

परम्परागत रूप से आयर को भोजपुर के राजपूतों का गढ़ माना जाता रहा है। यहाँ के ग़रीब मुसहरों के लिए यह थानासिंह के गाँव से ज़्यादा कुछ भी नहीं है। 9 दिसम्बर, 1972 को नक्सलवादियों ने थानासिंह की हत्या करके आयर के इतिहास को एक नया मोड़ दे दिया।

आयर में केवल राजपूतों का ही बोलबाला था। गाँव की समूची ज़मीन के दो-तिहाई हिस्से पर 150 राजपूत परिवारों का क़ब्ज़ा था। धरीछन सिंह, माधोसिंह और रघुनाथ सिंह में से प्रत्येक के पास 100 बीघे से भी ज़्यादा ज़मीन थी और केवल 30 राजपूत परिवार ऐसे थे जिन्हें भूमिहीन कहा जा सकता है। जातिक्रम में दूसरे स्थान पर आने वाले ब्राह्मणों के 21 परिवारों के पास सामूहिक रूप से 100 एकड़ ज़मीन थी। यहाँ कायस्थों के चार परिवार थे जिनके पास 80 एकड़ की जोत थी। दूसरी तरफ़ पिछड़ी जातियों की उल्लेखनीय संख्या भी इस गाँव में मौजूद थी : अहीरों के 112 परिवारों और कुर्मियों के 55 परिवारों के अलावा बढ़ई, लोहार, कहार आदि पिछड़ी जातियों के काफ़ी लोग थे।

काफ़ी पहले 1957 से आयर की ऊँची और नीची जातियों के लोगों के बीच एक छोटा-मोटा संघर्ष सुगबुगा रहा था। शक्तिशाली अहीरों के नेतृत्व में पिछड़ी जाति के लोगों ने अपने को संगठित किया था ताकि वे बटाई, ऊँची जाति के अत्याचार, यौन संबंधी अत्याचार और असमान मज़दूरी के प्रश्न पर राजपूतों का मुक़ाबला कर सकें। बदले के रूप में अहीरों द्वारा अपने मवेशियों के चरागाह के रूप में इस्तेमाल की जाने वाली 40 एकड़ ज़मीन पर अगस्त, 1957 में राजपूतों ने दावा दिया और उसे अपना अखाड़ा बनाने की माँग की।

अहीरों तथा अन्य पिछड़ी जातियों के बीच असंतोष फैला और तनाव बढ़ने लगा। राजपूतों ने इस ज़मीन को अखाड़ा बनाने के लिए अक्तूबर का महीना तय किया था। दोनों तरफ़ लगातार बैठकें होती रहीं और राजपूतों ने पिछड़ी जाति के लोगों को ज़मीन ख़ाली करने का आदेश दिया। पिछड़ी जाति के लोगों के नेता जुगनू कहार ने इसका विरोध किया और संघर्ष के तीव्र होने पर जुगनू कहार के समर्थकों ने राजपूतों की बटाई-ज़मीन पर काम करना बंद कर दिया।

सितम्बर 1957 तक संघर्ष तीव्र हो चुका था और एक बार गोली भी चल चुकी थी। गाँव में पुलिस की एक टुकड़ी तैनात कर दी गयी, क्योंकि हिंसा भड़कने की आशंका थी। गोली सबसे पहले राजपूतों ने चलायी और चलतू तथा छपरी यादव नामक दो भाई मारे गये और कुछ लोग घायल हुए। आयर के सबसे ताक़तवर राजपूत राधोसिंह के रिश्तेदार केदार सिंह की पुलिस कैम्प के एकदम पास खेत से लौटते समय भाले मार-मारकर हत्या कर दी गयी।

1962-63 तक तनाव घटता-बढ़ता रहा। पिछड़ी जाति के लोगों के दिल-

दिमाग़ में अपमान नासूर बन चुका था। अब नये अत्याचारियों के चेहरे सामने आने लगे थे। केशव सिंह उर्फ थाना सिंह के बारे में निचली जातियों के लोगों की राय मज़बूत होती गयी कि वह सबसे बड़ा अत्याचारी है और आतंक के नंगे नाच के लिए ज़िम्मेदार है।

1968 में एक बार फिर आयर में राजपूतों और पिछड़ी जातियों के लोगों के बीच संघर्ष की आग भड़क उठी और इस बार थानासिंह की गोली से शिवरतन यादव और भिखारी यादव को अपनी आँखों से हाथ धोने पड़े। इसके बाद मुक़दमा चला, लेकिन इससे थानासिंह के अत्याचारों में कोई कमी नहीं आयी। बलात्कार और छेड़खानी की अनेक वारदातों में उसका हाथ रहा।[1] हालत यहाँ तक बिगड़ी कि दूर-दराज़ के गाँवों के हरिजनों के लिए भी आयर एक आतंक का नाम हो गया। एक बार उस गाँव में दीनानाथ यादव की लड़की की शादी को लेकर थानासिंह ने काफ़ी बावेला मचाया। अन्ततः पिछड़ी जातियों के लोगों ने आयर के रिश्तेदारों के यहाँ अपनी बेटियों की शादी बंद कर दी। थानासिंह के जुल्म के शिकार तमाम लोगों ने बदला लेने की क़सम खायी थी।

एक बार सहार के धान के खेतों से संबंधित आंदोलन के पड़ोसी गाँवों तक फैलने पर एकवारी गाँव के संघर्ष दस्ते ने अत्याचारियों की तलाश के लिए मुहिम शुरू की और इस दस्ते में लोगों को भर्ती करने लगे। आयर में रामायण चमार नामक एक व्यक्ति ने जगदीश महतो के आह्वान पर अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त की। रामायण के भांजे जवाहर चमार ने भी ऐसा ही किया। इनकी पर्याप्त शिकायतें थीं। रामायण का गुस्सा हरिसिंह के परिवार के खिलाफ़ था, जो राजपूत जाति के थे और जिनका व्यवहार काफ़ी हद तक थानासिंह से मिलता-जुलता था।

एक दिन जब रामायण की पत्नी धरीछनसिंह के खेत में काम कर रही थी, उसके दो लड़कों उपेन्द्रसिंह और नरेन्द्रसिंह ने उससे छेड़खानी की और उसका शील भंग करना चाहा, लेकिन उन्हें इसमें सफलता नहीं मिल सकी। इस घटना की जानकारी होने पर रामायण चमार ने हरिसिंह के भाई धरीछनसिंह से अपना विरोध व्यक्त किया। इसका नतीजा यह हुआ कि जब वह पास की आटा-चक्की से लौट रहा था, धरीछनसिंह के आदमियों ने बंदूक तानकर इसको बहुत पीटा। रामायण ने इन लोगों को कभी माफ़ नहीं किया और इसके कुछ ही दिनों बाद उसने 'एकवारी के मास्टर साहब' के ग्रुप की सदस्यता ले ली। इसके बाद घट-

1. थानासिंह पर इन औरतों के साथ बलात्कार करने का आरोप था—नंदी साव की पोती, शिरपुंजन की बेटी, राजू कहार की पत्नी, मेधा पासी की पत्नी, राम इकबाल की पत्नी, केअडपासी की पत्नी, लालन पासी की पत्नी, चाँदी गाँव के सफ़रुद्दीन की माता तथा बेटी, सिमरोहा, सहार की एक मुंसहर लड़की और सिंघासन सिंह की पत्नी, आदि-आदि।

नाओं का सिलसिला बड़ी तेज़ी से शुरू हो गया।

थानासिंह की हत्या के सिलसिले में यह आरोप लगाया गया कि उस छापामार दस्ते में जगदीश महतो, रामायण चमार और उसका भांजा जवाहर वहाँ मौजूद थे। गाँव वालों ने बम का धमाका सुना था। थानासिंह, जो औरतों के बीच रंगरेलियाँ मना रहा था, मारा गया। हत्यारों में से कोई भी पहचाना नहीं जा सका और अनेक निर्दोष लोगों को संदेह के आधार पर गिरफ़्तार किया गया। इनमें गाँव के मुखिया प्रगार यादव भी थे। बाद में सारे लोग छोड़ दिये गये। दूसरी तरफ़ थानासिंह के रिश्तेदारों ने अपने ही एक राजपूत साथी दीनानाथ सिंह पर शक किया और दो महीने बाद बदले के रूप में उसकी हत्या कर दी। इसके बाद निचली जातियों के और कई लोग पकड़े गये और इनमें से अधिकांश को आजन्म कारावास की सज़ा मिली। ख़ूनी संघर्ष शुरू हो चुका था।

तीन लोगों के दस्ते को कई आदमियों से हिसाब चुकाना था। इनका अगला निशाना हरिसिंह था। दूसरे दिन 10 दिसम्बर, 1972 को बिहिआ बाज़ार में एक चाय की दूकान पर इन लोगों ने हरिसिंह पर हमला बोल दिया। इस मुठभेड़ में जगदीश महतो और रामायण चमार दोनों मारे गये, लेकिन जवाहर को भाग निकलने में सफलता मिल गयी। हरिसिंह बाल-बाल बच गया जिसे बाद में उग्रपंथियों ने मार डाला।

बिहिआ के आफ़िसर-इन-चार्ज ने अपनी जाँच-पड़ताल के बाद जो रिपोर्ट दी, उसमें यह स्वीकार किया गया था कि हरिसिंह के साथ पुरानी दुश्मनी के कारण रामायण मारा गया, "जगदीशपुर के आफ़िसर-इन-चार्ज से यह पता चला कि हरिसिंह भी अपराधियों का एक साथी है और उसे आगर गाँव के स्वर्गीय थानासिंह के नेतृत्व वाले गिरोह का समर्थन प्राप्त है। बाद में यह पता चला कि कुछ महीने पहले हरिसिंह के भांजे ने आयर के रामायण चमार की भावो (छोटे भाई की पत्नी) का शील भंग करना चाहा था, लेकिन उसके हल्ला मचाने पर अगल-बग़ल के मर्द इकट्ठे हो गये और उन्होंने उसे थप्पड़ों से पीटा। उस दिन हरिसिंह अपने घर पर मौजूद नहीं था और वापस लौटने पर जब उसे इन सारी बातों का पता चला तो उसने रामायण चमार तथा अन्य मर्दों को बुलाकर अपने दरवाज़े के खम्भे से बँधवा दिया और बहुत बुरी तरह पीटा। बाद में यह पता चला कि आयर के रामायण का रिश्तेदार जवाहर चमार नामक व्यक्ति है। रामायण और जवाहर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) के सदस्य हैं और बदला लेने के लिए उन्होंने एकवारी गाँव के जगदीश महतो को निमंत्रित किया जिनके बारे में कहा जाता है कि वह इस पार्टी के महत्वपूर्ण सदस्य हैं। 9 दिसम्बर को वे सभी आरा शहर में इकट्ठे हुए और उन्हें पता चला कि हरिसिंह भी किसी काम से इस क़स्बे में आया हुआ है।"

इसके बाद आयर में कभी शांति नहीं क़ायम हो सकी।

10 दिसम्बर, 1972
बिहिआ बाज़ार, बिहिआ

"मेरा नाम जगदीश महतो है। मैं ग़रीबों के लिए लड़ता हूँ। मैं तुम लोगों का दोस्त हूँ," वह लगातार यह कहते जा रहे थे और उन पर अंधाधुंध लाठियाँ गिर रही थीं। उन्होंने रामायण चमार से सटकर जान बचाने की कोशिश की, लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ। रामायण भी मारे गये। तीसरे व्यक्ति जवाहर चमार को भागने में कामयाबी मिल गयी। लेकिन बाद में पिंजरोही में वह भी मारे गये। इस घटना के बाद जब मुसहरों को पता चला कि उन्होंने अपने 'मास्टरजी' को ही मार डाला तो दुख के कारण तीन दिन तक उन लोगों ने खाना नहीं खाया।

बिहिआ बाज़ार में हरिसिंह को गोलियों से गंभीर रूप से घायल करने के बाद वे भाग गये। यह मुठभेड़ सवेरे दस बजे हुई थी। शोरगुल सुनकर कुछ ट्रक-ड्राइवरों ने, जो अपने ग़ायब हो गये सामान के सिलसिले में बदमाशों की टोह में खड़े थे, हल्ला मचाया। उनका भी ख़याल था कि वे बदमाश पीछा कर रही भीड़ में मिल गये थे।

इस हल्ले-गुल्ले में जनता के बीच से भी कुछ लोग पीछा करने में शामिल हो गये थे। जगदीश महतो और उनके साथी पास के महतिन दाई मंदिर की तरफ़ बढ़े और मुसहर टोली पार करते हुए खदरा गाँव में पहुँचे। इलाक़े को ख़ाली कराने के बाद पुलिस को दो लाशें मिलीं—रामायण चमार की लाश घुरलाही अहीर के गेहूँ के खेत में और जगदीश महतो की लाश बिसवनाथ साव के खेत में मिली।

इस ख़बर के एकवारी पहुँचने पर जगदीश महतो की पत्नी कमलेश्वरी देवी फूट-फूटकर रो पड़ीं। मीलों दूर आरा सदर अस्पताल में जगदीश महतो और रामायण चमार की लाशें अगल-बग़ल पड़ी थीं। बिहिआ के डी० आई० ने लिखा :

"आई० ओ० आयर और एकवारी गाँव में गये और गाँव वालों को तथा ग्रामीण पुलिस को दोनों मृतकों के फ़ोटो दिखाये गये ताकि शिनाख़्त की जा सके और शक की कोई गुंजाइश न रहे। ये फ़ोटो बाल्मीकि सिंह, राजाराम सिंह, बंसी सिंह, रामगोविंद सिंह, मदन सिंह, श्यामलाल, रामाधार राय, सुरेन्दर राय, जय-नंदन शर्मा तथा जगदीश महतो के पिता सुदामा महतो और जगदीश की पत्नी कमलेश्वरी देवी सहित अनेक लोगों को दिखाये गये। गाँव वालों ने बताया कि इनमें से एक फ़ोटो उनके गाँव [illegible]दीश महतो से मिलती-जुलती है।

"जब इस फ़ोटो को सुदामा महतो को दिखाया गया तो उनकी आँखें आँसुओं से भर उठीं और वह बुरी तरह बेचैन हो गये। फिर भी उन्होंने कहा कि इस फ़ोटो को वह नहीं पहचान पा रहे हैं। कमलेश्वरी देवी ने भी फ़ोटो को पहचानने से इंकार किया, हालाँकि उनके हाथ में एक भी चूड़ी नहीं थी, माथे पर सिंदूर पुछा हुआ था और आँखें आँसुओं से भरी थीं। गाँव वालों ने बताया कि कमलेश्वरी देवी ने 12 दिसम्बर, 1972 को, मास्टरजी के बारे में ख़बर मिलने के बाद, अपने सिंदूर को धो डाला था और चूड़ियाँ तोड़ दी थीं। यह भी ख़बर मिली कि जगदीश महतो की मृत्यु का समाचार मिलने के बाद उनका पूरा परिवार उस दिन रो रहा था।

"आयर गाँव के श्री बैजनाथ सिंह, उमाशंकर सिंह, राजबल्लभ सिंह, बृज-नंदन सिंह, शत्रुघन सिंह, अर्जुन सिंह, राजनारायण सिंह (दफ़ादार), अशोक-कुमार सिंह, जयगोबिन्द दुसाध तथा अन्य लोगों को भी दोनों तसवीरें दिखायी गयीं और इन लोगों ने एक तसवीर को पहचानकर बताया कि यह रामायण चमार की फ़ोटो है, लेकिन दूसरी तसवीर के बारे में कुछ भी बताने से इंकार कर दिया। रामायण चमार की विधवा के हाथ में न तो चूड़ी थी और न माथे पर सिंदूर। यह भी बताया गया कि उसने मुठभेड़ में अपने पति की मृत्यु का समाचार मिलने के बाद सिंदूर धो डाला था। गाँव वालों ने दूसरी तसवीर को पहचानने से इंकार किया, लेकिन गाँव में यह पता चला कि एकवारी के जगदीश महतो आयर गाँव के दीनानाथ अहीर के घर गये थे।"

अपने पति के बारे में बताते हुए कमलेश्वरी देवी बीच-बीच में एकदम ख़ामोश हो जाती हैं—"10 जून, 1954 को जगदीशजी के साथ मेरी शादी हुई थी। मैं उस समय छठी कक्षा में पढ़ रही थी। मेरे पति आरा जैन स्कूल में दसवीं कक्षा के छात्र थे, लेकिन हम एक-दूसरे को गौना होने के बाद ही देख सके। 6 दिसम्बर, 1957 को जब मैं एकवारी पहुँची, तब तक वह पटना साइंस कॉलेज से अंडर-ग्रेजुएट हो चुके थे। मैट्रिकुलेशन परीक्षा में उनको 69 प्रतिशत से भी अधिक अंक मिले थे और 1400 रुपये की स्कॉलरशिप मिल गयी। कभी-कभी जब वह आरा में अपने भाई से मिलने आते थे, जो वहाँ चौथी कक्षा का छात्र था, तो वह मुझसे भी आकर मिल जाते।"

वह चुप हो जाती हैं और फिर थोड़ी देर बाद यादों में खो जाती हैं। "शादी से पहले और मेरे एकवारी आने से भी पहले मास्टर साहब गाँव के मिडिल स्कूल में पढ़ते थे। उनका मन यहाँ नहीं लगता था, क्योंकि यहाँ विज्ञान के अध्ययन की कोई सुविधा नहीं थी और यह उनका प्रिय विषय था। इसके अलावा स्कूल के भूमिहार सेक्रेटरी दीनानाथ सिंह भी यह नहीं चाहते थे कि वह आगे पढ़ाई करें।

"दीनानाथ सिंह अकसर मास्टर साहब के पिताजी से कहते सुदामा,

तुम्हारा बेटा तुम्हारी तरह नहीं है। तुम उसके बाप हो और हम लोग इतने सालों तक तुम्हारे मालिक रहे हैं। वह सोचता है कि उसे पढ़ना-लिखना आ गया है, इसलिए बड़ों को इज़्ज़त देने की ज़रूरत नहीं है। आजकल हमारे सामने वह चारपाई पर ही बैठा रहता है और खड़ा भी नहीं होता। यह कोई अच्छी बात नहीं है।

"बहुत टालमटोल के बाद दीनानाथ सिंह ने उन्हें सर्टिफ़िकेट दिया जिसके आधार पर वह आरा हाईस्कूल में दाखिल हो सकते थे। मैंने सुना है कि जब तक वह एकवारी में थे दूसरे लड़कों की तरह उन्होंने न तो कभी गोली खेली और न पतंग उड़ायी।"

कमलेश्वरी देवी थोड़ा रुककर बोलती हैं, "मैं आपको एक बात बताऊँ। दीनानाथ सिंह भूमिहार थे और उन्हें इस बात से ईर्ष्या होती थी कि कोइरी जाति का कोई लड़का पढ़ने में तेज़ निकल जाये और तरक़्क़ी की दिशा में बढ़े। यहाँ तक कि शादी के बाद भी वह बहुत कटे-कटे और अकेले रहना पसंद करते थे। मैंने कभी उन्हें दोस्तों के साथ नहीं देखा। ज़्यादातर समय वह एकांत में ही बिताते थे। मास्टर साहब जब ढाई साल के थे तभी उनकी माँ मर गयी थी और इकलौते होने के नाते उन्हें अपने पिता का बहुत ज़्यादा प्यार मिला था।

"जगदीशजी इंजीनियर या सरकारी अफ़सर बनना चाहते थे, लेकिन स्कूल के रजिस्टर में उनकी उम्र असली उम्र से ज़्यादा दर्ज थी और इस तरह वह एक अध्यापक बन सके। जुलाई 1964 में उन्होंने राजेन्द्र कॉलेज, छपरा से बी० एस-सी० परीक्षा पास की और औरंगाबाद के चिलकी हाई स्कूल में अध्यापक की नौकरी शुरू की। इसके बाद से लोग उन्हें मास्टर साहब ही कहकर बुलाने लगे। 1965 से 1967 तक हम लोग औरंगाबाद में ही रहे और 1967 के चुनाव के दौरान उन्होंने छुट्टी ली।

"17 फ़रवरी, 1967 को चुनाव के दौरान ही उन पर भीषण मार पड़ी। इस मार से उनकी मृत्यु हो गयी होती, लेकिन यह एक चमत्कार ही था कि वह जीवित बच गये। इसके बाद से वह और भी ज़्यादा चुप रहने लगे और ऐसा लगता था कि जैसे कोई चीज़ उन्हें अंदर-ही-अंदर खाये जा रही हो। अकसर वह कहा करते—'सब बेकार है। गाँव में कोई इज़्ज़त नहीं है। मैं एक अध्यापक हूँ और मुझे आदमी को मिलने वाली इज़्ज़त नसीब नहीं हो रही है। मैं इसे कभी नहीं भूलूंगा। उस दिन से तुम्हारे सर पर यह जो सिंदूर लगा है उसका कोई अर्थ नहीं है। तुम भी अपनी इज़्ज़त खो चुकी हो, केवल मैं ही नहीं।'"

लालटेन की रोशनी में कमलेश्वरी देवी की आँखें चमक उठती हैं और आवाज़ काँपने लगती है। काफ़ी देर तक खामोशी छायी रहती है। वह अतीत की स्मृतियों में खो चुकी हैं और मैं आँगन में हिलती परछाइयों को देखता हूँ।

"अपने पति पर हुए आक्रमण के बाद मैं कभी-कभार सिंदूर लगा लेती थी, लेकिन उनके कामरेड के रूप में जब मैं उनके साथ भूमिगत हुई तब से सिंदूर लगाना बिलकुल ही बंद कर दिया था। कभी-कभी जब हम मिलते थे तो वह बड़े मज़ाकिया लहजे में मेरा हाथ पकड़ लेते और मेरी चूड़ियों को तोड़ते हुए कहते, 'इनकी शोभा 17 फ़रवरी, 1967 तक ही थी—अब इनका कोई अर्थ नहीं है।'

"उन्हीं दिनों मैं उनके दोस्तों को जान सकी। मास्टर साहब कहा करते थे, 'अब सारी दुनिया मेरा परिवार है।' वह और रामेश्वर अहीर उन्हीं दिनों एक-दूसरे के सम्पर्क में आये। दोनों लोग अदालत में गये और वहाँ उन्होंने एक दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करके अपनी पुश्तैनी ज़मीन पर से अपने दावों को त्याग दिया। अब वह एकांतप्रिय व्यक्ति की बजाय एक सामाजिक व्यक्ति बन गये थे। उन दिनों उनके ढेर सारे दोस्त घर पर आते थे। उनमें कुछ सोशलिस्ट थे और कुछ कम्युनिस्ट, तो कुछ शोषित दल के सदस्य भी थे। वे एक संगठन बनाने के बारे में बातचीत करते रहते। मैं मन-ही-मन मनाती थी कि उनका यह सपना पूरा हो, हालाँकि इन बातों को मैं बहुत ज़्यादा समझ नहीं पाती थी।"

14 अप्रैल, 1970 को 'अम्बेडकर दिवस' के अवसर पर आरा में जितना विशाल प्रदर्शन हुआ वह आरा के इतिहास में अभूतपूर्व था। आरा के नज़दीक अनैठ गाँव से जगदीश महतो, रामेश्वर अहीर, लताफ़त हुसैन तथा अन्य लोगों के नेतृत्व में एक मशाल-जुलूस निकाला जो 'हरिजनिस्तान लड़ के लेंगे' गाते हुए रमणा मैदान में इकट्ठा हुआ। इस प्रदर्शन में बहुत बड़ी संख्या में पिछड़ी जातियों के किसानों और खेतिहर मज़दूरों ने हिस्सा लिया था। जुलूस निकलने से पहले जगदीश महतो ने सहार ब्लाक के कोसियार, बरुना और इनरुखी गाँव में घूम-घूमकर छुआछूत के खिलाफ़ ज़बरदस्त प्रचार किया था। एकवारी गाँव में भी स्थितियाँ अब बदलने लगी थीं।

आरा शहर से 16 मील की दूरी पर स्थित एकवारी गाँव चहल-पहल से भरा विभिन्न जातियों वाला गाँव है, जहाँ की कुल आबादी 15,000-16,542 है। इस गाँव में 1045-1200 परिवार बसे हैं। सबसे ज़्यादा संख्या भूमिहारों की है जिनके 265 परिवार हैं। इसके बाद 110 परिवार बनियों के, 105 मुसहरों के, 52 चमारों और दुसाधों के, 40 यादवों के, 52 झटेरों के तथा कुछ अन्य परिवार भी हैं।

एकवारी की ज़मीन बहुत उपजाऊ है और इस ज़मीन की क़ीमत 10 से 20 हज़ार रुपये प्रति बीघा है। एक बीघा ज़मीन में 35 से 40 मन अनाज होता है। मज़दूरी की दर वही है जो सहार के अधिकांश गाँवों में प्रचलित है: फ़सल कटाई के समय कच्चे सेर से तीन सेर चावल और शाम का खाना तथा

धान के प्रत्येक 21 बोझे पर एक बोझा धान। हलवाहे को 10-12 कट्ठा ज़मीन प्रतिदिन दो सेर (कच्चा सेर) चावल मिलता है। वर्ग-दुश्मनों का सफ़ाया-अभियान शुरू होने से पहले कभी भी मज़दूरी के सवाल को लेकर संघर्ष चलाने का प्रमाण नहीं मिलता। किसी हड़ताल का भी ज़िक्र नहीं मिलता है। इसके विपरीत, निचली जातियों के लोगों पर भूमिहारों के अत्याचार और उद्दंड व्यवहार एकवारी की अत्यंत दुखद वास्तविकता थी। निचली जाति की महिलाओं के साथ बलात्कार एक ऐसी सामाजिक बुराई थी जिसे लोगों ने अपनी नियति मान कर स्वीकार कर लिया था।

इन्हीं दिनों उत्तर बंगाल के नक्सलबाड़ी इलाके में किसानों के सफल विद्रोह की ख़बरें यहाँ पहुँची और एकवारी के एक कम्युनिस्ट रामनरेश दुसाध को इस विद्रोह ने अभूतपूर्व ढँग से आकर्षित किया। उनके घनिष्ठ मित्र जगदीश महतो भी इससे आकर्षित हुए बिना नहीं रह सके। उन्होंने एकवारी के निचली जातियों के युवकों को संगठित और प्रशिक्षित करना शुरू किया। दो वर्षों तक वह हम-ख़याल मित्रों की तलाश करते रहे। उनकी तलाश को उस समय सफलता मिली जब रामेश्वर अहीर नामक यादव जाति का व्यक्ति हत्या के आरोप में बारह साल की सज़ा काटने के बाद एकवारी वापस लौटा। रामेश्वर को देखते ही जगदीश महतो बच्चे की तरह फूट-फूटकर रो पड़े—"मेरी अब कोई इज्ज़त नहीं बची है, रामेश्वर !" यह भूतपूर्व डकैत अब काफ़ी सुधर चुका था। दोनों में दोस्ती हो गयी और इन्होंने फ़ैसला किया कि सामाजिक परिवर्तन के लिए वे अपना जीवन समर्पित कर देंगे।

जगदीश महतो, रामनरेश दुसाध और रामेश्वर अहीर दिनोंदिन घनिष्ठ होते गये और एक अटूट निष्ठा के सूत्र में बँध गये। लगभग इन्हीं दिनों एकवारी के भूमिहारों ने चन्द्रिका दुसाध और गोरा चमार को बहुत बुरी तरह पीटा, क्योंकि ज़मींदारों की निगाह में ये दोनों बदतमीज़ और उद्दंड होते जा रहे थे। जगदीश महतो और रामेश्वर अहीर ने इन दोनों का पक्ष लिया और इस अन्याय का विरोध किया। भूमिहार औरतों ने मज़ाक उड़ाया। "अगर गोरा की लाश फूंकने के लिए लकड़ी न मिले तो ज़रूरत पड़ने पर हम अपने पेटीकोट दे सकती हैं।" नतीजा यह हुआ कि भूमिहारों ने उन्हें दफ़ा 107 के अंतर्गत एक मामले में फँसा दिया। इसके विरोध में कोइरियों और दुसाधों का एक ग्रुप जगदीश महतो के साथ एस० डी० ओ० से मिला और एकवारी में एक पुलिस-चौकी स्थापित कर दी गयी।

रामेश्वर के लिए अब बरदाश्त करना मुश्किल था। उनके पिता लगातार उनसे कहते थे कि मारपीट का रास्ता छोड़कर वह घर की ज़िम्मेदारी संभाले। लेकिन रामेश्वर ने जवाब दिया, "सुनो बुढ़ऊ, ये सब भूमिहार मुझे नहीं

छोड़ेंगे—ये हमें चैन से नहीं रहने देंगे। इनकी मंशा मुझे फिर से फँसाने की है, लेकिन इस बार मैं जेल नहीं जाऊँगा।" इसके कुछ ही दिनों बाद रामेश्वर और जगदीश महतो दोनों ने अदालत में जाकर एक बख़्शीशनामा भरा और अपनी ज़मीन पर से हर तरह के दावे को छोड़ने का वचन देते हुए लिखा—"हम लोग अब साधु हो रहे हैं और यह सब छोड़ रहे हैं। हमें यह नहीं पता है कि हम ज़िन्दा रहेंगे या मर जायेंगे।" फिर जगदीश महतो ने आरा के एच० डी० जैन स्कूल की अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया।

23 फ़रवरी, 1971 को 7-8 बीघा की जोत वाले एक ज़मींदार शिवपूजन सिंह की लाश पास की नहर के दक्षिण में पड़ी मिली। इस घटना से हरिजनों के अंदर काफ़ी जोश पैदा हुआ, क्योंकि शिवपूजन सिंह ज़मींदारों का बहुत वफ़ादार लठैत था और उसकी निगाह हमेशा हरिजन औरतों पर लगी रहती थी। कुछ ही दिनों पहले शिवपूजन ने एकवारी के पास के गाँव इनरुखी की औरत के साथ बलात्कार किया था और उसके ज़ेवर लूट लिये थे। चन्द्रिका दुसाध और गोरा चमार को बेरहमी से पीटने में भी शिवपूजन का हाथ था।

30 मार्च, 1971 को 25 एकड़ की जोत वाले 35-वर्षीय ज़मींदार जगदीश सिंह की उस समय हत्या कर दी गयी जब वह अपने खेत से लौट रहे थे। उन्हें रास्ते में रामेश्वर अहीर ने रोका और कहा, "ऐ बाबू जगदीश सिंह, ज़रा सुनियेगा।" जब वह क़रीब पहुँचे तो रामेश्वर ने गोली चला दी। दरअसल शिवपूजन सिंह की हत्या के बाद जगदीश सिंह ने एकवारी के भूमिहार नौजवानों को संगठित करना शुरू कर दिया था, ताकि वे नक्सलवादियों का मुक़ाबला कर सकें और खेतिहर मज़दूरों को आतंकित करते रहें जिससे वे नक्सलवादियों की क़तार में न शामिल हों। 9 जून, 1971 को दूधेश्वर सिंह की हत्या हुई—वह 5 बीघे की जोत वाले ज़मींदार थे और समझा जाता है कि एक एकवारी में गठित नक्सलवादी-विरोधी गुट के एक महत्वपूर्ण सदस्य थे। इसके थोड़े ही दिनों बाद इस गुट के एक दूसरे सदस्य परमहंस सिंह की हत्या हुई और जून 1976 में इन्हीं के एक अन्य साथी मंगल सिंह मारे गये। धीरे-धीरे एकवारी की ख्याति 'भोजपुर के नक्सलबाड़ी' के रूप में दूर-दूर तक फैल गयी और सम्पत्तिवान भूमिहारों तथा गाँव के भूमिहीन हरिजनों के बीच भय-संदेह और नफ़रत की दीवार खड़ी हो गयी।

23 फ़रवरी, 1971 से एकवारी में 15 से भी अधिक ज़मींदारों की हत्या हुई और इस बात के कोई संकेत नहीं दिखायी दे रहे थे कि भूमिहीन किसान और हरिजन संघर्ष में पीछे हटेंगे। सहार पुलिस-स्टेशन के सब-इंस्पेक्टर लाल बाबू साव ने अत्याचारी भूमिहारों को कई बार चेतावनी दी थी और इस चेतावनी की सच्चाई का अब पता चल रहा था। जगदीश महतो और रामेश्वर

अहीर ने जिस युद्ध की शुरुआत की थी उसके ख़तरनाक चिह्न जगह-जगह दिखायी दे रहे थे, हालाँकि ऊपरी तौर पर काफ़ी कुछ शांत नज़र आ रहा था।

एकवारी के बस-स्टॉप से तक़रीबन आधे घंटे की दूरी पर वह घर है जहाँ जगदीश महतो पैदा हुए और जहाँ उन्होंने अपनी ज़िंदगी का उल्लेखनीय हिस्सा गुज़ारा। कमलेश्वरी देवी बहुत कम बोलती हैं। उनके सर के बाल सफ़ेद हो चुके हैं और आँखें अंदर धँस गयी हैं। उन्होंने कहा, "बहुत बुरा ज़माना आ गया है। उन दिनों जो लोग मास्टर साहब के साथ रहा करते थे वे मुझसे अब मिलने भी नहीं आते। यहाँ तक कि कभी ज़रूरत पड़ने पर अगर मैं उन्हें बुलाती हूँ तो भी वे नहीं आते। वे मुझसे बस यही कहते हैं कि मैं भी भूमिगत आंदोलन में शामिल हो जाऊँ। मास्टर साहब तो मुझसे कहते-कहते थक चुके थे। वह भी बराबर यही कहा करते थे। कुछ दिनों तक उनके साथ मैंने भूमिगत जीवन बिताया भी, लेकिन मेरी तंदुरुस्ती ने साथ नहीं दिया।

"एक बार लम्बी बीमारी के बाद मैं पटना से वापस आयी तो मास्टर साहब ने मुझे यह बताना शुरू किया कि एक क्रांतिकारी के क्या कर्तव्य हैं। रिक्शे से उतरने के बाद उन्होंने रिक्शेवाले की तरफ़ इशारा करते हुए मुझसे कहा—'मैं इस रिक्शेवाले को एक इज़्ज़तदार ज़िंदगी देना चाहता हूँ।' उस समय मेरी बिटिया उर्मिला बहुत छोटी थी। मास्टर साहब ने उर्मिला की तरफ़ देखा और कहा—'उर्मिला तू मेरे पास आ। तुम पर ही मुझे काफ़ी उम्मीद है। मैं तुम्हारे सारे सपनों को तो पूरा नहीं कर सकता, लेकिन मैं तुम्हें ऐसा बनाऊँगा जो अन्याय के ख़िलाफ़ लड़ सके। उर्मिला, तुम बाघ की बच्ची हो।'

"कुछ दिनों पहले सरकार की तरफ़ से कुछ बड़े-बड़े अफ़सर मेरे पास आये। उन्होंने कहा कि वे मेरी देखभाल करना चाहते हैं और यह जानना चाहा कि क्या मैं एकवारी में सहकारी स्तर पर बुनाई का काम शुरू करना चाहूँगी?" कमलेश्वरी देवी के चेहरे पर हलकी मुसकान उभरती है। फिर क्षण-भर बाद ही चेहरे की झुर्रियों में कुछ हरकत होती है और वह अपने आँसू रोकने की कोशिश करती हैं। "मैंने उनसे कहा कि वे मुझे मेरे हाल पर छोड़ दें। मैंने कहा कि जिस सरकार ने मेरे पति को मार डाला वह अब मेरी क्या मदद कर सकती है? मैं जैसे भी हूँ, ठीक हूँ। मेरे पति कोई अपराधी नहीं थे। उन्होंने एक शहीद की मौत पायी। अगर यह सब नहीं हुआ होता तो एकवारी आज भी पहले ही तरह पिसता रहता। हालाँकि यहाँ के हरिजन अभी भी काफ़ी कमज़ोर हैं, लेकिन पहले के मुक़ाबले अब उनमें ज़्यादा चेतना है। मुझे भी अकेलापन महसूस होता है। सरकार मास्टर साहब को वापस तो नहीं ला सकती। वह केवल मुझे एक नौकरी दे सकती है। मुझे यह नहीं चाहिए।"

आँगन के ख़ामोश वातावरण में कमलेश्वरी देवी की आवाज़ दर्द से काँप उठती है।

6 मई, 1973
चवरी, सहार

इस दौरान नक्सलवादियों ने एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया। एकवारी की हत्याओं, रामेश्वर अहीर, रामनरेश दुसाध तथा दूसरे लोगों के प्रकाश में आने और आंदोलन के विस्तार ने दुल्लमचक, अगियवाँ बेख, बरुही और चवरी जैसे अगल-बग़ल के गाँवों को बहुत बुरी तरह प्रभावित किया। 6 मई, 1973 को भोजपुर के सहार ब्लाक के गाँव चवरी में पुलिस और मज़दूरों के बीच ज़बरदस्त संघर्ष हुआ और इस प्रकार चवरी गाँव चर्चा का विषय बन गया। इस घटना पर अजीबोग़रीब प्रतिक्रियाएँ सुनने को मिलीं :

"श्री रंजीतबहादुर सिंह, एम० एल० सी० ने राजनीतिक दलों के नेताओं से अपील की है कि वे भोजपुर ज़िले में चवरी में क़ानून और व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति में सुधार लाने के लिए प्रशासन को भरपूर समर्थन दें...श्री सिंह ने प्रशासन की इस बात के लिए बड़ी सराहना की कि उसने विस्फोटक स्थिति का कड़ाई से सामना करके समयानुकूल कार्रवाई की।"[1]

"भूतपूर्व पुलिस-मंत्री और बिहार राज्य सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष रामानंद तिवारी ने यहाँ संवाददाताओं को बताया कि भोजपुर ज़िले में चवरी में हुई घटना में नक्सलवादियों का हाथ नहीं है, बल्कि यह मज़दूरी बढ़ाने के लिए ज़मींदारों और भूमिहीनों के बीच का संघर्ष है।"[2]

"चवरी से लौटने के बाद समाजवादी नेता कर्पूरी ठाकुर ने बताया कि मज़दूरी के भुगतान तथा खेती के लिए ज़मीन देने के प्रश्न पर पिछले डेढ़ वर्षों से ज़मींदारों और खेतिहर मज़दूरों के बीच संघर्ष चल रहा था।"[3]

आरा से 22 मील की दूरी पर स्थित चवरी गाँव में 137 परिवार बसते हैं। यह इलाक़ा सहार थाने के अंतर्गत आता है। इस गाँव में विभिन्न जातियों के लोग हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—भूमिहार ब्राह्मण-33, वैश्य-6, दुसाध-30, रजवार-15, कुम्हार-30, अहीर-5, कोइरी-10, हलवाई-3, मुसलमान-10, नाई-1, धोबी-1, लुहार-1 और बढ़ई-1।

आर्थिक दृष्टि से देखें तो चवरी काफ़ी लाभदायक स्थिति में है। यह भोजपुर

1. 'द इंडियन नेशन', 11 मई, 1973
2. वही, 9 मई, 1973
3. वही, 11 मई, 1973

ज़िले के उस इलाक़े में पड़ता है जहाँ से होकर नहर गुज़रती है। इस प्रकार यहाँ के खेतिहरों को सिंचाई के लिए पानी मिलने की हमेशा गारंटी रहती है। यहाँ की ज़मीन काफ़ी उपजाऊ है और साल में इसमें तीन फ़सलें पैदा की जाती हैं। अगर नये क़िस्म के बीजों का इस्तेमाल किया जाये तो एक बीघे में साठ मन तक गेहूँ पैदा किया जा सकता है। 1971 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार—

—547.11 एकड़ खेती योग्य सिंचित भूमि है,

—78.43 एकड़ असिंचित है, और

—150 एकड़ ज़मीन ऐसी है जो खेती के लिए उपलब्ध नहीं है।

1971 से इस गाँव में 369 पुरुष और 77 महिलाएँ साक्षर थीं, अर्थात 50 प्रतिशत पुरुषों और 11 प्रतिशत महिलाओं में साक्षरता का प्रसार था। जो मज़दूर मारे गये या जिन्हें ग़लत मामलों में फँसाया गया उनमें से अधिकाँश एक हद तक शिक्षित थे। चवरी में एक हाईस्कूल और एक प्राइमरी स्कूल है।

हाल के एक सर्वेक्षण[1] से पता चला है कि इन मज़दूरों में 90 प्रतिशत भूमि-हीन हैं। इसके अलावा प्रमुख जोत के मालिक भूमिहार जाति के लोग हैं। पूरे साल खेतों में पिछड़ी जातियों के लोग काम करते रहते हैं।

मज़दूरी को लेकर काफ़ी पहले 1968-69 में ही मतभेद सामने आ गये थे। 1971-72 में इलाक़े के प्रमुख ज़मींदारों ने कोठा वाली ज़मीन और मज़दूरों को मिलने वाले अनाज की मात्रा में कटौती कर दी। 1973 के प्रारंभ से ही ज़मींदारों ने कड़ा रवैया अपना लिया। एक बीघा कोठा भूमि के बदले वे केवल 14 कट्ठा देने लगे, गन्ना पैदा करने के लिए जो दो कट्ठा ज़मीन दी गयी थी उसे उन लोगों ने वापस ले लिया, कटनी के समय प्रत्येक 21 बोझे पर मज़दूरों को मिलने वाले एक बोझा चैती को रोक दिया गया। रोपनी के समय कच्चे सेर से जो चार सेर धान दिया जाता था उसे भी बंद कर दिया गया, बीस मन धान को घटा कर दस मन कर दिया गया, जुताई के समय कच्चे सेर से तीन सेर धान और नाश्ते के लिए सत्तू दिया जाता था—उसे भी बंद कर दिया गया। इसके अलावा ज़मींदारों ने इस बात पर मजबूर करना शुरू किया कि (1) भूमिहीन मज़दूर रात में घर जाने के बजाय खेत की रखवाली करें, (2) इन मज़दूरों के परिवार की औरतें कटी हुई फ़सल को खेत से खलिहान तक तथा खलिहान में तैयार अनाज को ज़मींदारों के गोदाम तक बग़ैर किसी अतिरिक्त मज़दूरी के ढोकर पहुँचायें।

अंततः जब क़ीमतों में बेतहाशा वृद्धि हो गयी और मज़दूरों ने मज़दूरी बढ़ाने के लिए दबाव डाला तो ज़मींदारों ने पूरी हठधर्मिता का परिचय दिया। 6 मई, 1973 से कुछ दिन पूर्व मज़दूरों ने काम करना बंद कर दिया, जिसके फलस्वरूप

1. नेशनल लेबर इंस्टीट्यूट, नयी दिल्ली द्वारा फ़रवरी-मार्च 1978 में आयोजित सर्वेक्षण

गेहूँ की कटनी रुक गयी। आख़िरकार ज़मींदारों ने झूठे आश्वासनों और वायदों का सहारा लिया जिससे वे फिर कटनी के लिए तैयार हुए।

सहार में 1971 में नक्सलवादी गतिविधियाँ शुरू हो गयी थीं। इन गतिविधियों का केंद्रबिंदु एकवारी था और एकवारी के आस-पास के गाँव जैसे—दुल्लमचक, सिकरहट्टा, कोलोदेहरी, बेरात, बहुआरा और चवरी भी इससे पूरी तरह प्रभावित हुए। चवरी में तेज़ गतिविधियाँ नज़र आने लगीं।

1972 तक सहार में नक्सलवादी गतिविधियाँ दिखायी पड़ ही चुकी थीं। जगदीश महतो, रामेश्वर अहीर और रामायण राम उन लोगों में थे जिन्होंने शुरू में संगठनात्मक काम किया और नक्सलवादी विचारधारा को सहार के गाँव में दूर-दूर तक फैलाया।

चवरी गोलीकांड जाँच आयोग की रिपोर्ट

आयोग ने सरकारी अधिकारियों के इस निरीक्षण को दर्ज किया है कि रामेश्वर अहीर तथा चवरी के अखिलराम पहले से ही एक-दूसरे के संपर्क में थे और चवरी में हरिजनों को संगठित करने के काम में रामेश्वर अहीर ने अखिल राम का इस्तेमाल किया। मई की घटनाओं को किसानों के बीच बढ़ते हुए तनाव तथा खेतिहर मज़दूरों के निरंतर राजनीतिकरण की पृष्ठभूमि में ही समझा जा सकता है।

चवरी में जो कुछ हुआ उसके केंद्र में एक ग़रीब किसान गनेशी दुसाध का उल्लेख किया जाता है। गनेशी एक बँधुआ भूमिहीन किसान के पुत्र थे। चिकित्सा के अभाव में उनके पिता की मृत्यु हो गयी थी। बाप का कर्ज़ उतारने के लिए गनेशी ने ज़मींदार के यहाँ काम करना शुरू किया। धीरे-धीरे, किंतु अनिवार्य रूप से वह गाँव में व्याप्त सामाजिक तथा आर्थिक उत्पीड़न को देखकर बेहद बेचैन होने लगे। मन की शांति के लिए उन्होंने साधुओं से संपर्क किया, लेकिन इससे भी उन्हें केवल अस्थायी तौर पर ही राहत मिल सकी। लगभग उन्हीं दिनों भोजपुर में नक्सलवादी राजनीति को स्थान मिलने लगा और इस विधारधारा के प्रति गनेशी आकर्षित हुए। अक्तूबर 1970 आते-आते उन्होंने एक छोटा दस्ता तैयार कर लिया था और 29 नवम्बर, 1972 तक उन्होंने ज़मींदारों का सफ़ाया शुरू कर दिया था। एक क्रांतिकारी कमेटी का भी गठन हो चुका था।

29-30 नवम्बर, 1972 : एक बदमाश महाजन और 15 बीघे की जोत वाले ज़मींदार रामनाथ राय की हत्या हुई।

7 अप्रैल, 1973 : अवध राय पर उसके खलिहान में नक्सलवादियों द्वारा कथित हमला।

8 अप्रैल, 1973 : स्वरूप राय पर कथित हमला।

9 अप्रैल, 1973 : मुनीनाथ राय के खेत को ज़ब्त कर लिया गया और उस पर एक लाल झंडा लगा दिया गया। मुनीनाथ राय एकवारी के ज़मींदार थे और चवरी में भी उनकी कुछ ज़मीन थी। खेत में जो झंडा गाड़ा गया उस पर लिखा था :

दुनिया के ग़रीबो एक हो, साहस के साथ संघर्ष करो और साहस के साथ विजय प्राप्त करो !

अध्यक्ष माओ-त्से-तुंग और नक्सलबाड़ी ज़िंदाबाद !

शहीद कामरेड चारु मजुमदार ज़िंदाबाद !

कामरेड रामायण और जगदीशप्रसाद ज़िंदाबाद !

एकवारी के मशहूर सामंत, सूदखोर, गुंडा मुनीनाथ का चार बीघा ज़मीन क्रांतिकारी सरकार की तरफ़ से ज़ब्त !

राजसत्ता बंदूक की नली से पैदा होती है !

नक्सलबाड़ी ज़िंदाबाद ! अध्यक्ष माओ ज़िंदाबाद !

9-10 अप्रैल, 1973 : 9-10 अप्रैल, 1973 की रात में स्वरूप राय के भाई कारु राय की—जो 8-10 बीघे के मालिक थे—उस समय हत्या कर दी गयी जब वह अपने खलिहान में सो रहे थे और वहाँ रखे साठ मन गेहूँ को लूट कर बाँट दिया। कारु राय की हत्या के बाद उसके भाई रामरूप राय दुसाध टोली गये और दुसाधों को उन्होंने काफ़ी डराया-धमकाया। खदेरन दुसाध के घर तक गेहूँ के दानों की एक पतली लकीर चली गयी थी। पार्टी के मुखपत्र लाल झंडा के अनुसार खलिहान लूटने वालों ने जानबूझ कर खलिहान से खदेरन के घर तक गेहूँ के दाने छोड़ रखे थे, ताकि उसे देखते हुए पुलिस वहाँ तक पहुँच जाये। ठीक यही हुआ और ज्यों ही पुलिस खदेरन के घर पहुँची उस पर पहले से तैयार लोग टूट पड़े। जाँच के लिए आया पुलिस-कांस्टेबल बाल-बाल बचा।

मध्य अप्रैल 1973 : मुनीनाथ राय की ज़मीन के बारे में गनेश दुसाध की क्रांतिकारी कमेटी जनता के साथ बातचीत करने के बाद एक फ़ैसले पर पहुँच सकी। अप्रैल माह के मध्य में एक दिन उन लोगों ने इस ज़मीन को जोता और उसमें बीज डाल दिया। ज़मींदारों की बीवियाँ अपनी-अपनी छतों से सारी कार्रवाई खड़ी होकर देख रही थीं। क्रांतिकारी कमेटी के इस क़दम ने जनता के अंदर विश्वास पैदा किया। इस कमेटी को गाँव में एक स्वायत्त क़ानूनी दर्जा भी प्राप्त हो गया। फिर इस कमेटी ने जन-अदालत का रूप ले लिया और गाँव के लोग अपने मामले कमेटी के सामने पेश करने लगे। एक दिन एक ग़रीब किसान ने शिकायत की कि उसके मालिक एक धनी किसान ने उसे गालियाँ दी हैं। कमेटी ने फ़ैसला किया कि अपराधी को पकड़ने के लिए एक दस्ता भेजा जायेगा और सज़ा के रूप में उस धनी किसान को शिकायत करने वाला व्यक्ति चार घूंसे लगायेगा।

यह ख़बर सुनते ही वह धनी किसान गाँव छोड़कर भागा और फ़रार हो गया।

26 अप्रैल, 1973 : इस दिन गया ज़िले के अरवल पुलिस-स्टेशन के बैदराबाद से व्यापारियों का एक दल गाँव में पहुँचा और इसने रामसिंहासन राय से चालीस मन अनाज ख़रीदा। क्रांतिकारी कमेटी ने पहले ही एक निर्देश जारी किया था जिसमें कहा गया था कि ज़मींदारों के अनाज-भंडार किसानों की संपत्ति हैं और इस सिलसिले में किसी भी तरह की ख़रीद-फ़रोख़्त कमेटी के ज़रिये ही की जायेगी। इसका मतलब यह हुआ कि ज़मींदारों के अनाज को कोई व्यापारी अपने-आप नहीं ख़रीद सकता और अगर वह ऐसा करता है तो उस अनाज को ज़ब्त कर लिया जायेगा। इस निर्देश से परेशान होकर चवरी के ज़मींदारों ने दूसरी जगह से किसी व्यापारी को बुलाया था। गनेशी ने इस व्यापारी को कमेटी का फ़ैसला बताया और उससे कहा कि वह ख़रीदे गये चावल को यहीं छोड़ दे। व्यापारी ने इस पर ध्यान नहीं दिया और वह अपना माल लेकर जाने लगा, लेकिन कमेटी के लोगों ने अनाज को ज़ब्त करके कमेटी को सौंप दिया तथा व्यापारी के बैल उसे वापस कर दिये। सहार पुलिस-स्टेशन में धारा 143-44 और 379 आई० पी० सी० के अंतर्गत एक मामला (केस नं० 9 (4) 73) दर्ज किया गया। 1 मई, 1973 को इस पूरे मामले को भारतीय दंडसंहिता की धारा 395 के अंतर्गत तबदील कर दिया गया। 10 मई को डी० एस० पी० के० पी० सिंह ने जाँच करने वाले अधिकारी को तत्काल क़दम उठाने और अभियोग में शामिल 14 व्यक्तियों को गिरफ़्तार करने का निर्देश दिया। डी० एस० पी० ने भी आदेश दिया कि चवरी से तीन मील दूर हरपुर ब्लाक में तैनात पुलिस-दल को चवरी भेज दिया जाये।

27 अप्रैल, 1973 : सिद्धनाथ राय ने बंदूक के लाइसेंस के लिए आवेदन दिया और उनके आवेदन पर सहार सुरक्षित निर्वाचन-क्षेत्र के विधायक राजदेव राम ने अपनी सिफ़ारिश लिखी। उन्होंने रामधनी शर्मा के लिए भी लाइसेंस की सिफ़ारिश की और कहा कि नक्सलवादी गतिविधियों से चवरी पूरी तरह तबाह हो गया है।

1 मई, 1973 : चवरी के खेतिहर मज़दूरों ने नक्सलवादी नारे लगाते हुए गाँव में जुलूस निकाला।

4 मई, 1973 : प्रख्यात नक्सलवादी नेता रामेश्वर अहीर ने ज़मींदारों के ख़िलाफ़ स्थानीय हरिजनों को संगठित करने के लिए चवरी की यात्रा की।

5 मई, 1973 : आरा के पुलिस-अधीक्षक के कार्यालय में अपराधों के बारे में होने वाली मासिक बैठक में पुलिस-अधीक्षक के सामने विचारार्थ एक दरख़्वास्त पेश की गयी। यह भोजपुर के ज़िलाधीश के नाम थी और भेजने वाले ने अपने नाम के स्थान पर केवल 'एक भयभीत ग्रामीण' लिखा था। इस दरख़्वास्त में हत्याओं

और लूटपाट के कारण चवरी में व्याप्त आतंक का ज़िक्र किया गया था और कहा गया था कि नक्सलवादियों के भय से गाँव के लोग अपने खेतों, खलिहानों और दालानों को छोड़कर घरों के अंदर सो रहे हैं और न तो वे नहर पर जा सकते हैं और न लगान देने अथवा घर का खर्च चलाने के लिए चावल बेच सकते हैं। इस दरख्वास्त में अपराधियों के रूप में जिन 11 नामों का उल्लेख किया गया था उनमें सात नाम ऐसे थे जिन पर अनाज लूटने के मामले पहले से दर्ज थे।

6 मई, 1973 : पुलिस-अधीक्षक के निर्देश पर—जिन्होंने आदेश दिया था कि पीरो सर्किल के इंसपेक्टर की देख-रेख में वारंट जारी किये जायें और गिरफ़्तारियाँ की जायें—6 मई, 1973 को प्रातः लगभग छह बजे एक पुलिस-दल चवरी पहुँचा। सियाराम और गिरजानंदन शर्मा नामक दो ग्रामीणों को कहा गया कि वे तलाशी के दौरान गवाह बने रहें। सहार के ओ० सी० श्री नागेन्द्र सिंह कुछ कांस्टेबलों के साथ खदेरन दुसाध के घर में घुसे ही थे कि पचास-साठ व्यक्तियों ने 'पुलिस पर हमला करो, नक्सलबाड़ी ज़िन्दाबाद' नारे लगाते हुए उन पर ईंट-पत्थरों से धावा बोल दिया। पुलिस-दल अपने घेरे जाने के डर से घबराकर पीछे नहर के पास लौट आया और इस प्रतीक्षा में रुक गया कि मदद के लिए कुछ और पुलिस-दस्ते शामिल किये जायें। इस बीच पुलिस-इंसपेक्टर ने बहुआरा के सरपंच जगनारायण सिंह और कोलो दिहरी के सूरज सिंह का सहयोग लिया, ताकि उनकी मध्यस्थता से उन चौदह व्यक्तियों को शांतिपूर्वक आत्मसमर्पण के लिए तैयार किया जा सके जिन्होंने अनाज लूटा था। लेकिन यह प्रयास विफल रहा। मज़दूरों ने उन्हें सूचित किया कि वे किसी भी हालत में इस बात की इजाज़त नहीं देंगे कि उन्हें गिरफ़्तार किया जाये या उनकी तलाशी ली जाये अथवा उनकी संपत्ति ज़ब्त की जाये। दिन में दस बजकर पैंतालीस मिनट पर पुलिस के कुछ और दस्ते आ पहुँचे जिनमें दो पुलिस उप-अधीक्षक तथा अनेक अधिकारी शामिल थे। शांतिपूर्ण समझौते का एक और प्रयास विफल हो जाने पर पुलिस ने गाँव में प्रवेश किया और ग्रामीणों ने इस पर हमला किया। दोपहर डेढ़ बजे तक पुलिस और ग्रामीणों के बीच लड़ाई चलती रही। लालमोहर दुसाध की मौक़े पर ही मृत्यु हो गयी। गनेशी दुसाध की अस्पताल ले जाते समय मृत्यु हुई और बालकेश्वर दुसाध तथा दीनानाथ तेली की उसी दिन आरा अस्पताल में मृत्यु हुई। कोई भी महिला या बच्चा घायल नहीं हुआ। पुलिस ने 19 चक्कर गोलियाँ चलायीं। 47 व्यक्तियों के ख़िलाफ़ सहार पुलिस-स्टेशन में मामला दर्ज किया गया (केस नं० 3 (5) 73) और 36 व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया गया। पुलिस के 19 लोग घायल हुए। चवरी में बिहार मिलिटरी पुलिस का एक प्लाटून तैनात कर दिया गया।[1]

1. 'द इंडियन नेशन', 7, 8, 9, 10, 11, 12 और 17 मई, 1973

आज का चवरी—चवरी की कुल ग्यारह सौ बीघे ज़मीन में से लगभग नौ सौ बीघे ज़मीन पर भूमिहारों का क़ब्ज़ा है। खेतिहर मज़दूरों के मिज़ाज को देखते हुए ज़मींदारों ने अब ट्रैक्टर ख़रीद लिये हैं, ताकि इन पर उनकी निर्भरता न रहे। अब यह धारणा धीरे-धीरे ख़त्म होने लगी है कि ज़मींदार को ख़ुद खेत नहीं जोतना चाहिए।

इस कांड के बाद बनिहारी की प्रथा समाप्त हो गयी। अब अस्थायी तौर पर मज़दूरी के लिए लोगों को लगाया जाता है। चवरी के अनेक मज़दूर अगल-बग़ल के गाँव में काम करते हैं। लेकिन हिंसा और प्रतिहिंसा ने संदेह और क्षोभ के गहरे दाग़ छोड़ दिये हैं। अकसर भूमिहारों की तरफ़ से मज़दूरों को याद दिलाया जाता है कि 'गुरपा याद रखो।'[1]

इसके अलावा मुक़दमेबाज़ी और झूठे मामलों में फँसाने की घटनाओं में आज भी कोई कमी नहीं है। ज़मींदारों के पास 1973 में लाइसेंसशुदा केवल तीन बंदूकें थीं जबकि आज उनके पास 16-20 बंदूकें हैं। भय और अविश्वास के वातावरण में 1973 से ही कर्ज़ों की अदायगी नहीं हो सकी। साथ ही मुसीबत के समय कर्ज़ मिलने भी अब बंद हो गये हैं। नक्सलवादियों के बारे में गाँव वालों का कहना है, "नक्सलाइट लोग सिद्धांत की लड़ाई लड़ रहे हैं।"

जनवरी 1974
डेहरी, सहार

दिसम्बर 1973 में 39 बीघे की जोत वाले एक ज़मींदार हरद्वार सिंह की उस समय हत्या कर दी गयी जब वह सहार बाज़ार से लौट रहे थे। उनकी उम्र 45 वर्ष थी और उन्हें थोड़ा पढ़ना-लिखना भी आता था। उनकी लाश को किसी ने हाथ नहीं लगाया था, क्योंकि उनकी उँगली में सोने की अँगूठी, गले में सोने की जंज़ीर और जेब में सौ रुपये तथा अन्य सामान ज्यों-के-त्यों पड़े थे। लोगों ने कहा कि इतनी 'ईमानदारी' के साथ हत्या केवल नक्सलवादी ही कर सकते हैं।

जनवरी 1974 में 25 बीघे की जोत वाले ज़मींदार तपेश्वर सिंह की उस समय हत्या कर दी गयी जब वह अपने खलिहान में आराम कर रहे थे। इस वारदात में हीरा सिंह नामक एक व्यक्ति भी घायल हो गया था। डेहरी गाँव में एक पढ़े-लिखे किसान बाली सिंह के मकान को डाइनामाइट से उड़ा देने की

1. सहार का एक गाँव गुरपा, जो 11 मई, 1977 को हरिजनों के हत्याकांड का दृश्य बन था। उनकी झोंपड़ियों को आग लगा दी गयी थी और अनेक व्यक्तियों के अलावा एक गर्भवती स्त्री की भी जलने से मृत्यु हुई। 11 अगस्त, 1976 को पाँच ज़मींदारों पर हुए हमले का बदला लेने के रूप में की गयी यह जवाबी कार्यवाही थी।

असफल कोशिश भी की गयी।

4-5 जनवरी, 1974
लालगंज, जगदीशपुर

होमगार्ड के एक सिपाही राजबल्लभ सिंह की गवाही से ऐसा लगता है कि जनवरी 1974 में नहर के बक़ाया धन की वसूली के सिलसिले में एक हवलदार के साथ नौ होमगार्डों को लालगंज में तैनात किया गया था। इनमें से प्रत्येक सिपाही को एक मस्कट राइफ़ल दी गयी थी। 5 जनवरी, 1974 की शाम लगभग सात बजे राजबल्लभ सिंह और कांता चौबे नामक दो सिपाही तहसील-कैम्प के सामने संतरी की ड्यूटी पर तैनात थे।

उस शाम दस या बारह व्यक्तियों के एक गुट को कैम्प ऑफ़िस की तरफ़ बढ़ते हुए देखा गया। संतरी की ड्यूटी पर तैनात दो सिपाहियों के हाथों में एक-एक राइफ़ल थी और शेष आठ राइफ़लें बरामदे में रखी हुई थीं। इन व्यक्तियों को आगे बढ़ते देखकर राजबल्लभ सिंह ने तेज़ आवाज़ में उनसे रुकने को कहा। जवाब में उन लोगों ने कहा कि वे इसी गाँव में रहते हैं और शौच के लिए जा रहे हैं। राजबल्लभ सिंह ने उन्हें जाने दिया। थोड़ा आगे जाते ही उन लोगों ने कैम्प के बरामदे में तीन-चार बम फेंके। एक बम राजबल्लभ सिंह की पीठ पर लगा। हालाँकि चाँदनी रात थी, लेकिन विस्फोट के कारण एकदम अँधेरा हो गया। इस अँधेरे के बावजूद दोनों संतरियों ने एक-एक राउंड गोली चलायी। इसके बाद राजबल्लभ नामक संतरी नीचे गिर गया। उस गुट के सदस्यों ने 'नक्सलबाड़ी ज़िन्दाबाद' नारे लगाते हुए कैम्प के दफ़्तर में प्रवेश किया। बाद में होश आने पर राजबल्लभ सिंह को पता चला कि चार मस्कट राइफ़लें ग़ायब हो चुकी हैं। इसके बाद सिपाहियों ने हमलावरों का लगभग सौ गज़ तक पीछा किया, तीन जवानों ने अपनी राइफ़लों से गोलियाँ चलायीं, लेकिन तब तक हमलावर भाग चुके थे।

घटना-स्थल से आठ-नौ मील की दूरी पर जगदीशपुर थाना था और 6 जनवरी, 1974 को सवेरे लगभग चार बजे राजबल्लभ सिंह ने प्रथम सूचना-रिपोर्ट दर्ज करायी जो भारतीय दंड संहिता की दफ़ा 395 और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 3 व 5 के अंतर्गत दर्ज की गयी (केस संख्या 4 (1) 74)। जाँच के दौरान पता चला कि लालगंज की घटना से दो-चार दिन पहले लालगंज से लगभग एक मील दक्षिण में बड़हरा गाँव में सत्यनारायण सिंह तथा अन्य नक्सल-वादी नेताओं ने एक गुप्त बैठक की थी। लालगंज में होमगार्डों के पास से छीनी गयीं राइफ़लों में से दो राइफ़लें बाद में सहार पुलिस-स्टेशन के अंतर्गत पड़ने

वाले गाँव बेराठ के एक टोले में बरामद की गयीं।[1]

20 जनवरी, 1974
पौना, संदेश

इस दिन पौना गाँव के एक राजपूत भुवन सिंह के शव का धड़ पाया गया, जिसके सर का कहीं पता नहीं था। इस दिन से ही पौना गाँव की शांति निरंतर भंग रही। निचली जाति के लोगों का कहना था कि भुवन सिंह उनकी जाति की औरतों के लिए चमार टोली में आया करते थे। आंदोलन शुरू हुआ, लेकिन धीरे-धीरे कमज़ोर पड़ता गया। बरसों बाद 1979 में पौना एक बार फिर हिंसा की घटनाओं से दहल उठा।

50-वर्षीय परशुराम सिंह की मृत्यु बहुत आकस्मिक साबित हुई। वह महतो जाति के थे और उनकी शिक्षा बी० कॉम० तक हुई थी। वह पहले भारतीय कम्यु-निस्ट पार्टी के एक कार्यकर्ता थे। स्थानीय सहकारी समिति के सचिव और स्थानीय हाई स्कूल में अध्यापक होने के साथ-साथ पंद्रह बीघे की जोत वाले परशुराम सिंह के बारे में कहा जाता था कि वह नक्सलवादियों को बहुत पसंद करते थे। बाद में उनसे वह अलग हो गये और महतो जाति का प्रभुत्व स्थापित करके हरिजनों का नेतृत्व अपने हाथ में लेने की कोशिश करने लगे। 30 अक्तूबर, 1979 को अपने स्कूल से लौटते समय उनकी हत्या की गयी। कहा जाता है कि इस हत्या के पीछे पौना के दो प्रमुख राजपूतों—शिवसिंह और जग्गू सिंह का हाथ था।

पानी और सिंचाई सुविधाओं की कमी के कारण निचली जातियों और ऊँची जातियों के लोगों के बीच तनाव बढ़ता जा रहा था। पानी के ही प्रश्न पर जग्गू सिंह के साथ संघर्ष में भूषण महतो, गोबिन्द हलवाई, जमुना हलवाई और रघुनाथ पनेड़ी पर किये गये हमले से यह खाई और चौड़ी होती गयी। इस हमले के विरोध में 3 सितम्बर, 1979 को पिछड़ी जाति के लोगों ने दो राजपूतों—राजवंत सिंह और अर्जुन सिंह की बसों में आग लगा दी। इसके कुछ दिनों बाद उन्होंने बाहर से आये एक व्यापारी का चावल लूट लिया और उस चावल को पौना के ग़रीब लोगों के बीच बाँट दिया। इस घटना में यह स्पष्ट था कि नक्सलवादियों की सक्रियता थी।

पौना के राजपूतों को अब इस बात का कोई भरोसा नहीं था कि महतो और अहीर लोगों के साथ उनकी एकता से स्थायी शांति की गारंटी मिल सकती है। 31 अक्तूबर को उन्होंने पुलिस सुरक्षा की माँग की, लेकिन इससे मारे जाने की वारदातों में कोई कमी नहीं आयी। 12 नवम्बर को 32-वर्षीय एक राजपूत

1 चवरी गोलीकांड जाँच आयोग की रिपोर्ट, पृष्ठ 117

ठेकेदार शंकरदयाल सिंह पर गाँव के उत्तर में उनके अहाते के अन्दर ही हमला किया गया और उन्हें मार डाला गया। पुलिस छावनी होने के बावजूद रात-भर लोगों ने 'नक्सलबाड़ी ज़िन्दाबाद' के नारे लगाये।

मार्च, 1974
अहीले, सहार

तरारी ब्लाक में कराठ गाँव के 30 बीघे की जोत वाले ज़मींदार जमुना सिंह का धड़ अहीले में एक गाँव में पाया गया। लोगों का कहना था कि ढोढ़ा महतो के मकान में एक औरत के साथ उनके नाजायज़ सम्बन्ध थे।

4-5 मार्च, 1974
सोनाटोला, सहार

बेरथ गाँव के एक राजपूत ज़मींदार झूलन सिंह की हत्या के बाद सोनाटोला गाँव को सी० आर०पी० और बिहार मिलिटरी पुलिस के 150 जवानों ने पुलिस-अधीक्षक, ज़िलाधीश, अतिरिक्त ज़िलाधीश, दो पुलिस उप-अधीक्षक आदि की देख-रेख में चारों तरफ़ से घेर लिया। पुलिस ने इस गाँव को 'किला' नाम दिया था। बेरथ के ज़मींदारों और पुलिस ने सोनाटोला पर लगातार दो दिन तक हमला जारी रखा। 15 मार्च को अधिकारियों ने दावा किया कि छिपे हुए लगभग 46 नक्सलवादियों ने या तो पुलिस के सामने अथवा सब-डिवीज़नल ऑफ़िसर की अदालत में आत्म-समर्पण कर दिया है। पुलिस के अनुसार बरामद हथियारों में दो वे राइफ़लें थीं जिन्हें 5 जनवरी, 1974 को जगदीशपुर में नक्सलवादियों ने पुलिस से छीना था।[1]

14 मार्च, 1974
चिल्हौस, संदेश

भोजपुर ज़िले के संदेश थानान्तर्गत चिल्हौस गाँव में एक सशस्त्र पुलिस दल पर लगभग चालीस नक्सलवादियों ने हमला बोल दिया जिसमें सात पुलिस-कर्मचारी घायल हुए। नक्सलवादियों ने तीन राइफ़लें और बीस कारतूस छीन लिये। हमले में इन लोगों ने हथगोलों तथा अन्य ख़तरनाक हथियारों का इस्तेमाल किया। घायल पुलिस-कर्मचारियों को आरा सदर अस्पताल में भर्ती किया गया, जहाँ तीन की हालत चिन्ताजनक थी।

1. चक्रवर्ती गोलीकांड जाँच आयोग [illegible], पृष्ठ 117

21 मार्च, 1974
केसठ, नवानगर

नक्सलवादियों ने एक पुलिस-छावनी पर हमला किया। हमले में तीन पुलिस-कर्मचारी घायल हुए और एक राइफ़ल छीनी गयी।

मई 1974
फुलारी, संदेश

सोन के तट पर स्थित फुलारी गाँव के बारे में पुलिस का कहना है कि यहाँ नक्सलवादियों का काफ़ी प्रभाव है। भोजपुर के अन्य हिस्सों की ही तरह नदी का पानी यहाँ भी अकसर अपनी दिशा बदलता रहता है, जिससे फुलारी के भूमिहारों और पिछड़ी जाति के लोगों के बीच दियारा की ज़मीन एक झगड़े की जड़ बन गयी है। दियारा में जब भूमिहार लोगों की ज़मीन के आगे वाले हिस्से से पानी खिसक जाता है तो अहीरों, कानों, महरों और लुहारों तथा भूमिहारों के बीच आमतौर पर विवाद छिड़ जाता है। इस तरह के विवाद चल ही रहे थे कि पड़ोस के सहार ब्लाक में उग्रवादियों की सफलता से पिछड़ी जातियों के लोगों के अन्दर साहस और विश्वास की भावना पैदा हुई। सोन के मटमैले काले पानी के पीछे हटते ही 380 एकड़ ज़मीन के हिस्से को लेकर फुलारी में असंतोष भड़कने लगा। भूमिहारों को उस समय बड़ा आश्चर्य हुआ जब उन्होंने देखा कि पिछड़ी जाति के उन लोगों ने—जो उस ज़मीन को जोतते थे—उस पर क़ब्ज़ा कर लिया है। मामले में हस्तक्षेप करने के लिए ज़िला-अधिकारियों को फ़ौरन बुलाया गया।

मई 1974 में तनाव चरम सीमा पर पहुँच गया जब सुरेन्दर सिंह की उनके खलिहान में हत्या कर दी गयी और उनका सर काट दिया गया। इसके बाद तो एक के बाद एक घटनाओं का ताँता बँध गया। भोजपुर के ग्रामीणों को और ख़ास-तौर से निचली जातियों के लोगों को आतंकित करने का सबसे प्रचलित तरीक़ा था—झूठे मुक़दमों में फँसा देना। रामइकबाल शर्मा एक ऐसी ज़मीन पर दावा कर रहे थे जिस पर ग़ैर-क़ानूनी रूप से बुलार सिंह ने क़ब्ज़ा कर लिया था। उनको और भी ज़्यादा परेशान करने के लिए बुलार सिंह ने रामइकबाल और उनके भाई घूनुर लुहार को गाय चुराने के एक मामले में फँसा दिया और दफ़ा 457/380 के अन्तर्गत एक मामला (केस सं० 5(ए) 74) दर्ज किया। अभियोग लगाने वालों में एक भूमिहार दरोगा सुर्जन सिंह तथा एक भूमिहार वकील एस० पी० शर्मा थे जिन्होंने बुलार सिंह का पक्ष लिया। हालाँकि हरिजनों ने उन दो कथित अभियुक्त भाइयों का पक्ष लिया, फिर भी उनके नाम सम्मन जारी हुए। संघर्ष क्रमशः तीव्र होता गया।

1974 के ख़त्म होते-होते फुलारी में हिंसक घटनाओं का दौर शुरू हो

गया था। 10 जनवरी, 1975 को विवादास्पद ज़मीन को जोतते समय बिलास कानू पर लगभग 50 भूमिहारों ने हमला कर दिया और उसे मार डाला तथा अनेक लोगों को घायल कर दिया। भूमिहीन और निरक्षर 35-वर्षीय बिलास कानू अपने पीछे दो पुत्र और एक पुत्री छोड़ गये। इस मामले में जिन 13 लोगों पर अभियोग लगाया गया उनमें नरेश सिंह, अमर सिंह, चन्द्रिका सिंह, रामखयाल सिंह और रघुनाथ सिंह भी थे। बाद में ये सभी रिहा हो गये।

अगले दिन 11 जनवरी को दीनानाथ सिंह नामक एक भूमिहार ने एक जवाबी मामला दर्ज किया जिसमें बवन महतो और श्रीनिवास चमार पर चोरी का आरोप लगाया गया था (केस सं० 5(1)75)। एक दूसरे मामले में कामेश्वर सिंह ने दूसरे पक्ष की ओर से 13 व्यक्तियों को एक जुर्म में फँसा दिया—इनमें पल्टी चमार, अर्जुन महतो, श्रीनिवास चमार, चन्द्रिका तथा अन्य लोग थे।

फुलारी की चर्चा के दौरान राधिका देवी उर्फ़ कल्पतिया और रावन चमार का ज़िक्र प्रायः आने लगा—इन दोनों की बाद में पुलिस के साथ मुठभेड़ में मृत्यु हो गयी। मुक़दमेबाज़ी के वातावरण में इस गाँव में हिंसा और प्रतिहिंसा की घटनाएँ ज़ोर पकड़ने लगीं। 12 मई, 1975 को 27-वर्षीय किसान शिवाधार सिंह पर हमला किया गया, लेकिन गंभीर चोटों के बावजूद वे बच गये। एक बार फिर अर्जुन महतो और श्रीनिवास महतो इस मामले में फँसा दिये गये—ये दोनों व्यक्ति पिछड़ी जाति के एक प्रसिद्ध नेता नरेश महतो के परिवार के सदस्य थे। वे बिलकुल बेगुनाह थे और इस वारदात में उनका एकदम हाथ नहीं था।

13 जुलाई, 1975 को नक्सलवादियों ने सत्यनारायण उर्फ़ गांधी सिंह को उस समय मार डाला जब वह बीजाटोइली गाँव से लौट रहे थे। इस हत्या का एक भी गवाह नहीं था लेकिन बूटन सिंह द्वारा दर्ज की गयी प्रथम सूचना-रिपोर्ट में भारतीय वायुसेना के एक कर्मचारी रामइकबाल शर्मा के पुत्र रामसुहावन लोहार, नरेश महतो और उनके दो पुत्रों, अर्जुन और श्रीनिवास तथा भरतलाल सुनार का नाम डाल दिया गया। रामसुहावन जैसे व्यक्ति का इस घटना में कोई हाथ नहीं हो सकता था, लेकिन फुलारी के भूमिहारों ने इन मुखर लोगों से छुटकारा पाने का यही एक तरीक़ा सोचा।

16 जून, 1974
संदेश

रामाधार चौबे नामक एक प्रभावशाली भूमिहार ने सरकार द्वारा आवंटित सारी ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लिया और इससे क्षुब्ध होकर हरिजनों ने याचिकाएँ दायर कीं। चौबे के बारे में कहा जाता है कि एक हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष में उन्होंने मुसलमानों की हत्या भी की थी। 16 जून की शाम को साढ़े सात बजे रामाधार

चौबे की हत्या कर दी गयी—यह संदेश में पहली नक्सलवादी घटना थी। संदेश थाने में धारा 302 के अन्तर्गत दर्ज मामले में रामाशीष गुप्ता की नामज़द रिपोर्ट की गयी।

जून 1974
पाण्डे

ब्राह्मणों की आबादी वाला गाँव पाण्डे—जहाँ तमाम ब्राह्मण-परिवारों के पास सौ बीघे से अधिक ज़मीन है—भी नक्सलवादी गतिविधियों से प्रभावित हुआ। जून 1974 में 35-वर्षीय वंशीधर पाण्डे को बहकाकर गाँव के दक्षिण हिस्से में ले जाया गया। बताया जाता है कि राधे मुसहर की पत्नी के साथ उनके नाजायज़ संबंध थे। इसके अलावा 45 बीघे की जोत वाले इस ज़मींदार के गिरोह में कई चोर-उचक्के भी थे जिनसे गाँव के लोग काफ़ी परेशान रहते थे। गाँव के दक्षिण में एक महुए के पेड़ के नीचे कुछ अज्ञात लोगों ने उनकी हत्या कर दी।

जून 1974
बंसीडेहरी, सहार

किसी भी बाहरी व्यक्ति के गाँव में प्रवेश करते ही बंसीडेहरी के लोग शक की निगाह से उसे देखने लगते हैं। जून 1974 में दासा राय की हत्या के बाद से समूचे गाँव में एक अजीब-सी ख़ामोशी छायी रहती है। दासा राय की जाति के लोग उसे बहुत सभ्य और सुसंस्कृत मानते थे, लेकिन हरिजनों की निगाह में तीस-चालीस बीघे की जोत वाला यह ज़मींदार बहुत दुराचारी था और हमेशा बलात्कार करने की फ़िराक में रहता था। उसकी शादी नहीं हुई थी, लेकिन जातू जाति की एक औरत को अपनी रखैल बनाकर उसने रख लिया था और खेतों में या बाग-बगीचों में काम करने वाली निचली जातियों की औरतें उसकी कामुक निगाहों को देखकर दहशत से भर उठती थीं। जून महीने में एक दिन दोपहर में लगभग साढ़े ग्यारह बजे कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने कुल्हाड़ों और छुरों से उसकी हत्या कर दी। इसके बाद से बंसीडेहरी में युद्ध जैसी स्थिति हो गयी।

एक महीने बाद अर्थात जुलाई में दासा राय की हत्या वाली जगह से महज़ 25 गज़ के फ़ासले पर रामानुज राय को मार डाला गया। चालीस-पैंतालीस बीघे की जोत वाला यह ज़मींदार इस इलाक़े का पहलवान समझा जाता था, लेकिन निचली जाति वालों की निगाह में यह महज़ एक गुंडा था जो चोरी-डकैती का संचालन करता था। नहर के पास वाली ज़मीन में इसकी गरदन-कटी लाश मिलने के बाद प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी गयी थी। बाद में पुलिस ने गोपाल पाठक नामक एक व्यक्ति को गिरफ़्तार किया और दावा किया कि उसके पास से

खून में लथपथ एक धोती बरामद हुई है।

21 अगस्त, 1974 को इस गाँव में तीसरा हत्याकांड प्रकाश में आया। राजेन्द्र राय की माँ ने पुलिस को बताया कि उन्होंने अपने 32-वर्षीय पुत्र को अंतिम बार नवादा गाँव में बैठे हुए देखा था। शाम तक जब वह नहीं लौटा तो तबीयत घबराने लगी। बाद में पता चला कि उनके लड़के की लाश सोन नदी में मिली है। कहा जाता है कि उनकी मार-मारकर हत्या की गयी थी। हरिजनों का कहना था कि एक सौ पचास बीघे की जोत वाला ज़मींदार राजेन्द्र राय कोई साधु नहीं था (भूमिहार लोग उसे साधु कहते थे और उसके चेहरे पर साधुओं जैसी दाढ़ी भी थी)। दरअसल उसके दो बेटे भी थे। कुछ लोगों का कहना है कि उसकी लाश कभी बरामद नहीं हुई।

इस मामले में जिन बारह लोगों पर आरोप लगाया गया था उनके नाम है: मंदीप दुसाध, रामदीप दुसाध, चंदीप दुसाध, लखपतिया मुसहर, निहोरा कानू, बादल दुसाध, देवराज दुसाध और सनातन दुसाध। भूमिहारों ने इस हत्याकांड के पीछे नक्सलवादियों का हाथ बताया, लेकिन हरिजनों का कहना था कि राजेन्द्र राय एक पुलिस-एजेंट था और औरंगाबाद तथा गया में उसने कुछ किसानों को गिरफ़्तार भी कराया था।

अगले तीन वर्षों तक बंसीडेहरी में अपेक्षाकृत शांति बनी रही, लेकिन यह शांति अप्रैल 1977 के पहले सप्ताह तक ही क़ायम रह सकी। बगीचे में महुआ बीनते समय नारायण राय पर हमला किया गया और तेज़ हथियारों से उनकी हत्या कर दी गयी। दर्ज की गयी प्रथम सूचना-रिपोर्ट (केस सं० 3(4)77) में जिन चार लोगों के नाम दिये गये थे, वे थे: दरोगा दुसाध, रमन दुसाध, मंदीप दुसाध और रामदीप दुसाध। हालाँकि हत्या के समर्थन में कोई सुबूत नहीं मिला, लेकिन चारों को सज़ा काटनी पड़ी।

23 जुलाई, 1974
पांडेडेही, पीरो

गाँव के एक ब्राह्मण की अत्यंत रहस्यात्मक परिस्थितियों में हत्या की गयी। यह अफ़वाह थी कि वह एक हरिजन औरत के चक्कर में पड़ा था। उसे यह लोभ देकर बुलाया गया कि वह औरत उसका इंतज़ार कर रही है। जैसे ही वह निर्धारित स्थान पर पहुँचा कि नक्सलवादी उस पर टूट पड़े। इस मामले में पीरो थाना में दर्ज केस संख्या 26(3)74 के अन्तर्गत अयोध्या शर्मा को फँसाया गया था, जिन्हें बाद में जनता पार्टी की सरकार ने रिहा कर दिया।

17 अगस्त, 1974
बरुही, सहार

पुलिस उप-अधीक्षक के नेतृत्व में जब एक पुलिस-दल ने बरुही गाँव को घेर लिया तब पता चला कि पुलिस को श्यामलाल महतो की तलाश है। उनकी सूचना के अनुसार श्यामलाल अपने मकान में नक्सलवादियों को शरण देते थे और प्रशिक्षण के लिए भी नक्सलवादियों द्वारा इनके मकान का इस्तेमाल किया जाता था। पिछले एक महीने से सोन के तट पर बसे इस गाँव में कई हिंसात्मक घटनाएँ हो रही थीं। जुलाई के अन्त में 24-वर्षीय भूमिहार रासबिहारी सिंह की हत्या से भूमिहारों और मुसहरों के बीच संघर्ष चरम सीमा पर पहुँच गया था।

ऊँची जातियों के लोगों में 45 परिवार भूमिहारों के इस गाँव में बसते थे। इसके अलावा कोइरियों के 70, अहीरों के 15, मुसहरों के 60 तथा पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति के लोगों के कुछ परिवार भी यहाँ रहते थे। एक ज़माने में मुसहरों के मकान गाँव के शुरू में ही थे, लेकिन चूँकि भूमिहारों की निगाह में ये अछूत थे इसलिए इन्हें हमेशा तंग किया जाता था। काफ़ी परेशान होने के बाद इन मुसहरों से अपनी पुश्तैनी जगह छोड़ दी और कृष्णानंद दास नामक भूमिहार के एक पुत्र गोपालदास से दियारा में रेतीली ज़मीन का एक टुकड़ा ख़रीद लिया और वहाँ नये सिरे से वे बसने लगे। इस ज़मीन पर अमरूद और अन्य फलों के तक़रीबन एक हज़ार पेड़ थे जिनकी मिल्कियत भी नियमतः मुसहरों के हाथ में आ गयी लेकिन इन पेड़ों को भूमिहार लोग अपनी मर्ज़ी से काटते रहते थे।

इस बाग़ीचे में रासबिहारी सिंह की सात बीघे ज़मीन थी। उनकी हत्या के बाद मुसहरों पर संदेह किया जाने लगा। डर के मारे रामचन्द्र चमार पड़ोस के बागीस गाँव में भाग गया और पुलिस द्वारा एकवारी की घेराबंदी करने के बाद वह पकड़ा गया। इसके बाद से सोन के तट पर स्थित इस ज़मीन पर मुसहरों की मिल्क़ियत के सवाल को लेकर कभी कोई विवाद पैदा नहीं हुआ। दियारा में भवनाथ राय की 70 बीघे और श्रीकांत राय की 12 बीघे विवादास्पद ज़मीन भी मुसहरों के हाथ लग गयी।

लगभग बीस दिन बाद पुलिस ने बरुही को चारों तरफ़ से घेर लिया। मुसहरों और दुसाधों के घरों में आतंक छा गया। पुलिस ने श्यामलाल को गिरफ़्तार किया। जिस समय अन्य लोग गिरफ़्तार किये जा रहे थे और पूछताछ का काम जारी था, मुन्नी पासी भागकर बागीचे में पहुँच गया। उसके ससुर दुखित पासी उसे बहुत प्यार करते थे। पुलिस ने मुन्नी पासी का पीछा किया और गोली चलायी। बाद में इसकी लाश गुलाब साधु की झोंपड़ी के पास पड़ी मिली।

24 अगस्त, 1974
भोजपुर

राज्य सरकार ने भोजपुर के लिए केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस की चार कंपनियों की माँग की।

13, अक्तूबर, 1974
पटना

अखिल भारतीय सर्वसेवा संघ ने नक्सलवादी आतंक की वृद्धि को रोकने के लिए जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में एक आंदोलन छेड़ने का फ़ैसला किया।

19 दिसम्बर, 1974
सहार

आरा से तीस किलोमीटर दूर दक्षिण सहार के ब्लाक कार्यालय के पास रात में पहरा देने वाली पुलिस-टुकड़ी पर नक्सलवादियों ने छापामार ढँग से आक्रमण किया जिसमें दो पुलिस-कर्मचारी और एक नक्सलवादी की मृत्यु हुई तथा एक हवलदार गंभीर रूप से घायल हुआ। सूत्रों का कहना है[1] कि नक्सलवादियों की संख्या बीस के लगभग थी और उन्होंने ब्लाक तक आने वाली बिजली लाइन को काट दिया था जिससे सारे इलाक़े में अँधेरा फैल गया था। बंदूकों से लैस होकर वे ब्लाक के पहरेदारों पर टूट पड़े और अंधाधुंध गोलियाँ चलाने लगे। इस अप्रत्याशित हमले से पुलिस वाले घबरा गये, फिर भी उन्होंने जवाब में गोलियाँ चलायीं जिससे एक हमलावर की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गयी। इस मुठभेड़ में एक हवलदार को एक नक्सलवादी से राइफ़ल छीनने में सफलता मिल गयी, जबकि एक दूसरे हमलावर ने एक पुलिस-कर्मचारी की राइफ़ल छीन ली। नक्सलवादी नेता दारोगा चमार के शव को पहचान के लिए कड़ी सुरक्षा में रखा गया।

तीन सौ झोंपड़ियों वाले इस गाँव में ज़्यादा आबादी मुस्लिमों और हरिजनों की है। कुछ दिन पहले दस-वर्षीय एक हरिजन लड़के को वहाँ के एक समृद्ध आटा-मिल-मालिक राजकरन राय ने बहुत बुरी तरह पीटा था। उस दिन लड़के के पिता घर पर नहीं थे और वह ख़ुद ही गेहूँ पिसाने गया था। चक्की पर जाकर उसने बिना तुलवाये ही गेहूँ रख दिया था। वहाँ विवाद होने पर चक्की के मालिक ने उसे पीटकर गंभीर हालत में ही वहाँ छोड़ दिया, लेकिन उसकी माँ ने उसे आरा अस्पताल में दाख़िल किया जिससे वह बच गया। इस घटना से सहार के

1. 'द इंडियन नेशन', 21 दिसंबर, 1974

हरिजनों को काफ़ी क्रोध आया।

कुछ दिनों बाद शाम के लगभग साढ़े-सात बजे तक़रीबन तीन सौ व्यक्तियों के एक हथियारबंद गुट ने राजकरन राय की कपड़े की दूकान को लूट लिया। हमलावरों और पुलिस के बीच एक घंटे तक गोली चलती रही। हमलावरों के एक वर्ग पर गाँव के अस्पताल के पास से उस समय गोली चलायी गयी जब वे भाग रहे थे। इसमें दो हरिजन घायल हुए जिनकी बाद में अस्पताल में मृत्यु हो गयी। बाद में डॉक्टर ने डींग हाँकी कि उसने 'दो नक्सलवादियों' की हत्या कर दी! बाद में जब उसे यह पता चला कि कुछ लोग इस बात की जाँच कर रहे हैं कि किधर से गोली चली थी तो उसने अपना दावा बदल दिया और कहा कि यह सिचाई ऑफ़िस की तरफ़ से चली थी। दो वर्ष बाद 1976 में उसकी और उसकी पत्नी की हत्या कर दी गयी और सर धड़ से अलग कर दिया गया।

दिसम्बर, 1974
बरनाव, जगदीशपुर

नक्सलवादियों ने राजपूत ज़मींदार शत्राजीत सिंह के मकान पर हमला किया—वे 150 बीघे से भी अधिक की जोत के मालिक थे। घोषित 'वर्ग-दुश्मन' होने के साथ-साथ शत्राजीत सिंह की पुलिस से भी बहुत पटती थी। हमले में वे बाल-बाल बच गये, लेकिन उनके एक दलाल की—जो नट जाति का था—हत्या हो गयी, हालाँकि नक्सलवादियों ने उससे बहुत अनुनय-विनय किया कि वह अपने इस बदमाश मालिक की रक्षा के लिए आगे न आये।

बाद में मई 1975 में शत्राजीत सिंह के परिवार के अन्य सदस्यों महेश सिंह, परशुराम सिंह और रामप्रवेश सिंह पर भी खलिहान में आक्रमण हुआ, लेकिन गंभीर चोटों के बावजूद वे बच गये। बताया जाता है कि महेश सिंह के नाजायज़ संबंध अपने बनिहार की पत्नी से थे और हमले में इस बनिहार ने नक्सलवादियों की मदद की थी। इसके अलावा महेश सिंह का आतंक बहुत ज़बरदस्त था और निचली जाति के मज़दूरों को वह बराबर तबाह करते थे। इस सारी घटना के जवाब में राजपूतों ने ग़रीब किसानों के ख़िलाफ़ हमले का अभियान छेड़ दिया। ग़रीब किसानों में से अनेक फ़रार हो गये और उन्होंने बाद में नक्सलवादियों की पाँत में अपने को शामिल कर लिया।

10 जनवरी, 1975
माधोपुर, सहार

माधोपुर की ऊँची जातियों के लोगों ने भूमिहीन राजपूत जगन्नाथ सिंह के पुत्र चन्द्रमा सिंह को कभी अपनी बिरादरी का सम्मान नहीं दिया। उनकी शादी

में भी बहुतों ने नाक-भौं सिकोड़ी। कुछ भी हो, अन्य राजपूतों के विपरीत उनके पिता एक ग़रीब कलाकार थे जो एक नाच मंडली में काम करते थे। चन्द्रमा सिंह के लिए भी नौकरी तलाशना बहुत कठिन साबित हुआ, क्योंकि उनकी भी पढ़ाई-लिखाई नहीं हुई थी। अंत में बरगाँव गाँव के देवनंदन सिंह के ज़रिये वह अपनी जीविका चलाने धनबाद गये। कुछ महीनों बाद चन्द्रमा ने नौकरी छोड़ दी और गाँव वापस लौट आये।

माधोपुर में शीघ्र ही वह खेतिहर मज़दूरों के संघर्षों और आंदोलनों में सक्रिय रूप से हिस्सा लेने लगे। गाँव में हुई एक वारदात में किसानों ने मज़दूरों के घोषित दुश्मन शिवपूजन पांडे के बजाय ग़लती से नंदकिशोर पांडे की हत्या कर दी। फ़ौरन ही चन्द्रमा सिंह के ख़िलाफ़ अनेक मामले दर्ज किये गये, क्योंकि इस समय तक वह ज़िले के नक्सलवादी आंदोलन के महत्वपूर्ण नेताओं में गिने जाने लगे थे। उन्हें माधोपुर के अवास मियाँ के साथ चोरी में, जगदीश तिवारी की हत्या में और राजाराम पांडे की फ़सल लूटने में फँसाया गया।

लेकिन किसानों की निगाह में चन्द्रमा सिंह उनके नेता थे। उनके संगठन की प्रक्रिया में बजरैया गाँव के गोपाल सिंह से उनकी दुश्मनी हो गयी थी। 1974 में जब चन्द्रमा सिंह तीन सेर चावल लेने पहुँचे तो गोपाल सिंह ने उन्हें चावल के बजाय तीन सेर जौ दे दिया। इस उद्दंडता से चिढ़कर चन्द्रमा ने उनके खेत पर काम करना बन्द कर दिया और माधोपुर के किसानों को संगठित करने में लग गये। उन्हें लालमुनि कुँवर की विधवा के मकान पर दूसरी बार गिरफ़्तार कर लिया गया। इस बार पुलिस के दबाव में आकर वह पुलिस के मुख़बिर बन गये।

उनकी यह हरकत बहुत घातक साबित हुई। कहा जाता है कि चन्द्रमा सिंह ने पुलिस को जो ख़बर दी थी उससे कई बार चमकू मुसहर की ज़िंदगी ख़तरे में पड़ गयी थी। यह भी अफ़वाह सुनने में आती है कि रामेश्वर अहीर और डॉक्टर निर्मल की गिरफ़्तारी में भी उन्हीं का हाथ था। 10 जनवरी, 1975 को जब वह अपनी बहन के घर से लौट रहे थे तो बरगाँव में नक्सलवादियों ने उनकी हत्या कर दी। इसके बाद उनकी लाश पर नक्सलवादियों ने एक काग़ज़ चिपका दिया जिस पर लिखा था "ग़द्दारी करने का यही नतीजा होता है।"

14 जनवरी, 1975
सोनाटोला, सहार

उस दिन रामेश्वर अहीर के लिए सोनाटोला तक का रास्ता असाधारण रूप से लम्बा हो गया था और मृत्यु ने भी उन्हें चकित नहीं किया। जिस समय बेरठ के हरिजनों ने सोनाटोला बनाया था, रामेश्वर इस गाँव का नाम 'वियतनाम' रखना चाहते थे। जनवरी की उस मनहूस तारीख़ को सोनाटोला के इर्दगिर्द दूर-

दूर तक फैले खेतों में सरसों के फूल हवा के साथ झिलमिला रहे थे। कुछ किलोमीटर की दूरी पर चंडी में पुलिस ने अपनी जीप रोकी थी और वहाँ रामेश्वर को न पाकर पुलिस का पूरा दस्ता सोनाटोला की तरफ़ रवाना हो गया था। गाँव के हरिजन रामेश्वर अहीर को जी-जान से प्यार करते थे और उन्होंने उनके सामने दही और चिउड़ा ला रखा था। यह मकर संक्रांति का दिन था। रामेश्वर अहीर को गाँव के लोग 'साधुजी' कहते थे—उनकी निगाह में वह डकैत नहीं थे।

एकवारी के एक ग़रीब किसान के पुत्र रामेश्वर का पालन-पोषण वैसे ही उजड्ड तौर-तरीक़े से हुआ था जैसे आम अहीर युवकों का होता है। गाँव के भूमिहार ज़मींदार डोमन अहीर के इस पुत्र के अक्खड़ व्यवहार से बहुत नाराज़ रहते थे। वे कहते थे, "डोमन, तुम्हारा बेटा बहुत तनकर चलता है। हमारी मौजूदगी में भी उसकी गरदन नहीं झुकती।" रामेश्वर की माँ काफ़ी पहले मर चुकी थी और अपने बेटे की निरंकुश आदतों पर रोक लगाने में पिता बहुत असमर्थ थे। डोमन ने रामेश्वर को एकवारी के स्कूल में भेजा, लेकिन पढ़ने-लिखने में उनका मन नहीं लगता था और सातवें दर्जे के बाद उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी। बचपन से ही ऐसा प्रतीत होने लगा था कि बड़े होकर भूमिहारों के प्रति उनके मन में एक ज़बरदस्त नफ़रत होगी। एक दिन स्कूल में एक छोटी-मोटी चोरी हुई। चूँकि गाँव में यह कहावत प्रचलित रही है कि 'अगर कहीं चोरी हो तो अहीर को पकड़ो', लिहाज़ा रामेश्वर पर चोरी का आरोप लगाया गया। उन्हें डाँट पड़ी और उनकी पिटाई हुई। भूमिहारों से भयाक्रांत उनके पिता ने चोरी के बदले छोटा-मोटा जुर्माना भी दिया। घर आने पर भी रामेश्वर की काफ़ी पिटायी हुई। बड़े होने पर रामेश्वर अकसर इस घटना को याद करते थे और अपने पिता के बारे में कहते थे कि "वह बिना रीढ़ का है।"

लेकिन चूँकि वह एक अच्छे छात्र थे, इसलिए उनके अध्यापक दामोदर सिंह काफ़ी प्यार करते थे। वहीं उन्हें हारमोनियम बजाना आया। धीरे-धीरे रामेश्वर उस नाच मंडली में शामिल हो गये जिसे दीनानाथ महापात्र चलाते थे। रामेश्वर के पास बहुत अच्छा गला था और आवाज़ में ऐसा जादू था कि दर्शक मंत्रमुग्ध हो जाते थे। कुछ दिनों बाद वह घर से भाग गये और उत्तर प्रदेश में दिलदारनगर में एक नौकरी करने लगे। कुछ दिन बाद उनके पिता ने उन्हें ढूँढ़ लिया और दिलदारनगर के व्यापारी ने तनख़्वाह के रूप में तीस रुपये देकर उन्हें नौकरी से छुट्टी दे दी। ट्रेन से घर वापस आते समय रास्ते में उन्हें पता चला कि उन्हें जो नोट दिये गये थे, वे जाली थे।

एकवारी वापस आने पर रामेश्वर हमेशा बेचैन रहते थे। खेतों की देखभाल करने या बैलों की रखवाली करने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह हमेशा ख़ुद में विश्वास करते थे और कहा करते थे कि "अपना रास्ता ख़ुद तैयार करो।

दूसरे के क़दमों पर मत चलो, लोग खुद-ब-खुद तुम्हारे पीछे आयेंगे।" उन्होंने दीनानाथ की मंडली छोड़ दी, क्योंकि उनके पिता को यह सब जनखों वाला काम पसंद नहीं था। रामेश्वर गाँव में लुंगी पहनकर घूरा करते थे और इससे भूमिहारों को और भी ज्यादा चिढ़ होती थी। अंत में पड़ोस के बरुना गाँव के रामगुलाम सिंह ने रामेश्वर को डाकुओं के अपने गिरोह में शामिल कर लिया।

डाकुओं और बदमाशों की दुनिया में प्रवेश के साथ रामेश्वर की जिंदगी के एक नये अध्याय की शुरुआत हुई। वर्षों तक डकैती के सिलसिले में वह पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश आते-जाते रहे। पुलिस हमेशा उनके पीछे पड़ी रही और एक निर्मम डाकू के रूप में उनका नाम दूर-दूर तक फैल गया। अंत में जब उन्होंने यह रास्ता छोड़ा तो अपने डाकू साथियों को भी सामाजिक परिवर्तन के रास्ते पर लाने की कोशिश की। 1955-56 के आसपास वह एक बार पकड़े गये थे। पुलिस जब उन्हें ले जा रही थी तो धमनिया के पुल के पास उन्होंने संतरियों पर हमला कर दिया और एक कांस्टेबल की हत्या कर दी तथा एक सहायक सब-इंस्पेक्टर को गंभीर रूप से घायल कर दिया। इसके साथ ही एक राइफ़ल छीनकर वह भाग गये। पुलिस ने उनके पिता के घर पर छापा मारा और सारी जायदाद ज़ब्त कर ली। अंततः उनके पिता ने ही रामेश्वर को क़ानून के हाथों सौंप दिया। काफ़ी समय तक मुक़दमा चलने के बाद 1960 में अतिरिक्त-सेशन जज विश्वनाथप्रसाद ने उन्हें आजीवन क़ैद की सज़ा दी।

रामेश्वर एक दूसरे ही क़िस्म के डकैत थे। यह उस कहानी से पता चलता है जिसे वह प्रायः सुनाया करते थे। एक बार उनका डाल्टनगंज जेल में तबादला किया जा रहा था। ट्रेन में अगल-बग़ल बैठे मुसाफ़िरों को यह देखकर बड़ी हैरानी होती थी कि पुलिस के ज़बरदस्त पहरे में जो व्यक्ति उनकी बग़ल में बैठा है, वह आजीवन सज़ा काटने वाला एक कुख्यात डकैत है। मुसाफ़िरों में से एक ने कहा, "कुछ डकैत हत्यारे नहीं होते हैं और उनका चाल-चलन भी बहुत अच्छा होता है। वे केवल सामान लूटते हैं, लेकिन औरतों को पूरी इज़्ज़त देते हैं। एक बार मेरे घर में एक डाका पड़ा था और अपने दोस्तों के बार-बार उकसाने के बावजूद डाकुओं के सरदार ने मेरी पत्नी को हाथ भी नहीं लगाया। यहाँ तक कि उसके शरीर पर जो ज़ेवर थे उन्हें भी नहीं छुआ।" जिस डकैत के बारे में यह व्यक्ति बात कर रहा था वह रामेश्वर अहीर ही थे।

जेल-जीवन के दौरान भी उनके गर्म मिज़ाज में कोई कमी नहीं हुई और बहुधा जेल के वार्डर उन्हें क़ैद-तनहाई दे दिया करते थे। समय-समय पर उनका आरा, बक्सर, भागलपुर, डाल्टनगंज आदि स्थानों में एक जेल से दूसरी जेल में तबादला किया जाता रहा। जेल के दौरान ही इस खूँखार डाकू के अंदर ज़बरदस्त तबदीली आयी। एक दि[illegible] वह आत्महत्या करने के बारे में सोच रहे थे, जेलर

उनके पास पहुँचा और उसने कहा, "रामेश्वर, तुम्हें कुछ पढ़ना चाहिए।" उसने रामेश्वर को 'गीता' लाकर दी। बाद में रामेश्वर ने बताया कि छह महीने से भी अधिक समय तक वह हमेशा गीता पढ़ते रहते थे। हर बार पढ़ने पर एक नया विचार उनके दिमाग़ में आता था। वह सोच नहीं पा रहे थे कि इतनी शानदार पुस्तक भी दुनिया में मौजूद है। "मैं उस किताब को वापस करना नहीं चाहता था। दूसरी किताब जो मेरे हाथ लगी वह थी स्वामी दयानंद की 'सत्यार्थ प्रकाश' और 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका'। उनके पिता याद करते हैं कि रामेश्वर ने कम्युनिस्ट साहित्य ख़रीदने के लिए उनसे दो सौ रुपये माँगे थे।

आरा की कचहरी के अहाते में एक साधुजी का प्रवचन सुनने के लिए जो भीड़ इकट्ठी हुई थी और मंत्रमुग्ध होकर साधुजी को सुन रही थी उसमें से किसी को यह पता नहीं चल सका कि यह साधुजी और कोई नहीं, बल्कि भूतपूर्व कुख्यात डकैत रामेश्वर अहीर है। जब वह एकवारी पहुँचे तो एक ग्रामीण ने उनके पिता से कहा कि उसने रामेश्वर को पास के एक गन्ने के खेत में बैठे हुए देखा है, लेकिन रामेश्वर घर आने में हिचकिचा रहे हैं। गाँव के चौकीदार जगदीश अहीर ने भी इस दाढ़ी वाले व्यक्ति को उस समय एकदम नहीं पहचाना जब उसने किताबों से भरे एक बंडल को ढोने के लिए चौकीदार से अनुरोध किया। बाद में उसने कहा, "मैं रामेश्वर हूँ। क्या तुम पहचान नहीं रहे हो?"

उनके पिता को उस समय बड़ी हैरानी हुई जब उनके पुत्र ने घर पर रुकने के बजाय बाहर घूमने और अपने मित्रों से मिलने के लिए कुछ पैसे की माँग की। जगदीश महतो और रामेश्वर अहीर अब अकसर साथ-साथ दिखायी देने लगे। 1970 में 'अम्बेडकर दिवस' के अवसर पर रामेश्वर ने रमणा मैदान, आरा में भीड़ को सम्बोधित करते हुए चेतावनी दी, "गांधी के चेलों से बचकर रहो... हथियार-बंद संघर्ष का रास्ता ही एकमात्र रास्ता है।" लोग कहने लगे कि अब यह डाकू अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहता है और उसका साम्यवाद की बातें करना महज़ एक ढकोसला है।

रामेश्वर के डकैत सरदार रामगुलाम को जब यह पता चला कि रामेश्वर जेल छूट गये हैं तो वह फ़ौरन उनसे मिलने आया और कहा, "रामेश्वर, आओ, अब एक और मज़बूत गिरोह बनायें।" रामेश्वर ने फ़ौरन जवाब दिया, "नहीं रामगुलाम, अब मैं एक मज़बूत पार्टी बनाना चाहता हूँ। वैसी ही पार्टी जैसी वियतनाम में है।" रामगुलाम हँसने लगा और मज़ाक उड़ाते हुए बोला, "तुम्हारे जैसे बहुत हैं, रामेश्वर! तुम यह मत समझो कि तुम्हारे बिना काम नहीं चल सकता।" रामेश्वर ने अपने अतीत से पीछा छुड़ा लिया था और उन्होंने बाद में वे गुप्त कारण बताये जिनसे प्रेरित होकर वह रामगुलाम के साथ गये थे, "...मैं रामगुलाम की तरह होना चाहता था, क्योंकि मेरे गाँव के भूमिहार उसे देखकर

बहुत डरते थे। जब भी रामगुलाम अपनी धारीदार लुंगी में एकवारी की तरफ़ से गुजरता था, भूमिहार लोग काँप उठते थे।"

अपेक्षाकृत शांत एकवारी को जब वर्ग-दुश्मन के सफ़ाये की एक के बाद एक घटनाओं ने हिला दिया तब कहीं जाकर यह पता चला कि रामेश्वर और जगदीश तत्काल कुछ हिंसक कार्य करने की योजना बना रहे थे। जगदीश सिंह की हत्या में (यह वर्ग-दुश्मन के सफ़ाये की दूसरी घटना थी) जब रामेश्वर के पुत्र बिहारी यादव को फँसा दिया गया, तब रामेश्वर ने एक बार घर पर चुपके से आये अपने बेटे से कहा, "बिहारी, बेटे का सबसे बड़ा रक्षक उसका बाप होता है। तुम मेरे झंडे के नीचे आ जाओ, मैं तुम्हें बचा लूंगा।" लेकिन जब एक पुराने कम्युनिस्ट नाथूराम ने पूछा कि उसके पास अगर हथियार है तो क्या वह पार्टी में शामिल हो सकता है? तो रामेश्वर ने जवाब दिया, "इसका मतलब यह नहीं कि तुम एक कम्युनिस्ट हो।" जगदीश और रामेश्वर को लोग प्यार से 'मार्क्स और एंगेल्स' कहते थे और ये दोनों नक्सलवादी आंदोलन के प्रमुख नेता बने।

जब नहर के किनारे जीप रोककर सरसों के खेतों से दौड़ती हुई पुलिस सोनाटोला की ओर बढ़ रही थी, उस समय मार्च 1974 में चिल्हौस में पड़े छापे के दौरान घायल बाँह और पेट की बीमारी से पीड़ित रामेश्वर काफ़ी थके-हारे थे। चाँदी गाँव में किया गया घेराव व्यर्थ साबित हुआ था और पुलिस-अधीक्षक जे० एन० श्रीवास्तव को इन खबरों पर पक्का यक़ीन था कि रामेश्वर को करनोल चाँदी से तीन किलोमीटर दूर सोनाटोला में पकड़ा जा सकता है।

धमनिया की पुलिया को पार करते ही सोनाटोला के पास पुलिस की जीपें एक झटके के साथ रुक गयीं। गाँव वालों को कोई हैरानी नहीं हुई, क्योंकि इलाक़े को छान डालने की पुलिस की हरकतों के वे अभ्यस्त हो चुके थे। फिर भी वे यह देखकर चौंक गये कि पुलिस के जवान अपनी संगीनें ताने गाँव की तरफ़ दौड़ रहे हैं। कुछ युवकों ने रामेश्वर से भाग जाने को कहा, पर उन्होंने कहा कि वह थके हुए हैं और भागने से इनकार कर दिया—वह लगभग 500 गज़ की दूरी पर बनी एक झोंपड़ी में चले गये और वहीं पुआल पर लेटे रहे। खेत में काम करती कुछ औरतों ने पूछताछ करने पर बताया कि उन्होंने एक आदमी को झोंपड़ी की तरफ़ जाते देखा है। पुलिस ने नंगे बदन, लुंगी पहने एक व्यक्ति को पकड़ लिया और गाँव में ले आयी।

जब पुलिस ने उस व्यक्ति के बारे में पूछताछ शुरू की तो गाँव के लोगों ने बार-बार यही कहा कि वह निर्दोष है। उन दिनों रामेश्वर सुखराम चमार की माँ के साथ रहते थे जो अभी भी जेल में था। सुखराम की माँ ने पिछले कुछ दिनों से साधुजी को शरण दी थी और उनके खाने-पीने का इंतज़ाम करती थी। रामेश्वर की गिरफ़्तारी का वर्णन करते समय वह फूट-फूटकर रो पड़ी। सुखराम

की पत्नी ने तो पुलिस से यहाँ तक कहा कि यह व्यक्ति (रामेश्वर) उसका पति है और आसाम में काम करता है—छुट्टियों में घर आया है। लेकिन इस झूठ से भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

जिस समय यह पूछताछ चल रही थी, रामेश्वर एकदम ख़ामोश बैठे थे। कुछ मिनट बाद उन्होंने अपने हाथ की घड़ी निकालकर उस औरत को पकड़ायी। जीप में से उन्होंने एक बार दूर तक फैले खेतों पर निगाह डाली। यह मकर संक्रांति का दिन था। कुछ ही मिनट पहले सुखराम की माँ ने उन्हें दही और चिउड़ा खिलाया था। सरसों के फूलों से धरती पीली हो रही थी। उनके हाथों में हथकड़ी लगी थी और पेट में ऐंठन हो रही थी। वह थके और कमज़ोर लग रहे थे, लेकिन दिमाग़ में कुछ लगातार सुलग रहा था। अचानक धमनिया की पुलिया क़रीब आयी और सब-कुछ एक रहस्यमय ढंग से परिचित-सा लगने लगा।

दस साल से भी अधिक गुज़र गये, जब एक बार इसी पुलिया से पुलिस वाले इन्हें लेकर गये थे। उस समय भी इनके हाथ में हथकड़ी थी, लेकिन आज वह अपराधी नहीं थे। भयंकर ग़ुस्से से वह काँप उठे और कड़कती आवाज़ में उन्होंने ड्राइवर से जीप रोकने को कहा। जीप धीमी हुई। अब कांस्टेबलों से उनकी हाथा-पाई हो रही थी। कांस्टेबलों ने लगातार प्रतिरोध किया, पर वह जीप से उतर पड़े। उन्होंने आगे जाने से इनकार किया और पुलिस-अफ़सर को आदेश दिया कि वह गोली चलाये और उन्हें मार डाले।

पुलिस वाले लगातार उन्हें जीप में बैठाने के लिए खींच रहे थे और वह लगातार प्रतिरोध कर रहे थे। रामेश्वर का शरीर बेहद सुडौल और बलिष्ठ था। वह बार-बार कह रहे थे, "मैं कोई अपराधी नहीं हूँ। मुझे गोली मार दो पर मैं आत्म-समर्पण नहीं करूँगा। मैं जेल नहीं जाऊँगा। मैं कोई डाकू नहीं हूँ। मैं सताये हुए लोगों के लिए लड़ता हूँ। मैं औरतों की इज्ज़त के लिए लड़ता हूँ। एक दिन इस ज़मीन पर उनका क़ब्ज़ा होगा जो इसे जोतते हैं। बेशक तुम हमें मार डालो पर यह होकर रहेगा—मेरी मौत से इसमें कोई रुकावट नहीं आयेगी। मेरे पीछे ऐसे तमाम लोग हैं जो मेरी तरह सोचते हैं। हाँ, मैं ही रामेश्वर हूँ जिसे तुम लोग ढूंढ़ रहे हो।"

पुलिस-अफ़सर ने उन्हें जीप में बैठने का आदेश दिया। ग़ुस्से में रामेश्वर ने हथकड़ी वाला अपना हाथ पूरी ताक़त के साथ भाँजा। जवाब में अफ़सर ने दो बार गोली चलायी।[1] रामेश्वर का शरीर ज़मीन पर लुढ़क गया और आँख के नीचे से ख़ून की एक पतली धार बह चली। धमनिया की उस चिर-परिचित पुलिया के पास रामेश्वर की यात्रा पूरी हो गयी।

---

1. 'आर्यावर्त', 20 जनवरी, 1975

अगली रात आरा में गंगा घाट के उदास सूखे तट पर बर्फ़ीली हवा के बीच ठिठुरता-काँपता एक बूढ़ा व्यक्ति अपने बेटे की चिता से उठती लपटों को चुपचाप निहारता रहा। सवेरे वहाँ राख का एक कण भी नहीं बचा था। एक बूढ़े साधु ने बताया कि पुलिस के कुछ जवान राख को अपने साथ ले गये और जाते समय उन्होंने राख को अपने मस्तक पर लगाया।

सहार जाने वाली धूल-भरी सड़क के आर-पार एक दर्द-भरा गीत गूँजता रहा और रुँधे गले से गीत के बोल बाहर आते रहे :

कहलोना जाला ई दुख साधु साथी।
बरुही, बरुना, बाघी दुख रोअतबा
बेरथ रोअता सिर धुन के साधु साथी।
आयर, चिल्हौस, दच्चना रोअतबा
पसउर रोअतबा दुखे से साधु साथी।
कहलोना जाला ई दुख साधु साथी।

उस रात एकवारी के ज़मींदारों ने राहत की साँस ली और रामायण का पाठ करवाया।

सोनाटोला की तरफ़ पुलिस को आते देखकर युवक इधर-उधर भागने लगे थे—इनमें से एक नौजवान अमावस दुसाध था, जिसकी उम्र 35 वर्ष थी। भागते समय यह अपने साथियों से अलग पड़ गया और एक झोंपड़ी में भूसे के पीछे छिप गया। लेकिन इस भगदड़ में कुछ ग्रामीणों ने उसे देख लिया और पुलिस के आतंकित करने पर इस युवक को पुलिस के हवाले कर दिया। पुलिस ने इस नौजवान को गड़हनी ले जाकर पूछताछ शुरू की। अमावस ख़ामोश रहा और उससे कोई बात उगलवा पाने में असमर्थ पुलिस लगातार उसे संगीन कोंचती रही। उसे कुछ नहीं पता था, लेकिन चूँकि वह भोला-भाला युवक ख़ामोश था, इसलिए पुलिस को पक्का यक़ीन होता गया कि वह भी नक्सलवादी है और अंततः शाम को आठ बजे पुलिस ने उसे गोली मार दी।

अमावस अपने पीछे चार बच्चे छोड़ गया—इनमें से सभी आठ वर्ष से कम उम्र के थे। अपने बेटे की मौत की ख़बर सुनते ही अमावस की माँ पुलिस-अधीक्षक जे० एन० श्रीवास्तव के पास गयी। उन्होंने उसकी माँ के हाथ में 90 रुपये रखे और हलके-से मुसकराये। मार्च 1974 में झूलन सिंह की हत्या के शक में अमावस के पिता अभी भी जेल में पड़े थे। उनके पास ज़मानत के लिए रुपये नहीं थे। अमावस की बूढ़ी माँ सोनाटोला के एक कोने में सिकुड़ी-सिमटी बैठी अपने पोतों को समझाती है, "बेटे, इन ख़ाकी वर्दी वालों को कभी न भूलना जिन्होंने तुम्हारे बाप को पीट-पीटकर मार डाला।"

जनवरी 1975
सहार

चमकू मुसहर की किसने हत्या की? मसौढ़ी (पटना) में पुलिस और किसानों के बीच मुठभेड़ के बाद 22 मई, 1975 को अख़बारों ने प्रकाशित किया कि राज्य-प्रशासन पटना और भोजपुर में सक्रिय चारु मजुमदार के समर्थक और लिन प्याओ के विरोधी नक्सलवादी गुट की गतिविधियों पर पैनी निगाह रखे हुए हैं। राज्य प्रशासन को ख़ासतौर से जौहर (सुव्रतो दत्त) उर्फ़ कालिका, बेरथ सहार के भगवानप्रसाद, रामनरेश दुसाध, नारायण कवि, डॉ० निर्मल और चमकू मुसहर की तलाश थी। बताया जाता है कि पिछले वर्ष मार्च में पुलिस के साथ मुठभेड़ में चमकू बच गया था—यह शायद 4-5 मार्च, 1974 को सोनाटोला में हुई मुठभेड़ की बात है।

चमकू मुसहर सहार के करबसिन गाँव का था और गोदिहा गाँव के रामायण सिंह की गायों को चराने के साथ-साथ बरगाँव हाई स्कूल से उसने दर्जा दस तक पढ़ाई की थी। अगल-बग़ल के गाँवों में चमकू को लोग एक ऐसे मस्तमौला और ताक़तवर मुसहर के रूप में जानते थे जिसका मन हरदम नाच-मंडली में रमा रहता था। रामेश्वर अहीर के सम्पर्क में आने के साथ नक्सलवादियों से उसकी घनिष्ठता बढ़ी। लेकिन बाद में वह पार्टी में अवांछनीय समझा जाने लगा। यह भी ख़बर सुनने में आती है कि पुलिस का मुख़बिर होने के आरोप में चमकू को पार्टी से निकाल दिया गया था और बाद में जनवरी 1975 के आसपास उसे मार डाला गया।

फ़रवरी 1975
सरैया, संदेश

1975 का वर्ष भोजपुर में संघर्ष के एक नये चरण की शुरुआत को चिह्नित करता है। इस तरह के ज़ालिमों पर नक्सलवादियों के हमले के कारण इस राजनीति से प्रभावित इलाक़ों में डाकुओं और चोरों का असर ख़त्म होने लगा। फ़रवरी 1975 में सरैया का एक कुख्यात डाकू कपिल तेली मारा गया। वह अपने इलाक़े में आतंक था और बताया जाता है कि अपनी बिरादरी के तीन लोगों की हत्या भी वह कर चुका है। वह अत्यंत कामुक और विलासी मनोवृत्ति का भी था। इलाक़े के भूमिहारों ने नक्सलवादियों का मुक़ाबला करने का काम कपिल तेली को सौंपा था और बताया जाता है कि इसके लिए उसे दस हज़ार रुपये दिये गये। फ़रवरी 1975 में नक्सलवादियों ने उसकी हत्या करके लाश को एक कुएँ में डाल दिया।

मार्च 1975
धनछुआँ, सहार

सहार ब्लाक के अन्य गाँवों की तरह कुछ अन्यायपूर्ण घटनाएँ धनछुआँ में घटित हुईं। परिणामस्वरूप हिंसात्मक घटनाओं की शुरुआत में 50-55 बीघे की जोत वाले ज़मींदार कुलशेखर राय की हत्या ने इस गाँव को भी सहार के अन्य अशांत गाँवों की क़तार में ला खड़ा किया। 14 मार्च को दिन में लगभग डेढ़ बजे नक्सलवादियों ने उस समय उन्हें मार डाला जब वह अपना खेत जोत रहे थे। उनका हलवाहा बब्बन धोबी डर के मारे भाग खड़ा हुआ, लेकिन थाने में दर्ज मामले में (केस सं० 7 (3) 75) चाक गाँव के एक सैनिक सूरज बनिया को, जो छुट्टी पर धनछुआँ में था, और बहुआरा गाँव के केशो चमार को फँसा दिया गया। साढ़े तीन साल तक हिरासत में रखने के बाद आख़िरकार केशो को 1978 में रिहा कर दिया गया।

3 अप्रैल, 1975
छपरापुर, पीरो

कोवठ में एक पुलिस-चौकी पर हमला करने और पाँच राइफ़लें छीनने के बाद भारी संख्या में पुलिस ने नक्सलवादियों की तलाश में आसपास के इलाक़े को छानना शुरू किया। तीन दिनों तक भटकते रहने के बाद किसी से सुराग़ मिलने पर पुलिस-दल ने पीरो ब्लाक के छपरा गाँव पर घेरा डाला। 3 अप्रैल, 1975 को रात-भर घेरा पड़ा रहा और दोनों तरफ़ से गोलियाँ चलती रहीं। इस बीच पुलिस लगातार नक्सलवादियों से अपील कर रही थी कि वे आत्म-समर्पण कर दें। 12 घंटे की इस मुठभेड़ को गाँव के जिन लोगों ने देखा था उनका कहना था कि नक्सलवादी आत्म-समर्पण करने में काफ़ी हिचकिचा रहे थे।

अंत में जब उन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया तो इस अभियान के इंचार्ज पुलिस-अधीक्षक ने उन्हें आदेश दिया कि वे एक मकान की छत पर हाथ में राइफ़ल लेकर खड़े हो जायें। इसके बाद पुलिस के फ़ोटोग्राफ़र ने उनकी तसवीरें लीं। इसके बाद अचानक ही उन पर चारों तरफ़ से पुलिस की गोलियाँ चल पड़ीं और यह आत्म-समर्पण एक भीषण नर-संहार में बदल गया। इनमें से एक नक्सलवादी अलगू राम को घायल अवस्था में सहारा देकर कुर्सी पर बैठाया गया—उसके अगल-बग़ल से ख़ून की धार निकल रही थी। अलगू का दम टूटने ही वाला था कि पुलिस-अधीक्षक उसकी तरफ़ बढ़े और क़रीब आकर पूछा, "बहादुर आदमी, बताओ मैं तुम्हारे और तुम्हारे परिवार के लिए क्या मदद कर सकता हूँ?" अलगू ने जवाब दिया, "कुछ नहीं। आप हमें लड़ते हुए ही मरने दीजिये। मेरे बच्चे ख़ुद ही अपनी देखभाल कर लेंगे।" [illegible] अपने पीछे पत्नी, एक दादी और दो बच्चों

को छोड़ गये। इसके बाद पुलिस-अधीक्षक जे० एन० श्रीवास्तव पीछे मुड़े और पुलिस वालों की तरफ़ देखकर बोल पड़े, "बुज़दिलो, चूहों की तरह तुम क्या एक बहादुर आदमी को मरते हुए देख रहे हो! चलो, अब यहाँ से चलें।"

अलगू के भाई शिवनारायन भी इस वारदात में मारे गये। दोनों भाई छपरा गाँव के थे और भूमिहीन मज़दूर थे।

अलगू दुसाध तमाम और लोगों की तरह अपराधी जीवन बिताने के बाद नक्सलवादी बने थे। एक दिन उन्होंने अपने मालिक विश्वनाथ सिंह की हत्या कर दी—डकैती में प्राप्त माल में विश्वनाथ सिंह का भी हिस्सा लगता था। मार्च 1975 में रिहा होने के बाद से अलगू अंतिम समय तक फ़रार ही रहे। अन्य दो मृतकों में एक 15-वर्षीय युवक लाल मोहर और दूसरा 24-वर्षीय विश्वनाथ था। विश्वनाथ डुमरी थाना के अंतर्गत शाहपुर गाँव का एक साधारण चमार बनिहार था। अपने अत्याचारी मालिक की हत्या करने के बाद वह नक्सलवादी बना था। यह अजवाह भी सुनने में आती है कि दावाथ थानान्तर्गत दिलिया गाँव के लाल मोहर ने आत्मसमर्पण करने से पहले सर के बाल काफ़ी बड़े कर लिये थे, ताकि पुलिस को इस धोखे में रखा जाये कि नक्सलवादी लोग काफ़ी फैशनेबुल होते हैं।

14-15 अप्रैल, 1975
दुल्लमचक, सहार

मई 1975 में जब साठ बीघे की जोत वाले ज़मींदार गति राय की हत्या हुई तभी इस बात का पूर्वाभास हो गया था कि धीरे-धीरे दुल्लमचक एक युद्ध-भूमि का रूप ले लेगा। चवरी, बहुआरा और बेरथ जैसे शांत गाँव पहले ही नक्सलवादी राजनीति के प्रभाव में आ चुके थे और एकवारी से तीन मील दूर बसे दुल्लमचक गाँव के नक्सलवादी होने में ज़्यादा देर नहीं थी।

इस गाँव में 35 परिवार भूमिहारों के हैं और गाँव की अधिकांश ज़मीन भी इन्हीं के पास है। इनमें से प्रत्येक के पास 25-30 बीघे ज़मीन है। लेकिन दो भूमिहारों आधार—राय और शिवदास राय के पास क्रमशः 100 बीघे और 75 बीघे ज़मीन है। अन्य जातियों के पास ज़मीन के छोटे-मोटे टुकड़े हैं। इस गाँव में अहीरों के 45 परिवार हैं और इनमें सबसे बड़ी जोत वाले दो व्यक्तियों—बैजनाथ सिंह और लालधारी सिंह—के पास क्रमशः 20 बीघे और 12 बीघे ज़मीन है।

दुल्लमचक में काफ़ी समय से भूमिहारों का प्रभुत्व रहा है। धनछुआँ गाँव के कपिल राय और कमला राय तथा इनके साथी दुल्लमचक के राजनाथ राय का एक ऐसा त्रिगुट था जो अपने को सर्वशक्तिमान समझता था और जिसके आतंक

से हरिजन लोग दिन-रात पीड़ित रहते थे। यहाँ तक कि पुलिस भी राजनाथ सिंह से आदेश लेकर काम करती थी। उसके ही इशारे पर पुलिस ने बसावन यादव की हत्या की थी, क्योंकि बसावन ने भूमिहारों को नाराज़ कर दिया था। धनछुआँ में कुलशेखर राय की हत्या के मामले में पुलिस ने राजनाथ सिंह की सनक को पूरा करने के लिए बेगुनाह सूरज बनिया को गिरफ़्तार कर लिया था। अहीरों के अंदर भी भूमिहारों के प्रति असंतोष पनप रहा था।

अहीरों और भूमिहारों के बीच तनाव उस समय बहुत बढ़ गया जब एक नौजवान अहीर चन्द्रमा यादव को इसलिए गंभीर रूप से पीट दिया गया कि उसने रामजी राय के बागीचे से आम तोड़ लिये थे। इस घटना से दोनों जातियों के बीच पनप रही नफ़रत अब प्रकाश में आ गयी। चन्द्रमा के पिता की ससुराल पड़ोस के गाँव बहुआरा में थी जहाँ नक्सलवादियों का काफ़ी प्रभाव था और चन्द्रमा के मित्र रामप्रवेश कहार एक जाने-माने नक्सलवादी हमदर्द थे।

इसके कुछ ही दिनों बाद गति राय की हत्या हुई। फलस्वरूप पुलिस सक्रिय हुई और उसने राजनाथ राय के मकान में अपनी छावनी डाल दी। 3 मार्च को दुल्लमचक में पुलिस और नक्सलवादियों के बीच एक मुठभेड़ हुई और तनाव बढ़ने लगा। अंततः 21 मई की रात में लगभग आठ बजे नक्सलवादियों के एक दस्ते ने पुलिस-दल पर हमला किया जिसमें तीन सशस्त्र सी० आर० पी० के जवान, सी० आर० पी० का एक इंस्पेक्टर और एक सब-इंस्पेक्टर था। पुलिस का यह दल गाँव में अपनी छावनी पर जा रहा था। गोली लगने से पुलिस की जीप का टायर फट गया और दोनों पक्षों में जमकर गोली-बारी हुई। डुमराँव का रहने वाला विश्वनाथ नामक एक कांस्टेबल मारा गया और सब-इंस्पेक्टर बी० बी० लाल गंभीर रूप से घायल हुए। फ़ौरन ही पुलिस की मदद के लिए एकवारी से अतिरिक्त दस्ते बुलाये गये और रात-भर गाँव में पुलिस का घेरा पड़ा रहा।

अगली सुबह जब राजनाथ राय की देखरेख में धर-पकड़ शुरू हुई तो काफ़ी भगदड़ मच गयी। रामप्रवेश कहार पुलिस की घेरेबंदी तोड़कर भागने लगा, लेकिन धनछुआँ के पास इंस्पेक्टर दूबे की गोली का शिकार हुआ। रसूल मियाँ, जीवन कहार, झगरू राम, बिजली कहार और चंदर बनिया को बुरी तरह पीटा गया और गिरफ़्तार किया गया। कुछ फ़रार हो गये। अपने सभी विरोधियों और संभावित विद्रोहियों से बदला लेने के लिए राजनाथ राय ने सबको 'नक्सलवादी' कहकर पकड़वाया।

दुल्लमचक की घटनाओं की चारों तरफ़ चर्चा होने लगी और इससे चिंतित होकर जयप्रकाश नारायण ने अपने दो विश्वासपात्र व्यक्तियों, रामइकबाल और बाबूराव चन्दावार से कहा कि वे घटना की छानबीन करें। बाबूराव चन्दावार

ने अख़बारों में जो बयान दिये उससे इस तथ्य का पता चला कि पुलिस के अलावा ज़मींदारों ने असंतुष्ट लोगों का दमन करने के लिए क़ानून को अपने हाथ में ले लिया था।

सर्वोदय नेता बाबूराव चन्दावार ने विरोध करते हुए बयान दिया था, "मुठभेड़ की ख़बरें ग़लत हैं। सचाई यह है कि दो ज़मींदारों—रामनाथ राय और राजनाथ राय के बीच संघर्ष होने पर 13 मई को पुलिस को दुल्लमचक गाँव में तैनात किया गया। 15 मई की सवेरे अधमुआँ गाँव के एक ग़रीब किसान बच्चन अहीर दुल्लमचक के डॉ० कमला राय के पास गये। डॉक्टर ने बच्चन अहीर को नक्सलाइट कहा और अनेक चश्मदीद गवाहों के सामने उसे गोली से उड़ा दिया। बच्चन अहीर की फ़ौरन ही मृत्यु हो गयी। रात में सी०आर०पी० के जवानों ने, जो गाँव में तैनात थे, एक भूमिहीन किसान गोपाल चमार को उसके घर से बाहर घसीट कर गोली मार दी।"

कुछ समय तक के लिए गाँव में फिर से शांति क़ायम हो गयी। तीन हरिजन मारे गये थे। ज़मींदारों ने राहत की साँस ली। अभी एक साल पहले ही रामप्रवेश कहार ने समान मज़दूरी की माँग को लेकर मज़दूरों को संगठित किया था और उससे छुटकारा पाकर भूमिहारों को अब काफ़ी ख़ुशी हो रही थी।

9 अप्रैल, 1975
आयर, जगदीशपुर

10 दिसम्बर, 1972 को बिहिआ बाज़ार में जब जगदीश महतो और रामायण राम ने आयर के कुख्यात हरिसिंह पर क़ातिलाना हमला किया था, उस समय हरिसिंह ने किसी तरह अपने को बाल-बाल बचा लिया, लेकिन इसके बाद से ही वह हमेशा घबराया रहता था और शायद ही कभी गाँव से बाहर निकलता रहा हो। 9 अप्रैल, 1975 को दिन में लगभग दस बजे हरिसिंह गाँव के ही एक अध्यापक जीवनधन साव के अनुरोध पर बिजली सप्लाई के सिलसिले में बरनाव जा रहे थे। उनके साथ जीवनधन भी थे और आयर के कुछ अन्य लोग भी थे। हरिसिंह के पास अपनी दुनाली बंदूक थी, जो भरी हुई थी। कुछ दूर जाने पर उन्हें कुछ अज्ञात लोग मिले। उनमें से एक व्यक्ति आगे आया और उसने हरिसिंह से थोड़ा तम्बाकू देने का अनुरोध किया। जैसे ही हरिसिंह तम्बाकू निकालने की मुद्रा में हुए कि उनमें से एक ने बाल पकड़ कर उन्हें आगे झुका दिया और दूसरे ने फुर्ती के साथ उनकी गरदन पर तलवार से वार किया। दूसरे आदमी ने झपट कर उनकी राइफल पर क़ब्ज़ा किया और बिना किसी तरह का झगड़ा-फ़साद किये दोनों वहाँ से ग़ायब हो गये। हरिसिंह के साथ जितने लोग थे वे सब सकते में आ गये थे और बड़ी लाचार निगाहों से देख रहे

थे। इस प्रकार एक और अत्याचारी तथा बदमाश ज़मींदार का सफ़ाया हो गया था। जिस तरह थानासिंह की हत्या के बाद हरिजनों को चैन मिला था वैसे ही हरिसिंह के मारे जाने से उनके अंदर खुशी की लहर दौड़ पड़ी।

लेकिन बात यहीं ख़त्म नहीं होती। हरिसिंह के परिवार के सदस्यों ने नामज़द रिपोर्ट दर्ज करायी और इसमें भोदुल मुसहर, सुन्दर मुसहर, ललन पासी, गुलेश्वर राम, राम बिशन चमार और बालेश्वर राम का नाम लिखवाया, लेकिन इस वारदात के समय हरिसिंह के साथ जा रहे दीनानाथ साव ने गवाह बनने से इंकार कर दिया। गुलेश्वर, जो अभी भी जेल में है, के अलावा दूसरे सभी फ़ौरन फ़रार हो गये और विश्वास किया जाता है कि वे सभी लोग नक्सलवादियों के गुप्त संगठन में शामिल हो गये।

बदले की कार्रवाइयाँ जारी रहीं। 31 दिसंबर, 1978 को नक्सलवादियों का विरोध करने वाले ज़मींदार संगठन के लोगों ने जीवनधन साव के नेतृत्व में दीनानाथ साव की हत्या कर दी। मुक़दमे का जब फ़ैसला हुआ तो जज ने बालेश्वर राम को आजीवन कारावास की सज़ा सुनायी और अपने फ़ैसले में लिखा कि हरिसिंह की हत्या के लिए केवल नक्सलवादी ही ज़िम्मेदार हैं।

फ़ैसले की रिपोर्ट में के० एन० जायसवाल ने लिखा, "वादी पक्ष का कहना है कि आयर गाँव के धरीछन सिंह के पुत्र हरिसिंह नक्सलवादियों के नाम से ज्ञात उग्रपंथियों की हत्या का लक्ष्य बने थे। इन उग्रपंथियों का हिंसा में विश्वास है और इस इरादे को पूरा करने के लिए उन्होंने बिहिआ बाज़ार में हरिसिंह पर हमला किया था। तब से हरिसिंह हमेशा अपने साथ हथियार रखने लगे थे।"

मई 1975
चाँदी, पीरो

सोनाटोला जैसे दूर-दराज़ के गाँवों से रामेश्वर अहीर को गिरफ़्तार किये जाने और बाद में उनकी हत्या किये जाने से लोगों के अंदर दुख तो था ही लेकिन 14 जनवरी, 1975 की उस घटना के बारे में वे लगातार यह भी सोचते थे कि पुलिस को किस तरह रामेश्वर के ठिकाने का पता चला और इस मामले में संदिग्ध व्यक्ति कौन है? धीरे-धीरे कामरेडों ने उस व्यक्ति का भी पता लगा लिया जिसे रामेश्वर के पीछे लगाया गया था और इस काम के लिए एक हज़ार रुपया दिया गया था। एक रात बिशनदेव दुसाध को उसके घर से बुलाकार कुछ लोग कहीं ले गये और फिर बिशनदेव कभी वापस नहीं लौटा—यह एक मुखबिर का सफ़ाया था।

2 जून, 1975
हदियाबाद, जगदीशपुर

हदियाबाद के ज़मींदारों ने हरिजन बस्ती में लूटपाट मचा दी थी। पूरी तरह हथियारबंद और पड़ोस के गाँव के ज़मींदार की मदद से लैस इन लोगों ने हरिजनों की अनेक झोंपड़ियों को आग लगा दी। समराँव गाँव के नारायण कोइरी के 13-वर्षीय पुत्र सुरेश कोइरी को मार डाला गया और उसकी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके आग में डाल दिया गया। ज़मींदारों के इस क्रोध का शिकार 25 मकानों को होना पड़ा। विश्वास किया जाता है कि गाँव में नक्सलवाद के प्रचार का विरोध करने तथा इसके भावी प्रसार को रोकने के लिए यह कार्रवाई की गयी थी।

4 जून, 1975
भोजपुर, पटना

राज्य सरकार ने 15 सदस्यों की 'सामाजिक अन्याय निराकरण समिति' का गठन किया और इसका पहला काम यह निर्धारित किया कि वह समाज के सभी वर्गों के लोगों के बीच सद्भाव बनाने और विश्वास पैदा करने के उद्देश्य से पटना ज़िले के भोजपुर इलाक़े के नक्सलवाद-प्रभावित क्षेत्रों का दौरा करे।

13 जून, 1975
सहार, भोजपुर

नारायणपुर गाँव में आम के बागीचे में आयोजित एक विशाल सभा में सर्वोदय नेता जयप्रकाश नारायण ने हिंसा के मार्ग पर चलने वालों से अनुरोध किया कि वे हिंसा का रास्ता छोड़कर 'संपूर्ण क्रांति' को पूरा करने में अपना समय लगायें। श्री जयप्रकाश नारायण भोजपुर ज़िले के नक्सलवादी क्षेत्रों की दो दिन की यात्रा पर थे। उन्होंने कहा कि "आप मुझे महज़ पाँच वर्ष का समय दीजिये और अगर अहिंसक संपूर्ण क्रांति को पूरा करने में मैं असफल हो जाता हूँ तो मैं दोबारा भोजपुर नहीं आऊँगा और आप से यह नहीं कहूँगा कि आप नक्सलवाद को छोड़ दें।"

प्रभावित क्षेत्रों की अपनी व्यापक यात्रा के दौरान उन्होंने ज़मींदारों और भूमिहीनों के साथ अलग-अलग बातचीत की और उनसे क्षेत्र में शांति बनाये रखने की अपील की। दरअसल इस क्षेत्र में पुलिस, कथित नक्सलवादियों, ज़मींदारों और भूमिहीनों के बीच अनेक ख़ूनी संघर्ष हो चुके थे। नारायणपुर और तरारी जैसे भीतरी इलाक़ों में भी जहाँ कुछ समय से नक्सलवादी काफ़ी सक्रिय थे, सर्वोदय नेता ने सार्वजनिक सभाएँ आयोजित कीं।

दुल्लमचक में रामधनेश कहार और रामबचन अहीर के शोकसंतप्त परिवार

के सदस्यों के यहाँ भी जयप्रकाश नारायण गये और उन्हें उन्होंने सांत्वना दी। गाँव के अत्याचारी मुखिया राजनाथ राय को उन्होंने काफ़ी फटकार सुनायी। जब उन्होंने देखा कि उनके मकान पर पुलिस तैनात है तो वहाँ का पानी पीने से भी इंकार कर दिया। अफ़वाह यह है कि जयप्रकाश नारायण के उस इलाक़े से जाने के बाद सहार के गाँव में एक चुटकुला चल पड़ा था, "बरसात आने पर मेंढक टरटराने लगते हैं।"

23 जून, 1975
पियनियाँ, सहार

पुलिस उप-महानिरीक्षक (मध्य क्षेत्र) बद्रीनारायण सिन्हा ने संवाददाताओं को बताया कि सहार थाने के अंतर्गत नारायणपुर गाँव से कर्ज़ की वसूली के बाद आरा वापस लौटते समय पुलिस के एक सशस्त्र दल पर, जिनमें पाँच कांस्टेबल थे, कुछ लोगों ने हमला किया। मजिस्ट्रेट आर० एन० पांडे के नेतृत्व में जैसे ही यह पुलिस-दल आरा-सासाराम रोड पर स्थित पियनियाँ गाँव पहुँचा, पास के अरहर के खेतों में छिपकर बैठे उग्रवादियों ने जीप पर गोलियों से हमला किया। शुरू में पुलिस की यह टुकड़ी घबरा गयी, लेकिन जल्दी ही इन्होंने भी जवाब में गोलियाँ चलायीं और कुछ देर तक दोनों तरफ़ से गोली-बारी होती रही। अंततः नक्सलवादियों ने गोली चलानी बंद कर दी और वे भाग गये। पुलिस सूत्रों के अनुसार हमला करने वाले दल में लगभग दस व्यक्ति थे और इनमें से हरेक के पास राइफ़ल थी। पियनियाँ गाँव आरा से लगभग चार मील की दूरी पर है और इस गाँव के पास से ही सहार का वह इलाक़ा शुरू होता है जहाँ नक्सलवादी काफ़ी सक्रिय हैं। यह घटना शाम के लगभग सवा पाँच बजे हुई थी और कुछ ही देर बाद पुलिस ने इलाक़े में नक्सलवादियों की खोज शुरू कर दी। लगभग दस व्यक्तियों को पूछताछ के लिए गिरफ़्तार किया गया।

29 जून-2 जुलाई, 1975
बहुआरा, सहार

जब हमारी जीप बहुआरा पहुँची तो इसे देखकर गाँव वाले तनिक भी नहीं घबराये। लोग हमारे साथ-साथ चलने लगे और पूछते रहे, "आप लोग कौन हैं? आप क्या चाहते हैं? कहाँ से आ रहे हैं?" आदि-आदि। हमने कहा, "पुलिस के साथ नक्सलवादियों की तीन दिन की मुठभेड़ के बारे में आप लोग हमें बतायें।" गाँव के लोगों ने एक-दूसरे की ओर देखा। इसके बाद लगभग 14 वर्ष के एक लड़के ने अपना गला साफ़ करते हुए हमसे कहा, "जाइये और गाँव के लोगों से ही पूछिये। वे ज्यादा जानते हैं। बहुआरा के बारे में कौन नहीं जानता? मुठभेड़ की

जानकारी लेने के लिए आपको यहाँ आने की कोई ज़रूरत नहीं थी। सारे अख़बारों ने तो इस ख़बर को प्रकाशित ही किया था, बी० बी० सी० ने भी इसे अपने समाचारों में स्थान दिया था।" इसके बाद वह ख़ामोश हो गया और थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने सलाह दी, "आइंदा आप लोग कभी भी जीप पर बहुआरा में मत आइयेगा। आपकी जीप देखकर लोग इसे पुलिस की गाड़ी समझेंगे।"

नहर के इर्द-गिर्द जाती सड़क से बहुआरा नामक छोटा गाँव बहुत अलग-थलग पड़ा दिखायी देता है और इस सड़क से गुज़रने वाले लोग इस उपेक्षित गाँव को बड़ी आसानी से नज़रअंदाज़ कर सकते हैं। इस गाँव में 143 परिवार हैं और संख्या की दृष्टि से अहीर जाति के लोग सबसे ज्यादा हैं। यहाँ अहीरों के साठ परिवार हैं। ऊँची जाति के लोगों की संख्या बहुत कम है, क्योंकि यहाँ राजपूतों के केवल पाँच परिवार ही हैं। बहुआरा के आसपास के अन्य गाँवों की तरह मज़दूरी की स्थिति यहाँ भी वैसी ही है, लेकिन सामाजिक तौर से इन बातों का न तो कभी विरोध देखा गया और न असंतोष की ही कोई घटना सामने आयी।

28 जून की शाम को अपने सूत्रों से किसी तरह का सुराग़ पाकर हथियारबंद पुलिस के एक बहुत बड़े दस्ते ने, जिसमें मुख्यतया केंद्रीय रिज़र्व पुलिस और जाट रेजिमेंट के सैनिक थे, इस गाव को चारों ओर से घेर लिया। इनकी मदद के लिए धनछुआँ, दुल्लमचक और चवरी गाँवों के लगभग तीन सौ भूमिहार थे, जो पूरी तरह हथियारों से लैस थे। 1974-75 के दौरान इस तरह की तमाम घटनाएँ प्रकाश में आयी थीं जिनमें विक्षुब्ध हरिजनों का दमन करने के लिए पुलिस और ज़मींदार ने मिलजुल कर कार्रवाई की थी।

काफ़ी देर तक दोनों तरफ़ से गोली चलने के बाद पुलिस ने आँसू-गैस के गोले छोड़े, ताकि धुएँ से परेशान होकर छुपे हुए नक्सलवादी बाहर आ जायें। यह सिलसिला पूरे तीन दिन तक जारी रहा, लेकिन पुलिस को कोई क़ामयाबी नहीं मिली। हार कर पुलिस ने हरिजनों के मकानों में आग लगा दी। इस प्रकार केशव चमार, राजगृह, बाँझूराम, सूरज राम, जोगन दुसाध, बद्री दुसाध, और महेश दुसाध के मकान पूरी तरह जलकर भस्म हो गये।

96 घंटे के युद्ध में पुलिस के काफ़ी जवान हताहत हुए। यह भी ख़बर सुनने को मिली कि इस घेराबंदी के दौरान पुलिस और अर्धसैनिक दल के बीच मनमुटाव पैदा हो गया। बताया जाता है कि ऊँची जातियों के अफ़सरों ने निम्न जातियों के पुलिस-कर्मचारियों को हरिजनों के झोंपड़े जलाने के लिए चुना और उन्हें मोर्चे पर सबसे आगे रखा। इससे सेना और पुलिस में असंतोष पैदा हुआ और वे एक-दूसरे से लड़ने लगे। नक्सलवादियों की गोलियों के शिकार पुलिस

और सैनिक कर्मचारियों की संख्या काफ़ी थी लेकिन आपस की लड़ाई में कम-से-कम 120 जवान मारे गये थे।

2 जुलाई, 1975 बुधवार को जिस समय हरिजनों के मकान जल रहे थे, चार व्यक्तियों को नक्सलवादी नारे लगाते हुए धुएँ के बीच से बाहर आते देखा गया। इनमें डाक्टर निर्मल और नारायण कवि थे। दो अन्य लोग गोलियों की बौछार के बीच धराशायी हो गये। अंततः लड़ाई ख़त्म होने पर जब थके-हारे अर्ध-सैनिक कर्मचारियों, स्थानीय और विदेशी पत्रकारों ने मलबों की तलाशी ली तो उनमें तीन लाशें, ख़ून चढ़ाने के लिए ख़ून की तीन बोतलें और नक्सलवादी साहित्य बरामद हुए। लगभग बारह से चौदह मकान भीतर-ही-भीतर एक-दूसरे के साथ सुरंगों से जुड़े हुए पाये गये।

भयंकर तबाही हुई थी, लेकिन पुलिस-अधीक्षक वाई० एन० श्रीवास्तव पटना में संवाददाताओं को यह विश्वास दिलाने में लगे थे कि बहुआरा में अब स्थिति नियंत्रण में है। फिर भी उन्होंने यह स्वीकार किया कि इस लड़ाई में चार सौ से पाँच सौ चक्कर गोलियाँ चलायी गयीं और तीस हथगोले इस्तेमाल किये गये। जिलाधीश ने बताया कि केंद्रीय रिज़र्व पुलिस के दो जवान मारे गये और पाँच गंभीर रूप से घायल हुए। पुलिस उप-अधीक्षक सामंत सिंह भी इस लड़ाई में मारे गये—उन्होंने अभी लगभग चार सप्ताह पूर्व ही पटना ज़िले के मसौढ़ी थाने के अंतर्गत घुरहुआँ गाँव में गिरफ़्तार 15 संदिग्ध नक्सलवादियों में से 11 की गोली मार कर हत्या की थी।

विश्वास किया जाता है कि अगर आपातकाल के दौरान 'हरिजन' शब्द को पवित्रता नहीं मिली होती तो पुलिस के घेराव और दमन की यह कार्रवाई और भी भीषण साबित होती। बाहर से आये एक पत्रकार से एक पुलिस-अधिकारी ने कहा भी कि "अगर हमें बाद में होने वाले हल्लेगुल्ले का डर नहीं होता तो हम पूरे गाँव को जलाकर भस्म कर देते, उजाड़ देते।" जिन आठ संदिग्ध व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया गया उनमें चपती राम, केशोराम और बागी गाँव का राधा मुसहर भी था जिसे सोनाटोला की घटना के समय भी गिरफ़्तार किया गया था। इस वारदात में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) की गाँव-समिति के सचिव विश्वनाथ चमार, रामानंद पासी, सरजू तेली और बूटन मुसहर भी शहीद हुए।

लेकिन बूटन की मृत्यु बहुआरा में नहीं हुई। पैर में गंभीर चोट लगने के बावजूद वह सड़क से घिसटते हुए पनवाड़ी पहुँचे। उनके पैर में कुछ छर्रे लगे हुए थे जिनसे भयंकर दर्द हो रहा था। जून की दोपहरी में उस धूल-भरी सड़क पर घिसटते हुए जाना ऐसा लग रहा था जैसे यह यात्रा कभी ख़त्म नहीं होगी। बूटन मुसहर यानि मास्टर बूटन। बरुना गाँव का एक तेज़ लड़का जो मुसहरों की

बिरादरी का पहला लड़का था जिसने मैट्रिक तक की पढ़ाई की थी। वर्षों तक बेरोज़गारी का चक्कर। फिर एक प्राइवेट बिस्कुट कंपनी में नौकरी। इसके बाद रोज़गार की तलाश में वर्षों तक कलकत्ता की ख़ाक छानने के बाद वापस बरुना पहुँचने पर बूटन ने देखा कि उसकी बिरादरी के लोग दिन-रात डर से मरे जा रहे हैं। बूटन ने उन्हें पढ़ना और लिखना सिखाया। लोग प्यार से उन्हें बूटन मास्टर कहने लगे।

एक बार छुट्टियों में घर पहुँचने पर उन्होंने देखा कि ग़रीब मुसहरों की ज़िंदगी एकदम असहनीय हो गयी है और रामगुलाम सिंह तथा उनके दो भाइयों धरीछन और सीताराम के आतंक से मुसहर परेशान है। विसर्जन मुसहर ने बूटन को रामगुलाम की लोलुप आँखों के बारे में बताया जो मुसहर टोली की औरतों पर बराबर लगी रहती थीं। वैसे भी एक मुसहर औरत सुभगिया को उसने अपनी रखैल बना रखा था। रामगुलाम उसे काफ़ी उपहार दिया करता था। सुभगिया की दो बहनें सुभगिया से भी ज्यादा ख़ूबसूरत थीं और रामगुलाम ने उन्हें भी अपनी कामुकता का शिकार बनाया था। रामगुलाम के दोनों भाई धरीछन और सीताराम ने भी मुसहरों के मकानों में अपनी-अपनी आमदरफ़्त बढ़ा दी थी। जब बूटन ने यह सब सुना तो वह ग़ुस्से से काँप उठा।

लगभग इन्हीं दिनों रामगुलाम के तौर-तरीक़ों से नाराज़ और रामेश्वर अहीर की नसीहतों से प्रभावित मुसहरों के एक दल ने एक दिन रामगुलाम को पकड़ लिया और जमकर उसकी पिटाई की। ज़मींदारों के लिए यह एक बहुत बड़ी बात थी। रामगुलाम ने फ़ौरन पास के थाने में जाकर रिपोर्ट लिखवायी और 11 मुसहरों को फँसा दिया। इनमें से अधिकांश काफ़ी अधिक उम्र के थे। बूटन के बूढ़े बाप घोरा और उसके दो सगे भाई बालेश्वर तथा नागेश्वर को भी इस मामले में फँसाया गया। बरुना के समूचे मुसहर समुदाय के लिए यह मुक़दमा एक अभिशाप बन गया। जब बूटन ने सब सुना और उसके पिता यह सब बताते हुए रो पड़े तो वह अपने को रोक नहीं सका।

ख़ुद उसके ही गाँव में उसकी बिरादरी के चमकू मुसहर नक्सलवादियों की पाँत में शामिल हो गये थे और फ़रार थे। बूटन ने चमकू से भेंट की और यह देखकर हैरान हो गया कि चमकू में बहुत परिवर्तन आ गया है। वह अब बदला लेने की बात करता है और ऐसे समाज की स्थापना का सपना देखता है जिसमें रामगुलाम जैसे अत्याचारियों की कोई जगह नहीं होगी और मुसहर लोग भी सर ऊँचा करके चल सकेंगे। उसने बताया कि कई गाँवों में अब मुसहर लोग न तो पहले की तरह डरे हुए हैं और न हरदम मिमियाते रहते हैं।

एक दिन बूटन के नेतृत्व में एक दस्ते ने दिन-दहाड़े रामगुलाम का सफ़ाया कर दिया और चमकू के साथ बूटन भी ग़ायब हो गया। चारों तरफ़ यह ख़बर

फैल गयी कि बूटन मास्टर ने कलकत्ते की नौकरी छोड़ दी और वह अब नक्सल-वादी हो गये।

हाँ, तो जब जाट रेजिमेंट बहुआरा में 2 जुलाई को सवेरे उन झोंपड़ों से उठते हुए धुएँ को देख रही थी, बूटन को बाहर निकलने में कामयाबी मिल गयी। उनके पैर में काफ़ी घाव हो गया था और थकान से सारा बदन टूट रहा था। अपनी राइफ़ल फेंकते हुए वह पड़ोस के गाँव पनवाड़ी की तरफ़ लँगड़ाते हुए जाने लगे। उसकी मृत्यु के समय पुलिस-अफ़सर ने पूछा, "तुम कौन हो ?"

उन्होंने जवाब दिया, "मैं बूटन मुसहर हूँ, भोजपुर की लालसेना का कमांडर—तुम और क्या जानना चाहते हो ?" आगे से अपनी कमीज़ को फाड़ते हुए उन्होंने सीने की तरफ़ इशारा किया और चीख पड़े, "अगर तुम्हें और कुछ जानना हो तो यहाँ गोली चलाओ। इसके बाद ही तुम मेरे दिल की गहराई को समझ सकोगे।" इसके बाद एक गोली की आवाज़ आयी और 24-वर्षीय नौजवान क्रांतिकारी और गाँव वालों के बीच मास्टर के नाम से प्रचलित बूटन मुसहर का शरीर ज़मीन पर लुढ़क पड़ा। बहुआरा की अग्नि-परीक्षा समाप्त हो चुकी थी। मुसहर बिरादरी रो पड़ी। बहुआरा से ज़िला मुख्यालय आरा तक का केवल एक घंटे का रास्ता है।

हमारे ड्राइवर ने पनवाड़ी ती तरफ़ इशारा करते हुए बताया, "यही वह गाँव है जहाँ उन लोगों ने बूटन की हत्या की थी। वह जाति से मुसहर थे, लेकिन उन्हें एक बहादुर की मौत मिली।" जीप आगे बढ़ गयी और धूल तथा जून की तपती धूप में धीरे-धीरे बहुआरा एक धब्बे जैसा नज़र आने लगा।

जुलाई 1975
रामासाढ़, संदेश

उस दिन नक्सलवादियों का असली निशाना भूपनाथ पाठक नहीं था। दर-असल वे उसके परिवार के ही एक सदस्य घूरा पांडे की हत्या करना चाहते थे। निम्न जाति की औरतों के प्रति घूरा पांडे का बहुत घटिया व्यवहार था और बैजनाथ राम की बेटी के साथ उसके अनैतिक संबंधों को लेकर गाँव के लोग खासतौर से नाराज़ थे। उस दिन शाम को लगभग आठ बजे वह भूपनाथ पाठक के साथ खेत से लौट रहा था, नक्सलवादियों ने गोली चलायी। घूरा पांडे तो किसी तरह बच गया, लेकिन असावधानी में भूपनाथ पाठक पकड़ा गया और उसकी हत्या कर दी गयी।

इस वारदात के बाद पुलिस ने गाँव पर छापा मारा और 15-वर्षीय घूरा दुसाध के घर से हथगोले, [illegible] अन्य घातक हथियार बरामद किये और उसे

गिरफ़्तार कर लिया। घूरा दुसाध ने यह स्वीकार किया कि मथुराराम, रामानंद दुसाध, लियाकत अली और घूरा राम का इस घटना में हाथ था। बाद में उन्हें हथियार क़ानून के अन्तर्गत गिरफ़्तार किया गया और लगभग दो वर्ष तक जेल में रहने के बाद घूरा दुसाध को ज़मानत मिली।

फिर भी रामासाढ़ में शांति क़ायम नहीं हो सकी। अगस्त 1977 में जब ख़बर मिली कि पुलिस एक बार फिर गाँव पर छापा मारने वाली है, रावन चमार तथा चार अन्य नक्सलवादी गन्ने के खेत में छिपकर पुलिस के आने का इंतज़ार करने लगे। जैसे ही पुलिस-दल पहुँचा, इन लोगों ने अहीर जाति के एक दारोगा श्यामबिहारी सिंह पर हथगोलों से हमला किया, लेकिन ये हथगोले फूट नहीं सके और इसके बाद जो झमेला हुआ, उसमें दो लोग मारे गये। बताया जाता है कि इस मुठभेड़ में रावन चमार भी मारा गया।

रामासाढ़ गाँव के लोगों में असंतोष और अपने कष्ट के प्रति चेतना बढ़ती गयी। जनवरी 1977 में एक बार फिर हमला हुआ, लेकिन इस हमले का शिकार व्यक्ति केवल घायल होकर रह गया। कहा जाता है कि उसने दुसाधों को समान मज़दूरी नहीं दी थी।

मार्च 1975
मुदफ़रपुर, सहार

अत्याचारी केसरीलाल की हत्या हो गयी। बाघी हाई स्कूल से माध्यमिक परीक्षा पास करने के बाद वह गाज़ियापुर इस्टेट के मालिक का प्यादा हो गया था और उसे काफ़ी ज़मीन प्राप्त हुई थी। लोगों का कहना है कि सहार थाना के विभिन्न इलाक़ों में उसके पास अलग-अलग स्थानों पर लगभग तीन सौ एकड़ ज़मीन थी। दलिया गाँव के पास उसकी निजी तीन सौ एकड़ की जोत थी।

35-वर्षीय केसरीलाल मज़दूरों के प्रति अपने निर्दयी व्यवहार के लिए कुख्यात था और उसने कुछ भूमिहीन मज़दूरों को विभिन्न फ़ौजदारी मामलों में सज़ा दिलायी थी। कुछ लोगों का कहना है कि आशा राय और कमला राय के बीच लम्बे समय से चले आ रहे संघर्ष का वह शिकार बना था। उसकी हत्या के वास्तविक कारणों पर रहस्य का पर्दा पड़ा रहा।

होली के दिन केसरीलाल ने अपनी भारी आवाज़ में एक गीत गाना शुरू किया जिसके बोल थे—'तिरबिनिया में राम नहायें, सूरज उदय के बेरिया।' अचानक बमों के फटने की आवाज़ से रात का सन्नाटा टूट गया और थोड़ी शांति होने पर वहाँ केसरीलाल की लाश मिली। उस समय तक किसी ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि मुदफ़रपुर का नक्सलवादियों से कोई दूर-दराज़ का भी संबंध है।

अगस्त 1975
पसउर, पीरो

मुसहरों के प्रभुत्व वाले 450 परिवारों के गाँव पसउर में हालत अच्छी नहीं कही जा सकती थी। संख्या में कम होने के बावजूद गाँव के राजपूत काफ़ी शक्तिशाली और समृद्ध थे, हालाँकि मुसहर लोग यह दावा कर सकते थे कि भोजपुर ज़िले में द्वारिका ही पहले मुसहर मुखिया थे। अगस्त 1975 में जब बग़ल के लिलारी गाँव के रामकृपाल सिंह की हत्या हुई, उस समय किसी ने यह भी नहीं सोचा था कि अपेक्षाकृत शांत गाँव पसउर भी हत्याकांडों का गढ़ बन जायेगा।

रामकृपाल सिंह एक प्रभावशाली वकील होने के साथ-साथ धनी ज़मींदार भी थे। उन्होंने उस ज़मीन पर भी कब्ज़ा कर रखा था जिसे सरकार ने हरिजनों के लिए निर्धारित किया था। इसके अलावा वह नक्सलवाद-विरोधी समिति के सदस्य भी थे। धीरे-धीरे कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ पसउर में होने लगीं। नक्सलवादियों के एक कथित हमदर्द साधु सिंह पर घातक हमला किया गया। हिंसा की दूसरी घटना वर्षों बाद सामने आयी। 10 फ़रवरी, 1978 को नक्सलवादियों के एक गुट ने दफ़ादार जगनारायण सिंह पर गोली चलायी और श्रीनाथ यादव के साथ वह घायल हो गये। इस मामले में कोई पकड़ा नहीं गया।

10 जुलाई, 1975
भोजपुर

ज़िले के पुलिस-अधीक्षक ने 10 जुलाई, 1975 को एक बयान दिया था जिसमें यह बताया गया था कि अलग-अलग थानों के हिसाब से नक्सलवादियों के प्रभुत्व वाले कितने गाँव हैं। यह विवरण इस प्रकार है—सहार-39, संदेश-29, पीरो-23, तरारी-15, जगदीशपुर-6, नवानगर-6, उदवंतनगर-6 और ब्रह्मपुर-5। पुलिस-अधीक्षक ने कहा कि "इस तरह का विवरण केवल तकनीकी दृष्टि से सही है, क्योंकि ज़िले के अस्सी प्रतिशत किसान नक्सलवादी आंदोलन के या तो हमदर्द हैं या सक्रिय कार्यकर्ता हैं।"

20 अगस्त, 1975
इचरी, जगदीशपुर

नक्सलवाद के विषय में पूछे जाने पर ज़मीन के मालिक अहीर लोग ख़ामोश हो गये। इसके बाद उन्होंने गाँव की हरिजन बस्ती की ओर इशारा किया और कहा, "नक्सलवादी वहाँ रहते हैं। वे ज़मीन या बेहतर मज़दूरी नहीं चाहते। वे राजसत्ता चाहते हैं। इचरी की हरिजन औरतें अपने घर की दीवारों में क़ैद नहीं रहतीं और अपरिचितों से शरमाती भी नहीं हैं। उनमें से एक कहती है, 'हाँ, हम

सभी लोग नक्सलवादी हैं बशर्ते नक्सलवादी का मतलब हर उस आदमी से हो जो ज़ुल्म के सामने घुटने न टेके और जमकर मुक़ाबला करे।'"

इचरी के आस-पास के गाँवों—बरनाँव और हादियाबाद में तनाव बढ़ता जा रहा था। इसके फलस्वरूप इचरी में भी नक्सलवाद का उदय दिखायी दिया। 17 अगस्त, 1972 को एक बदमाश राजपूत ज़मींदार रामलोचन सिंह पर नक्सलवादियों के एक ग्रुप ने दिन-दहाड़े उस समय हमला किया जब वह अपने खेतों की सिंचाई कर रहे थे। लेकिन वह बच गये। जगदीशपुर में 1975 में जब ज़बरदस्त हिंसा भड़क उठी तो पुलिस ने 20 अगस्त को तड़के इचरी गाँव को चारों ओर से घेर लिया। थोड़ी देर की मुठभेड़ में पुलिस-दल पर बमों से हमले किये गये, लेकिन कोई बम या हथगोला फूट नहीं सका। पुलिस-अधीक्षक अपने दल के साथ अस्थायी तौर पर पीछे हट गये। इस दौरान दो नक्सलवादियों को भागने में सफलता मिल गयी। दो घंटे बाद जब पुलिस की एक और टुकड़ी मदद के लिए पहुँची तो उन्होंने आठ हरिज़नों को गिरफ़्तार किया जिनमें रामबिशुन चमार भी था। गिरफ़्तारी के दौरान पुलिस ने देखा कि बहुआरा की तरह यहाँ भी हरिजनों के घर भीतर-ही-भीतर सुरंग के ज़रिये एक-दूसरे से जुड़े हुए थे।

29 नवम्बर, 1975
बाबूबाँध, सहार

पुलिस की छावनी आज भी बाबूबाँध में पड़ी हुई है। जैसे ही आप गेहूँ के लहलहाते खेतों के बीच से होते हुए गाँव की ओर बढ़ेंगे, आपको जैतूनी रंग की फ़ौजी पोशाकों में कुछ सैनिक दूर से ही एक मकान की छत पर दिखायी देंगे। सकलदीप चमार के भाई लँगड़े हैं और घिसटते हुए चलते हैं। आपसे पुलिस-अफ़सर इस लँगड़े आदमी की ओर इशारा करते हुए कहेगा, "इसे ग़ौर से देख लीजिये। इसका भाई भूमिगत है। वह भोजपुर का एक ऐसा नेता है जिसकी पुलिस को सबसे ज़्यादा तलाश है। उसे जीवित या मृत लाने पर बहुत बड़ा इनाम रखा गया है। गाँव में एक कांड होने के बाद सकलदीप चमार भाग गया था। हम आज भी उसकी तलाश कर रहे हैं।" पुलिस-अफ़सर का इशारा 29 नवम्बर, 1975 की वारदात की ओर है।

उस दिन गेहूँ के खेत में जब पुलिस के दो सशस्त्र जवानों ने सकलदीप को घेर लिया तो वहाँ लगातार अनुनय-विनय करता रहा कि उसे परेशान न किया जाये। इसी बीच गाँव की ओर से गोलियों की आवाज़ आयी और भगदड़ मच गयी। बाबूबाँध की शांति नष्ट हो चुकी थी। सकलदीप चमार के मकान के आँगन में एक मुठभेड़ शुरू हो गयी थी।

सकलदीप के बारे में यह समझा जाता था कि वह काफ़ी तकलीफ़ में ज़िंदगी

गुज़ार रहा है। उसके भतीजे शीतल की विधवा ने अदालत में जाकर उसके और उसके परिवार के ख़िलाफ़ एक मुक़दमा दायर किया था जिसमें साढ़े चार बीघे से भी अधिक पर दावा किया गया था। इस प्रकार एक सरकारी कर्मचारी राजेश्वर सिंह और एक धूर्त्त व्यक्ति नरेश सिंह के बीच लम्बे समय से चली आ रही दुश्मनी का वह केन्द्र-बिन्दु हो गया था। नरेश सिंह 79 बीघे की जोत वाला एक प्रभावशाली राजपूत ज़मींदार था और उस ज़मीन को लेकर राजेश्वर सिंह से उसका विवाद चल रहा था जो शीतल चमार की विधवा की ज़मीन थी। बदला लेने के इरादे से नरेश ने सकलदीप और उसके परिवार के साथ दोस्ती का नाटक किया और अपने प्रतिद्वंद्वी के ख़िलाफ़ इन लोगों को भड़काने लगा।

सकलदीप आर्मी मेडिकल कोर में नौकरी करता था, जहाँ से भागकर आया था और अपनी दस-बारह बीघे की खेती के बल पर गाँव में रह रहा था। ज़मीन पर उसकी मिल्कियत भी कच्ची थी। राजेश्वर सिंह ने शीतल चमार की विधवा को चकमा देकर इस ज़मीन पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। मुक़दमा जारी था और सकलदीप को लगातार अदालत में जाना पड़ता था।

इन्हीं दिनों सकलदीप नक्सलवादियों के सम्पर्क में आया। धीरे-धीरे उसका मकान नक्सलवादियों के मिलने-जुलने का स्थान बन गया। राजेश्वर सिंह, जो पहले पुलिस में रह चुका था, इन बातों को जान गया और उसने स्थानीय थाने को यह ख़बर दी कि सकलदीप चमार और नरेश सिंह के आस-पास जो लोग दिखायी देते हैं उनका नक्सलवादियों से गहरा संबंध है।

29 नवम्बर को जब वारिस ख़ाँ के नेतृत्व में एक पुलिस-दल रोज़ की तरह गश्त लगा रहा था, बाबूबाँध के पास वह रुक गया। पुलिस को सकलदीप की तलाश थी। काफ़ी दिनों से राजेश्वर सिंह से सकलदीप की संदिग्ध गतिविधियों के बारे में ख़बरें मिलती रही थीं। इसके अलावा सकलदीप सेना से भागकर आया था, इसलिए पुलिस ने सोचा कि उसकी बाक़ायदा जाँच कर लेना भी ठीक रहेगा। जिस समय इन लोगों ने सकलदीप को रोका, वह अपने गेहूँ के खेत की ओर जा रहा था। जब वारिस ख़ाँ ने उसके मामले के बारे में पूछताछ शुरू की तो सकलदीप गुस्से में आ गया। इस पर वारिस ख़ाँ ने दो कांस्टेबलों को आदेश दिया कि वे उसे पकड़कर रखें और ख़ुद उसके मकान की तलाशी लेने चल पड़े।

जैसे ही वारिस ख़ाँ ने घर के अन्दर क़दम रखा, मकान की औरतें चीख-पुकार मचाने लगीं और उन्होंने वारिस ख़ाँ से गिड़गिड़ाते हुए कहा कि अन्दर अभी-अभी एक औरत को बच्चा पैदा हुआ है, इसलिए वे लोग बाहर ही रहें। फिर भी एक कांस्टेबल को शक हो गया और वे लोग अन्दर घुस गये। इसके बाद तो क़यामत आ गयी।

आँगन में गोलियों की बौछार शुरू हो गयी। कुछ अज्ञात लोगों ने पुलिस-दल

पर कुल्हाड़ियों और भालों से हमला किया। पूरे गाँव में आतंक छा गया था। एक अवकाश-प्राप्त पुलिस-कर्मचारी दसाई सिंह को पैर में गोली लगी। राजेश्वर सिंह की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गयी। आँगन में बँधे कुछ जानवर भी घायल हो गये। क्रोध से पागल पुलिस ने सकलदीप के बीमार भाई चन्द्रदीप को—जो चारपाई पर लेटे थे—मार डाला। नक्सलवादियों में डॉक्टर निर्मल और मंगल उर्फ़ राजेन्द्र यादव मारे गये। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) के संचिव सुव्रत (जौहर) दत्त को पुलिस की गोली लगी, लेकिन वे बच निकले। मुसहरों ने गेहूँ के खेतों से होते हुए उन्हें ढोकर दूसरी जगह पहुँचाया। पुलिस की गोली से लगे घावों के कारण बाद में उनकी मृत्यु हो गयी,[1] लेकिन पुलिस को उनकी लाश नहीं मिल सकी।

इस बीच गोलियों की आवाज़ सुनकर सकलदीप को घटनाओं का आभास हो गया। उन्होंने फ़ौरन ही एक कांस्टेबल को धर दबोचा और उसकी राइफ़ल छीनकर नौ-दो-ग्यारह हो गये। उस दिन से ही सकलदीप फ़रार हो गये और नक्सलवादियों की पाँत में शामिल मान लिये गये।

बाबूबाँध की घटना पर पुलिस-क्षेत्रों में काफ़ी जोश देखा गया। डॉक्टर निर्मल को मारने में पुलिस को अचानक सफलता मिल गयी थी और बाबूबाँध की हत्याएँ पुलिस के लिए एकदम अप्रत्याशित थीं। जौहरदत्त और मंगल काफ़ी मशहूर नेताओं में से थे और एक लम्बे अरसे से पुलिस को इनकी तलाश थी। महज़ चार महीने पहले ही बहुआरा की घेराबंदी तोड़कर भागने में सफल 27-वर्षीय डॉ० निर्मल को 29 नवम्बर, 1975 को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।

निर्मलकुमार का जन्म 1 नवम्बर, 1948 को हुआ था। उनके पिता मुकुल सिंह महतो संदेश ब्लाक में बरोरा गाँव के एक छोटे किसान थे—वह जाति से कोइरी थे। एक रेल-कर्मचारी होने के कारण वह निर्मल को पढ़ने के लिए स्कूल भेज सके थे। निर्मल ने 1965 में गड़हनी से प्रथम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। शुरू से ही वह आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत सम्पन्न जीवन बिताते रहे। लेकिन चूँकि वह कोइरी थे, इसलिए भूमिहार और राजपूत जैसी ऊँची जाति के लोग उन्हें हमेशा हीन समझते रहे। स्कूल में ऊँची जाति के कुछ नौजवानों के साथ निर्मल की लड़ाई हो गयी थी। अपने को हीन समझे जाने की यह भावना निर्मल को जीवन-भर सालती रही। एच०डी०जैन कॉलेज, आरा से बी०एस-सी० करने के बाद निर्मल ने पटना साइंस कॉलेज में दाखिला लिया और 1968 में स्नातकोत्तर तक की शिक्षा पूरी की।

1. श्री दत्त की मृत्यु के बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) का नेतृत्व श्री विनोद मिश्र ने संभाल लिया।

उन दिनों मृदुभाषी और शांत स्वभाव के युवक निर्मल ने फ़ैसला किया कि वह डॉक्टर बनकर अपना सारा जीवन जनता की सेवा में अर्पित कर देंगे। पटना में उनका झुकाव साम्यवाद की तरफ़ हुआ। बाद में वह डॉक्टरी के लिए दाख़िले की प्रतियोगिता में सफल हुए और दरभंगा ज़िले के लहेरिया सराय मेडिकल कॉलेज में भर्ती हुए। यहाँ भी ऊँची जाति के युवकों ने उन्हें काफ़ी तंग किया। पढ़ने में चाहे वह कितने ही तेज़ क्यों न हों, पर जाति से वह कोइरी थे। निर्मल ने अरबिन्द बोस और दिलीप गुप्ता जैसे अन्य वामपंथी छात्रों को संगठित करना शुरू किया।

कॉलेज में ऊँची जाति के लोगों का इतना भयंकर दबदबा था कि निर्मल को कई बार इनकी मार झेलनी पड़ी। कॉलेज में ऊँची जाति वालों द्वारा किये जा रहे आतंक के बारे में उन्होंने 50 अन्य छात्रों के साथ बिहार के तत्कालीन मुख्य-मंत्री केदार पांडे के पास एक पत्र भेजा। लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ। वे भोजपुर में नक्सलवाद में वृद्धि और जगदीश महतो के साथ निर्मल के बढ़ते संबंधों से उनकी बेचैनी बढ़ती गयी।

एक दिन कॉलेज के तीन भूमिहार गुंडों—बिरदा सिंह, कैलाश सिंह और बिपिन सिंह ने निर्मल, अरविन्द बोस और दिलीप गुप्ता पर भालों तथा गँड़ासों से हमला कर दिया। इन लोगों ने हमले का जवाब बम से दिया। निर्मल गंभीर रूप से घायल हुए। उन्हें अस्पताल में दाख़िल किया गया और जब पुलिस उप-महानिरीक्षक उन्हें देखने और चिंता व्यक्त करने आये तो निर्मल ने बेहद उदासीनता दिखायी। मामला दर्ज किया गया और 15 दिन तक हिरासत में रहने के बाद निर्मल ज़मानत पर रिहा हुए।

जेल से बाहर आने पर निर्मल एकदम बदल चुके थे। कॉलेज में अब स्वतंत्र रूप से घूमना-फिरना उनके लिए कठिन हो गया था, क्योंकि जहाँ संभव होता भूमिहार लड़के इन पर व्यंग्य किया करते। फिर अचानक बदले की अंतिम कार्रवाई के रूप में निर्मल और उनके दोस्त एक दिन उस होटल के अंदर धड़धड़ाकर घुस गये जहाँ भूमिहार लड़के जुआ खेल रहे थे। इन लोगों ने हथगोलों से हमला किया—इसमें तीन लोग मारे गये और अनेक घायल हो गये। उस रात के बाद से निर्मल दिखायी नहीं दिये। लोगों का कहना है कि निर्मल अकेले नहीं थे—उनके साथ रामेश्वर अहीर थे और संभवतः उन्होंने ही यह सारी योजना बनायी थी।

निर्मल नक्सलवादी हो गये। मेडिकल कॉलेज के इस होनहार छात्र ने समाज के सबसे निचले तबके के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। निर्मल के माँ-बाप ने जब भी उनसे शादी के लिए अनुरोध किया, उन्होंने यही कहा कि "मैं तभी शादी करूँगा जब ऐसी हालत पैदा हो जाये कि ग़रीब-से-ग़रीब घर की सुन्दर और होशियार लड़की बेकार न हो जाये। जब तक ऐसा नहीं होता मैं शादी नहीं करूँगा।" गाँव के लोग उन्हें 'डॉक्टर' कहते थे। बताया जाता है कि जयप्रकाश नारायण जब भोजपुर गये थे तो उन्होंने निर्मल से बातचीत की और हिंसा का रास्ता छोड़ देने के लिए उन्हें समझाया-बुझाया, पर निर्मल ने इंकार कर दिया। 29 नवम्बर को सब-कुछ अचानक ही समाप्त हो गया। लेकिन डॉ० निर्मल के शहीद होने तक सकलदीप ने डॉक्टर के अधूरे काम को पूरा करने का फ़ैसला ले लिया था।

बाबूबाँध के तनाव में कोई कमी नहीं आयी। अधिकांश ज़मीन नौ राजपूत परिवारों के हाथ में थी। पिछड़ी जाति के लोगों में केवल रंदीप भगत (गड़ेरी) और यमुना यादव (अहीर) के पास ही ज़्यादा जोत थी जो क्रमशः 25 और 30 बीघे थी। तनाव में तेज़ी से वृद्धि हुई। नक्सलवादियों के एक हथियारबंद दस्ते ने गाँव पर हमला किया और अनेक राजपूतों को घायल किया। इन्होंने खलिहान में रखे अनाज को जला डाला। ज़मींदारों में आतंक फैल गया और भागकर बेरथ चले गये। केवल दिन के समय वे बाबूबाँध में अपने खेतों का मुआयना करने आ पाते थे।

13 मार्च, 1976 को नक्सलवादियों ने बाबूबाँध के एक राजपूत ज़मींदार ननकू सिंह का अपहरण कर लिया और उसे मार डाला। इस वारदात में जितने लोगों को फँसाया गया उनमें से अधिकांश बेगुनाह थे। इनमें से कइयों की ज़मानत पर रिहाई हुई। लेकिन ज़मींदार लोग अपने को फिर से संगठित करने में लगे थे। 29 नवम्बर, 1975 की घटना के बाद गाँव में पुलिस ने छावनी डाल दी थी, पर इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ा।

ज़मींदारों को उचित समय का इंतज़ार था। 13 जुलाई, 1976 को 70-वर्षीय संदीप भगत की हत्या कर दी गयी। वह हरिजनों के अंदर साहस का एक अटूट स्रोत थे। खेत में काम करते समय उनकी दिन-दहाड़े हत्या की गयी थी। यद्यपि पुलिस गाँव में ही तैनात थी, लेकिन इस हत्या पर किसी तरह की कार्रवाई करने से उसने इंकार किया। इलाक़े के हरिजनों ने इस कांड की सूचना अधिकारियों को दी और शिकायत की कि पुलिस की साँठ-गाँठ से यह हुआ है।

दिसम्बर 1975 से ही किसी विदेशी विजेता सेना की तरह इस गाँव में पुलिस की छावनी पड़ी है। इन लोगों ने एक लाख रुपये से भी अधिक मूल्य के पेड़ काट डाले हैं और इनका जलावन के रूप में इस्तेमाल किया है। उनके मन में जो आता है, गाँव से ले लेते हैं—ताज़ी सब्ज़ियों और मुर्गियों से लेकर नक़द रुपये तक। शिवशंकरी यादव से इन लोगों ने नक़द 100 रुपये लिये। इन्होंने शिवशंकरी यादव की पत्नी को और संदीप और सकलदीप पासवान की बीवी को

कई बार लाठियों से पीटा। इन्होंने बच्चन दुसाध, रघुबीर दुसाध और सकलदीप की पत्नियों को इतना पीटा कि उनकी साड़ियाँ तार-तार हो गयीं। नवम्बर की घटना में उन्होंने रामबचन दुसाध की भैंस को गोली मार दी। बाबूबाँध गाँव की औरतों को एक सबक़ सिखाया गया। चंदीप की विधवा ने श्राद्ध के लिए काफ़ी पैसे ख़र्च करके आटा ख़रीदा था, जिसे पुलिस ने उठाकर फेंक दिया।

पुलिस-अधीक्षक एस० एन० लाल गुप्ता का कहना था कि राजपूतों की कोई ग़लती नहीं थी—वे तो महज़ दहशत पैदा करना चाहते थे, क्योंकि मंदीप भगत स्थानीय नक्सलवादियों को आश्रय दे रहे थे और उनसे दोस्ती कर रहे थे। उन्होंने कहा कि राजपूतों के हथियार ज़ब्त करने का सवाल ही नहीं पैदा होता, क्योंकि समूचा इलाक़ा अशांत है। जो भी हो, इस इलाक़े में मंदीप भगत को लोग अहिंसा के अनुयायी के रूप में जानते थे और भगत भी कहा करते थे कि "अगर गाँव में कोई नक्सलवादी घुसा तो राजपूतों पर हाथ लगाने से पहले उसे मुझको ख़त्म करना होगा।"

इसके बाद से बाबूबाँध में कभी शांति क़ायम नहीं हो सकी। पुलिस की छावनी पड़ी रही। मंदीप भगत की मौत ने हरिजनों को नक्सलवादियों के और क़रीब ला दिया। ज़मींदारों की यातना के शिकार सकलदीप चमार अभी भी फ़रार हैं। पुलिस उनके लँगड़े भाई को अकसर परेशान करती रहती है और किसी भी आगंतुक के आने पर उनकी तरफ़ इशारा करके कहती है, "इस लँगड़े को देखिये। यह इतना भोला नहीं है जितना दिखायी देता है। हम उसके भाई की तलाश में लगे हैं।" इसीलिए मंदीप भगत की मृत्यु पर पुलिस ख़ामोश रही—उसका कहना था कि सकलदीप अकसर रात में अपनी बूढ़ी माँ से मिलने आता है और मंदीप भगत ही उसे शरण देता है।

31 दिसम्बर, 1975
पिंजरोई, संदेश

एकदम सवेरे ही पुलिस ने पूरे दल-बल के साथ पिंजरोई पर धावा बोल दिया। अपने किसी मुख़बिर से प्राप्त समाचार पर पुलिस ने हरिजन बस्ती को चारों तरफ़ से घेर लिया और लोगों को उनकी झोंपड़ियों से घसीट-घसीटकर बाहर निकालने लगी। सभी मर्दों को एक जगह इकट्ठा किया गया और उन्हें पास के बाग़ीचे में ले जाया गया।

जब रामदयाल चमार ने इसका विरोध किया तो उसे गोली मार दी गयी। उसके दो लड़के घबराकर भागने लगे, लेकिन उन्हें पुलिस ने इस तरह पकड़कर खींच लिया जैसे खरगोश को पकड़ा जा रहा हो। इसके बाद झोंपड़ी का दरवाज़ा तोड़कर पुलिस अंदर घुसी और बाक़ी लोगों अर्थात् सुकुमारों और अशक्तों

नामक दो औरतों तथा जवाहर चमार को मौत के घाट उतार दिया। राधिका नामक एक अन्य औरत गंभीर रूप से घायल हो गयी। पुलिस ने इस हत्याकांड को 'मुठभेड़' का नाम दिया और जब वह वहाँ से रवाना हुई तो उसके पास छह लाशें और अनेक गिरफ़्तार लोग थे।

दरअसल पिंजरोई में पूरी तरह नर-संहार किया गया था। अधिकारियों ने 'ऑपरेशन थंडर' नाम से जो अभियान शुरू किया था उसके अंतर्गत हरिजनों का ख़ून सचमुच बहुत सस्ता हो गया था। अपने चाचा रामायण चमार की ही तरह, जो 12 दिसम्बर, 1972 को जगदीश महतो के साथ शहीद होने वाले पहले व्यक्ति थे, जवाहर की जीवन-लीला भी समाप्त हो गयी। बिहिआ में जब एक उग्र भीड़ ने उसके चाचा और जगदीश महतो का पीछा किया था उस समय जवाहर बच निकला था।

कुशाग्र बुद्धि वाले अध्ययनशील जवाहर ने आयर हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा और एच० डी० जैन कॉलेज, आरा से बी० एस-सी० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उसके पिता ने सोचा था कि बड़ा होकर जवाहर परिवार की ग़रीबी को दूर कर सकेगा, लेकिन यह शायद नहीं होना था। जब हरिसिंह ने उसकी चाची का शील भंग करने की कोशिश की तो आदर्शवादी युवक जवाहर अपने को रोक नहीं सका। उसने पढ़ाई छोड़ दी और जगदीश महतो के गुट में शामिल हो गया। बिहिआ से बच जाने के बाद नाथूराम के साथ वह गिरफ़्तार किया गया, लेकिन बाद में रिहा कर दिया गया। गोलियों से छलनी हुई उसकी लाश पिंजरोई में पड़ी थी और इस प्रकार प्रतिरोध और बलिदान की एक कहानी समाप्त हो चुकी थी।

1 जनवरी, 1976
अगिआँव, पीरो

पुलिस बालेश्वर यादव की जीप को रोककर उसमें बैठ गयी और जीप आगे बढ़ चली। अगिआँव में रुकने पर नक्सलवादियों ने बमों से इस पर हमला कर दिया। हालाँकि पुलिस बच निकली, लेकिन बालेश्वर गंभीर रूप से घायल हो गया।

31 मार्च, 1976
हनुमान-छपरा, पीरो

बच्चे के मुँह से अपने पिता के दर्द-भरे गीत के बोल फूट पड़ते हैं :

एक दिन मरता सब कोई, अमर नहीं है कोई
इसी से मौत की कीमत है जो अमर हो जाता

यही सोच के साथी गणेशी, रामायण, बूटन बलिदान हुए
मास्टर, जौहर, साधुजी, रतन वो निर्मल महान हुए।
हज़ारों शहीदों को लाल सलाम, जो जनता सेवा में जान दिये
उनकी मौत पर्वत-सी भारी, जो दुश्मन के दिल थर्रा दिये।

गायक नक्सलवादी नारायण कोइरी अपने इर्द-गिर्द के लोगों को गीत और साहस की एक बहुत बड़ी भेंट विरासत में दे गये हैं। पीरो और संदेश गाँवों में जनता नारायण को एक कविजी के रूप में याद करती है, जिनके पास ग़ज़ब का गला था और जिनकी आवाज़ में जादू था।

नारायण महतो के पूर्वज उदवंतनगर ब्लाक के कसाप गाँव के रहने वाले थे, लेकिन उनके पिता और चाचा उस गाँव को छोड़कर अंततः सिमराँव में बस गये थे। उनके पिता जगत और उनके दो भाइयों—जहान और दूदुल के लिए जीवन बहुत कठिन था। उनके पिता की सोलह बीघे सिंचित भूमि विवाद की जड़ बन गयी थी और आगे चलकर इसी ने पूरे परिवार को बरबादी के कगार पर ला खड़ा किया। यह ज़मीन उनकी पुश्तैनी ज़मीन थी, लेकिन इसे उनसे छीन लिया गया था और इस प्रकार जगत महतो पूरी तरह भूमिहीन किसान बन गये।

उनके बूढ़े चाचा जयकिशन महतो बताते हैं कि किस तरह एक राजपूत बाबू ठाकुर दयालसिंह ने तरह-तरह की तिकड़मों और ज़ोर-ज़बरदस्ती के ज़रिये इस ज़मीन को हथिया लिया। ज़मीन पाने के लिए काफ़ी समय तक चले मुक़दमे के दौरान दूदुल महतो कंगाल हो गये। बाबू ठाकुरदयाल सिंह के तीनों लड़के अपनी ज़िद पर अड़े रहे। इन लड़कों—राजेश्वर प्रसाद सिंह, व्यास मुनि सिंह और विशिष्ट मुनि सिंह ने तय कर लिया था कि किसी भी हालत में वे इस ज़मीन को अपने हाथ से नहीं जाने देंगे। जब भी ज़मीन पाने के लिए महतो लोग चिरौरी-विनती करते, तीनों राजपूत भाई उन पर टूट पड़ते। चूँकि वे ताक़तवर थे, इसलिए विरोध करने की हिम्मत किसी को नहीं होती थी। केवल जयकिशन ने ही मामले को अदालत में ले जाने की हिम्मत की और इसके जो दुष्परिणाम हुए, वे बड़े भयंकर थे। बाबू ठाकुरदयाल सिंह के एक दामाद ने सिमराँव से काफ़ी दूर फैज़ाबाद में क़त्ल का एक झूठा मामला दर्ज किया और इसमें जयकिशन तथा उसके भांजे नारायण को फँसा दिया। शिनाख़्त परेड में नारायण पहचान लिये गये और उन्हें जेल भेज दिया गया। बाद में वह ज़मानत पर रिहा हुए।

गाँव वापस लौटते हुए नारायण को रास्ते में एक फ़कीर मिला जो गाना गा रहा था और साथ में नगाड़ा बजा रहा था। बचपन से ही नारायण की गाने-बजाने में काफ़ी रुचि थी, इसलिए उन्होंने उस फ़कीर को अपने साथ ले लिया और घर तक लाये। नारायण केवल सातवें दर्जे तक पढ़ाई कर सके थे, लेकिन

धीरे-धीरे उन्होंने तुकबंदी शुरू कर दी और उनके गायन के कारण लोग उन्हें कवि के नाम से जानने लगे। अकसर उनके गीत सुनने के लिए लोग उनके आस-पास बैठ जाते। अब वह नारायण कवि के नाम से मशहूर हो गये थे।

नारायण एक ग़रीब परिवार के थे, इसलिए मुसीबतों से सामना होना लाज़िमी था। कुछ समय तक वह बैलों और बैलगाड़ियों पर गेहूँ के बोझे ढोते रहे। अक़सर बाबू ठाकुरदयाल के आदमी इन्हें गंभीर रूप से पीट दिया करते। एक रात जब वह बड़हरा गाँव की तरफ़ जा रहे थे कुछ लोगों ने उनकी हत्या का असफल प्रयास किया। एक बार और उनके दुश्मनों के इशारे पर गणेश सिंह और बृजबिहारी सिंह ने उन्हें बहुत पीटा। नारायण कभी अदालत में नहीं गये, लेकिन सिमराँव में रहना अब उनके लिए बहुत असह्य हो गया था। दुखी मन से उन्होंने अपना मकान छोड़ दिया और गाँव की मुसहर टोली की बग़ल में एक छोटी-सी कुटिया बनाकर वहीं रहने लगे।

लेकिन बात यहीं ख़त्म नहीं होती। उनके चार बेटों में से दो की अत्यंत दुखद परिस्थितियों में मृत्यु हो गयी। हदियाबाद के ज़मींदारों ने उनके बेटे सुरेश महतो को यह सोचकर जला दिया कि शायद वह भी अपने बाप की तरह नक्सलवादी हो जाये। एक दूसरे लड़के को बिच्छू ने काट लिया था जिससे वह मर गया। गीता और रामायण का पाठ करने वाले नारायण कवि नक्सलवादी बन गये थे। 1972 समाप्त होते-होते वह भूमिगत हो गये।

पहली बार उनके नाम का ज़िक्र तब आया जब पुलिस ने 2 जुलाई, 1975 को बहुआरा में की गयी घेराबंदी तोड़ने में डॉ० निर्मल के साथी के रूप में उनकी पहचान की। इसके बाद 17 अगस्त, 1975 को बरूही गाँव की घेराबंदी तोड़कर भागने में उन्हें सफलता मिली—यहीं नारायण पासी की हत्या हुई थी।

सहार के एकवारी गाँव के पास हनुमान-छपरा की ओर 31 मार्च, 1976 को गुरपा से आते हुए नारायण कवि की असामयिक मृत्यु हुई। पुलिस ने गाँव को घेर रखा था और इस घेराव में वह फँस गये। आरा में जब पुलिस-अधीक्षक के निवास-स्थान पर उनकी लाश लायी गयी तो हज़ारों लोग देखने के लिए टूट पड़े और गंगी घाट पर अंतिम संस्कार के समय तमाम आँखें नम हो आयीं।

समाचारपत्रों द्वारा 'सर्वोच्च नक्सलवादी नेता' और 'नक्सलवादी अपराध-विज्ञान के सिद्धांतकार' के रूप में वर्णित नारायण कवि की कई सालों में तलाश थी और उन पर पाँच हज़ार रुपये का इनाम घोषित था। इस कवि का गीत समाप्त हो गया, लेकिन उसकी गूँज आज भी सुनायी देती है। बच्चे के मुँह से अपने पिता के दर्द-भरे गीत के बोल फूट पड़ते हैं—

एक दिन मरता सब कोई, बचता नहीं है कोई
इसी से मौत की कीमत है, जो जनता की सेवा में होई।

17 अप्रैल, 1976
सहार, सहार

आरा सब-डिवीज़न में सहार ब्लाक के डॉक्टर और उनकी पत्नी की गोली मारकर हत्या कर दी गयी। उनके पुत्र को भागने में सफलता मिली। हत्यारे डॉक्टर की दुनाली बंदूक लेकर चम्पत हो गये। पुलिस का कहना था कि डॉ० लक्ष्मीचंद की हत्या बदले की एक कार्रवाई थी। कुछ दिनों पूर्व वह एक घायल नक्सलवादी का इलाज करने के लिए राज़ी नहीं हुए थे। कुछ लोगों का कहना था कि इस डॉक्टर का सम्बन्ध 13 सितम्बर, 1974 को सहार थाने में गोपाल यादव की मौत से है।

8 मई, 1976
सिकरहट्टा, पीरो

ग्राम रक्षा-दल के रूप में काम कर रहे ग्रामीणों के एक दल पर नक्सलवादियों ने बम से हमला किया जिसके फलस्वरूप दो व्यक्ति मारे गये और तीन घायल हुए। 1970 से ही सिकरहट्टा अशांत हो चुका था और यह आक्रमण गाँव में लगातार हो रही घटनाओं की एक कड़ी था। हालाँकि गाँव के एकमात्र ऊँची जाति वाले भूमिहारों के पास 2500 बीघा ज़मीन है जो 34 परिवारों में बँटी है, लेकिन संख्या की दृष्टि से पिछड़ी और अनुसूचित जातियों के लोग ही ज़्यादा हैं। अहीरों के 37 परिवारों को, जिनके पास कुल 725 बीघे खेत हैं, मुसलमानों और कुछ कोइरियों को छोड़ दें तो शेष सभी भूमिहीन किसान हैं।

1970 में खेतिहर मज़दूरों की 18 दिन लम्बी हड़ताल ने गाँव को पूरी तरह गतिहीन कर दिया था। सारा काम ठप्प पड़ गया था। आख़िरकार बीच-बचाव करने के लिए एक उच्च श्रम-अधिकारी आया और मज़दूरी की दर दो रुपये से बढ़ाकर चार रुपये करने पर सहमति हो गयी, पर असंतोष अन्दर-ही-अन्दर उबाल खाता रहा। मज़दूरों की कठिया की माँग को—जो ज़्यादा ज़रूरी माँग थी—नहीं माना गया। इस हड़ताल ने सिकरहट्टा को दो परस्पर-विरोधी खेमों में बाँट दिया। भूमिहारों ने गाँव के मुखिया काशीनाथ साव और एक धोबी विश्वनाथ पर शक किया कि यही लोग पिछड़ी जाति वालों को भड़का रहे हैं और इन्हें अपना सबसे बड़ा दुश्मन मान लिया। फलस्वरूप इन लोगों ने 80-85 बीघे की जोत वाले 35-वर्षीय ज़मींदार ब्रजबिहारी सिंह की हत्या में काशीनाथ साव, चंद्रिका महतो, विश्वनाथ चौधरी और बुद्ध यादव को फँसा दिया। पुलिस ने हत्या का दोष नक्सलवादियों के सिर मढ़ दिया, हालाँकि ख़ुद ब्रजबिहारी सिंह के परिवार के लोग कहते थे कि यह ज़मीन के मामले में उन्हीं की बिरादरी के जनार्दन सिंह और रामानंद सिंह के साथ ब्रजबिहारी सिंह के मुक़दमे का परिणाम था।

नवम्बर 1971 में कुछ हथियारबंद लोगों के एक गुट ने दिन में लगभग बारह बजे ज़बरदस्ती स्कूल में घुसकर अर्थशास्त्र के एक अध्यापक रामलखन सिंह और एक साइंस-टीचर कृष्णानंद राय की हत्या कर दी। गनेश साव नामक चपरासी घायल हुआ। इस वारदात में किसी सम्पत्ति की चोरी नहीं हुई और भूमिहारों का कहना था कि इन दोनों अध्यापकों का गाँव की राजनीति से कुछ भी लेना-देना नहीं था।

इस घटना के बाद काफ़ी बड़ी तादाद में पुलिस पहुँच गयी और फिर सिकरहट्टा के हरिजनों को कभी शांति नहीं मिली। पुलिस वाले इनके मकानों में घुस जाते और इनके बर्तन, ज़ेवर, अनाज आदि ज़ब्त कर लेते। लगातार चल रही इस लूट से क्षुब्ध होकर मुसहर लोग रात के अँधेरे में गाँव छोड़कर भाग गये। संदिग्ध लोगों की एक सूची तैयार हुई। जवाहर दुसाध, जगदीश चमार, रामाधार चमार, नैन मियाँ, गनेश मास्टर, निहटीराम रजवार, छबीला राय दुसाध, शिवनाथ राम दुसाध को पकड़ लिया गया और इन्हें दो महीने तक जेल की हवा खानी पड़ी।

जुलाई 1974 में बहुत बड़ी मात्रा में स्कूल के फ़र्नीचर को आग लगा दी गयी, लेकिन पूछताछ के दौरान कुछ ख़ास पता नहीं चल सका। 10 दिन बाद ग्राम पंचायत के मुखिया बुद्धू यादव एक आम के पेड़ से लटके पाये गये। बुद्धू यादव के पास 7-8 बीघे ज़मीन थी और 1970-71 में मज़दूरी के सवाल को लेकर जो आंदोलन हुए थे, उसमें इनकी प्रमुख भूमिका थी जिससे हरिजनों में वे बेहद लोकप्रिय हो गये थे। उनकी मौत बड़ी रहस्यमय परिस्थितियों में हुई थी। भूमिहारों ने और पुलिस ने दावा किया कि यह नक्सलवादियों की कार्रवाई थी, जबकि गाँव के ग़रीब किसानों ने बताया कि गाँव में व्याप्त हिंसा को समाप्त करने के लिए बुद्धू यादव आमरण अनशन पर बैठने की योजना बना रहे थे। इन स्थितियों से निराश होकर उन्होंने आत्महत्या कर ली।

निरंतर बढ़ती हिंसा को देखते हुए सिकरहट्टा के भूमिहारों ने अपने को एक प्रतिरोध ग्रुप के रूप में संगठित करने का निर्णय लिया। 8 मई, 1976 को भूमिहारों का एक ग्रुप गश्त लगाते हुए खलिहान से गाँव की ओर जा रहा था। रात के दस बजे थे। अचानक एक ज़बरदस्त धमाका हुआ। इस हमले में रामवृक्षसिंह और मिडिल स्कूल के एक अध्यापक सकलदीप सिंह घटना-स्थल पर ही मारे गये जबकि राजेन्द्र सिंह और बालेश्वर सिंह घायल हुए। संदेह के आधार पर 18 लोगों को गिरफ़्तार किया गया जिन्हें एक महीने तक जेल में रहना पड़ा।

भूमिहारों और पिछड़ी जाति के लोगों के बीच जारी इस युद्ध के तत्काल ख़त्म होने के कोई आसार नहीं दिखायी दे रहे थे। जुलाई में काशीनाथ साव और पिछड़ी जातियों के कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं पर उस समय बमों से हमला

किया गया जब वे अपने आँगन में आराम कर रहे थे। उसके भांजे विजेन्द्र साव और यदुरी चमार को चोटें आयीं। ललन सिंह, रघुनंदन सिंह और मघेश्वर सिंह के नाम रिपोर्ट दर्ज करायी गयी, लेकिन लल्लन सिंह को छोड़कर शेष सभी फ़रार हो गये। लेकिन युद्ध जारी रहा। आये दिन जदुनी राम, नैन मियाँ, जवाहर दुसाध, गनेश मास्टर, रामआसरे मुसहर, निहटी रजवार, चन्द्रिका महतो, छबीला दुसाध, शिवनाथ दुसाध आदि को गिरफ़्तार कर लिया जाता। वे जेल से थकी-हारी अवस्था में अपने-अपने परिवार के बीच पहुँचते जो पहले ही आर्थिक और सामाजिक दबाव के कारण चरमरा चुका होता था।

मई 1976
भोजपुर

पुलिस ने 'आपरेशन थंडर' अभियान शुरू किया और प्रभु हरिजन को गिरफ़्तार कर लिया। प्रभु ने आरा बिजली बोर्ड की नौकरी छोड़ दी थी और एक महत्वपूर्ण नक्सलवादी नेता बन गये थे। पुलिस ने स्वर्गीय नारायण कवि के एक घनिष्ठ मित्र सेमराँव के रामेश्वर दुसाध को भी गिरफ़्तार किया।

अक्तूबर 1976
सुरनी, उदवंतनगर

"जीप पर मैंने गोली चलायी है, आप इन लोगों को क्यों गिरफ़्तार कर रहे हैं?" जगजीवन राम ने पुलिस-अफ़सर से कहा। इस क्षेत्र के एक योग्यतम राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में उसके जीवन के अंतिम दिन अब क़रीब आ रहे थे। कुछ ही मिनट पहले पुलिस की एक जीप पर चारों तरफ़ से गोलियाँ चली थीं और पुलिस दस्ते हमलावरों की तलाश में सारे इलाक़े को छान मार रहे थे। वे बेगुनाह किसानों को गिरफ़्तार कर रहे थे और उन्हें डरा-धमका रहे थे। जगजीवन राम को पुलिस ने काफ़ी पीटा और तरह-तरह की यातना दी। उसकी उँगलियों में कीलें चुसो दी गयीं और बाद में उसे भागलपुर सेंट्रल जेल भेज दिया गया। कुछ दिनों बाद अन्य संदिग्ध व्यक्तियों के साथ जेल से भागने की कोशिश में वह मारा गया।

उसकी गिरफ़्तारी के बाद सुरनी के मुसहरों, दुसाधों और चमारों का ख़ून खौल उठा, लेकिन किसी तरह के प्रतिरोध की ख़बर नहीं मिली। सोनाटोला के मुरली चमार की गिरफ़्तारी और पूछताछ से पता चला कि 1973 से ही नक्सलवादियों का सुरनी आना जारी है। मुरली चमार की भी बाद में हत्या कर दी गयी।

जब कसाप गाँव के काति[illegible] राय को सुरनी के चमारों ने मार डाला तो इस बात के स्पष्ट संकेत मिलने [illegible] गाँव अब अधिक समय तक शांत नहीं रह

सकता। कालिका राय के अंदर जातिगत उद्दंडता तो थी ही, वह औरतों की तलाश में रातों में चमार टोली का भी चक्कर लगाता था। यह जानकारी पुलिस और हरिजनों दोनों से प्राप्त हुई थी। जगनारायण चमार, जिसे उदवंतनगर में भारतीय दंड-संहिता की धारा 320 के अंतर्गत गिरफ़्तार किया गया था, अभी भी भागलपुर सेंट्रल जेल में पड़ा हुआ है।

इसके बाद से सुरनी में एक जागृति आ गयी। वैसे भी नक्सलवादियों द्वारा की गयी हत्याओं से पहले ही यह स्पष्ट हो चुका था कि यहाँ क्या होने जा रहा है। काफ़ी पहले जुलाई 1972 में सुरनी के बुद्धू हज्जाम की हत्या की गयी थी। उसके भाई सद्धू का कहना था कि उसे रामपति चौधरी के लठैतों ने बड़ी बर्बरता से पीट-पीटकर मार डाला था। बाद में उसी वर्ष नवम्बर में उन्होंने राजू तेली को मार डाला और उसके सामान को लूट लिया। बदले की कार्रवाई के रूप में रामपति चौधरी की हत्या की गयी। शरीर से बेहद शक्तिशाली इस पहलवान की उस समय हत्या हुई जब वह तड़के गाँव से बाहर जा रहा था। इस मामले में जिन हरिजनों को फँसाया गया उनमें महँगू चमार, गोली चमार, दीनानाथ अहीर, शिवप्रसाद चमार और नरेश पांडे शामिल थे। अभी भी मुक़दमा चल रहा है।

10 अक्तूबर, 1976
एकवारी, सहार

एकवारी के स्कूल के पास तैनात पुलिस-छावनी को एक ख़बर मिली कि नक्सलवादियों का एक दस्ता मुनिलाल महतो के मकान में ठहरा हुआ है। शाम होते ही चालीस से पचास सशस्त्र पुलिस का एक दल बहुत धीरे-धीरे गाँव की हरिजन बस्ती की ओर बढ़ने लगा। नक्सलवादियों को पुलिस के घेराव का शक हो गया और संभावित ख़तरे को देखते हुए वे मकान से बाहर निकल आये और 'नक्सलबाड़ी ज़िन्दाबाद' का नारा लगाते हुए अँधेरे में ग़ायब हो गये। गाँव के लोगों ने देखा कि वे हाथों में राइफ़ल लिये हुए गाँव के बीच से चले जा रहे हैं।

लेकिन इस बार स्थानीय पुलिस की मदद के लिए और भी दस्ते पहुँचे और मुनिलाल के मकान को निशाना बनाकर बंदूकें तान दी गयीं। दोनों तरफ़ से गोली चलने लगी और पुलिस की एक गोली फ़ौजी जैतूनी रंग की पोशाक से लैस उस लड़की को आकर लगी जो कुछ ही मिनट पहले तक गोलियाँ चला रही थी और अपने साथियों के भागने में मदद कर रही थी। चार फ़ीट कुछ इंच लंबी और छोटे बालों वाली इस लड़की को अत्यंत कुशल छापामार के रूप में ख्याति प्राप्त थी। पुलिस के ख़ुफ़िया सूत्रों का कहना था कि 11 अगस्त, 1976 को गुरपा में ज़मींदारों पर हुए हमले का नेतृत्व इस लड़की ने ही किया था। 1975 में जब से वह भोजपुर आयी थी, पुलिस को इसकी निरंतर तलाश बनी हुई थी। गाँव के

एक बूढ़े मुखिया का कहना था कि वह झांसी की रानी से भी ज्यादा बहादुर लड़की थी। सहार के आसपास के सभी गाँवों में लोग इसे कामरेड शीला चटर्जी के नाम से जानते थे और नक्सलवादियों के बीच यह लालसेना की महिला-ब्रिगेड की उप-कमांडर थी।

पुलिस ने गोली चलाना जारी रखा और मुनिलाल के मकान को पूरी तरह घेर लिया। रात-भर घेरा पड़ा रहा। लोग अपने मकानों के अंदर से तनाव और दहशत के बीच इस मोर्चेबंदी को देख रहे थे। जब सुबह हो गयी और मुनिलाल के मकान के आधे खुले दरवाज़ों के अंदर से किसी तरह की हरकत का संकेत नहीं मिला तो सब-इंसपेक्टर रामाधार पांडे दरवाज़े की तरफ़ बढ़े। अचानक बैलों के पीछे से निकल कर एक व्यक्ति सामने आया। सब-इंसपेक्टर रामसरीकल सिंह मकान के अंदर घुसने ही वाले थे कि वह व्यक्ति ठीक सामने आ गया। चारों तरफ़ तैनात पुलिस के जवानों ने बंदूकें तान लीं और उनकी उँगलियाँ बंदूक के घोड़े पर कस गयीं। पुलिस-अधीक्षक एस० एन० लालगुप्ता सामने आया और उस आदमी से पूछा कि वह कौन है? गाँव के लोग भी साँस रोककर सब-कुछ चुप-चाप देख रहे थे। पुलिस-अधीक्षक और मुनिलाल को बातचीत करते देखा गया। मुनिलाल ने नक्सलवादियों को शरण दी थी। वह एक भूमिहीन किसान था और एकवारी में ही रहता था। 35-वर्षीय इस व्यक्ति का अपना परिवार भी था और पिछले तीन दिन से इसके मकान में नक्सलवादी ठहरे हुए थे।

अचानक एस० एन० लालगुप्ता ने मुनिलाल की तरफ़ पलट कर अपने रिवाल्वर से एक के बाद एक गोलियाँ चला दीं। लोग इस पूरी वारदात को देख रहे थे। इस बीच कुछ संदिग्ध लोगों को गिरफ़्तार कर लिया गया जिनमें सागर महतो, सुमारा महतो, बैजनाथ महतो तथा अन्य लोग भी थे। जिस समय यह सब हो रहा था पुलिस के जवान मकान के अंदर पहुँच चुके थे और तलाशी ले रहे थे। मकान के अंदर से लगभग तीस हज़ार रुपये मूल्य के कारतूस, तलवार जैसे पारंपरिक हथियार, विस्फोटक पदार्थ आदि बरामद हुए।

दिन का प्रकाश फैला हुआ था जिसमें इस नर-संहार को साफ़-साफ़ देखा जा सकता था। इस बीच पुलिस दो लाशें लेकर आ गयी थी। इनमें एक शीला चटर्जी की भी लाश थी। मकान के अंदर एक कोने में मुनिलाल की कमज़ोर पत्नी हतप्रभ बैठी हुई थी। उसी रात उसने एक बच्चे को जन्म दिया था। पुलिस-अधीक्षक गुप्ता ने कुछ घंटे बाद संवाददाताओं के सामने इस मुठभेड़ का विवरण देते हुए बताया कि "मुनिलाल महतो ने तलवार से मेरे ऊपर हमला किया और अपनी जान बचाने के लिए मुझे गोली चलानी पड़ी।"

नवम्बर, 1976
केसठ, नवानगर

एक पुलिस-चौकी पर बमों से हमला किया गया।

31 दिसम्बर, 1976
भदवर, ब्रह्मपुर

अक्तूबर 1976 में नक्सलवादियों ने एक ज़मींदार की उस समय हत्या कर दी जब वह अपना खेत जोत रहा था। इसके बाद ऊँची जाति के ज़मींदारों ने उन हरिजनों को आतंकित करना शुरू कर दिया जिनके बारे में उन्हें हत्या का शक था। ज़मींदार लोग इन हरिजनों का अनाज लूट लेते थे, उनके मकानों में आग लगा देते थे और उनके मवेशी चुरा लेते थे। इन घटनाओं से और भी ज्यादा हरिजन नक्सलवादियों के साथ चले गये। क़ानून और व्यवस्था को फिर से क़ायम करने के लिए पुलिस बुलायी गयी, जिसने गाँव के स्कूल में अपनी छावनी डाल दी और भदवर के ऊँची जाति के एक बहुत बड़े ज़मींदार का संरक्षण उसे प्राप्त हो गया।

31 दिसम्बर, 1976 को बिहार मिलिटरी पुलिस (बी० एम० पी०) की छावनी पर हमला हुआ जिसमें एक कांस्टेबल मारा गया तथा अन्य अनेक लोग घायल हुए। इस गड़बड़ी में कोई भी पकड़ा नहीं जा सका। लेकिन कहा जाता है कि ज़मींदारों के इशारे पर पुलिस ने एक हरिजन को मार डाला। भदवर में तनाव बना रहा। 1977 में एक राजपूत ज़मींदार सत्यनारायण सिंह की हत्या की गयी। अक्तूबर 1978 में नक्सलवादियों ने बद्री सिंह का सफ़ाया कर दिया। गाँव में अशांति बनी रही।

11 मार्च, 1977
गुरपा, सहार

11 मार्च को गुरपा में जो कुछ हुआ वह लगभग चार वर्ष पूर्व चवरी में हुए नरसंहार से किसी भी मामले में कम नहीं था। लगभग सात माह पूर्व 11 अगस्त, 1976 को अज्ञात लोगों के एक दल ने रात में गाँव के अंदर प्रवेश किया और सक्रिय हो गया। सात बजे के आसपास का समय था और इससे पहले कि भूमिहार लोग जवाबी हमला कर सकें, वे गोपी पांडे, अवधबिहारी पांडे, जगन्नाथ पांडे और जगदीश पांडे को गोली मार कर भाग गये। इन चारों लोगों की मृत्यु हो गयी। इसे गाँव के भूमिहारों और अहीरों के बीच काफ़ी समय से चले आ रहे संघर्ष का नतीजा मान कर पुलिस को बुलाया गया और पुलिस ने धरम पांडे के घर पर अपनी छावनी डाल दी।

11 मार्च को पुलिस गुरपा से रवाना हुई। यह 1977 के चुनाव के आस-पास का समय था। उसी शाम भूमिहारों की एक भीड़ ने, जो बंदूकों से लैस थी, गाँव की हरिजन बस्ती को मिट्टी का तेल छिड़क कर जला डाला और तमाम बेगुनाह लोगों की हत्या की। इस वारदात में तीन बूढ़े व्यक्ति—हीरामन कुम्हार, काली टाटो और दीपन यादव जो भागने में असमर्थ थे, 45-वर्षीया तिजिया देवी तथा एक 24-वर्षीया गर्भवती महिला फूलकुमारी को जला कर मार डाला गया। गुरपा का नरसंहार सहार में भूमिहारों द्वारा बदले की भावना से की गयी निरंकुश कार्रवाई था, ताकि अड़ियल हरिजनों को सबक़ सिखाया जा सके। इस हत्याकांड के बाद गिरफ़्तार लोगों में गुरपा का अत्यंत प्रभावशाली ज़मींदार धरम पांडे भी था। धरम सिंह को अपने किये का तनिक भी अफ़सोस नहीं था—उसने जेल में क़सम खायी कि "वापस जाकर मैं गुरपा की ज़िंदगी में हरिजन शब्द का नाम-निशान भी नहीं रहने दूँगा।"

अप्रैल 1977
सहार, भोजपुर

छापामारों की बढ़ती हुई ताक़त ने डाकुओं और बदमाशों की गतिविधियों पर भी रोक लगायी। इस इलाक़े का एक बदनाम व्यक्ति गनेशी मुसहर अकसर राहगीरों को लूट लेता था। पहले उससे सुधरने की अपील की गयी, लेकिन जब उसने सुधरने से इनकार कर दिया तो उसे मार डाला गया। एक कुख्यात डकैत रामनरेश बारी की भी हत्या की गयी। अप्रैल 1977 में 25-वर्षीय सरयू लोहार की हत्या हुई—यह इलाक़े का एक लम्पट व्यक्ति था और इससे सभी लोग नफ़रत करते थे। ये लोग पहले नक्सलवादियों के समर्थक थे, लेकिन जब इन लोगों ने अपने निजी स्वार्थ के लिए लूटपाट शुरू कर दी तो इनकी हत्या कर दी गयी।

27 मई, 1977
कोलोडेहरी, सहार

सूरज यादव की हत्या किसने की? क्या नक्सलवादियों ने? अहीर जाति का सूरज कोलोडेहरी से तीन मील दूर स्थित दुल्लमचक गाँव का रहने वाला था। वह एक विनम्र ग़रीब किसान था और 'ग़रीब पार्टी' का हमदर्द था। नक्सलवाद का प्रभाव बढ़ने पर पुलिस ने संदेह के आधार पर सूरज यादव को गिरफ़्तार कर लिया और तरह-तरह की यातनाएँ दीं। उसका मनोबल टूट गया और सूरज के बयान के आधार पर पुलिस ने बहुआरा में छापा मारा। इसके बाद सूरज ने नक्सलवादियों के साथ अपने संबंध तोड़ लिये और वह भयाक्रांत रहने लगा। फिर वह गाँव से बाहर कभी नहीं निकला।

इसके बाद पुलिस-अधीक्षक एस० एन० दुबे ने उसे चौकीदार की नौकरी दे दी और किसानों को अकसर वह हाथ में एक डंडा लिये अकड़ कर चलता हुआ दिखायी देता। 27 मई, 1977 को सूरज अहीर को कोलोडेहरी में शादी में भाग लेना था। समारोह अभी चल ही रहा था कि एक आदमी ने सूरज को बाहर बुलाया। जैसे ही वह बाहर आया, कुछ लोग उस पर टूट पड़े और वह भय से काँपने लगा। उन लोगों ने सूरज से पूछा, "बहुआरा तुम्हें याद है?" इससे पहले कि वह कुछ जवाब दे, उन लोगों ने गोली चला दी।

कोलोडेहरी उस तरह के गाँवों में हो गया था जिसमें हर कांस्टेबल भयाक्रांत रहता था। यहाँ ब्राह्मणों और राजपूतों के 24 परिवार थे, लेकिन पिछड़ी जातियों के लोगों की आबादी काफ़ी थी। काफ़ी पहले 1975 में जनकपुरी गाँव के एक बासुदेव सिंह अपने अंगरक्षक जंगबहादुर सिंह के साथ यहाँ एक दावत में आये हुए थे। खानपान ख़त्म होने के बाद वे दोनों वापस लौट रहे थे कि अहार के निकट नक्सलवादियों ने उन पर हमला कर दिया। इस लड़ाई में जंगबहादुर मारा गया और बासुदेव सिंह की राइफ़ल तो छिन गयी, पर वह किसी तरह बच निकले।

फिर भी कुँवरसिंह का 55-वर्षीय पुत्र सूरजसिंह किसी तरह ज़िंदा नहीं बच सका। निचली जातियों के लोगों का कहना है कि सभी स्थानीय डकैतियों में उसका हाथ था। गया में सूरज सिंह की 15 एकड़ की जोत थी और उसके चाचा के गाँव कोलोडेहरी में जो दो एकड़ ज़मीन थी, उसकी वह देखभाल करता था। उसने भदुका तेली की पत्नी को छुपे तौर पर अपनी रखैल बनाकर रखा था, जबकि उसके भाई ने दोसा मियाँ की बीवी पर हाथ साफ़ कर दिया था। एक दूसरे भाई ने महेपरा कहार की माँ को अपनी रखैल बना लिया था। यह परिवार भूमिहारों की भ्रष्ट परंपरा का शिकार था। चवरी गोलीकांड जाँच आयोग में उसने भूमिहारों की तरफ़दारी की थी। सूरज सिंह के नाम पर अपराधों की जो सूची तैयार हुई थी, उसने उसे नक्सलवादियों का पक्का निशाना बना दिया था। लोगों को इस बात का संदेह था कि बलदेव ओझा की मौत में उसका भी हाथ था और आरा के कचहरी के एक मुंशी जनार्दन लाल को उसने काफ़ी समय तक एक क़ानूनी पेंच में फँसा रखा था। इसके अलावा उसने तेली सूरी की पत्नी को अपने घर में बँधुआ बनाकर रखा था। यहाँ तक कि पुलिस ने भी उसे एक जाने-माने अपराधी की श्रेणी में रखा था और एक बार किसी डकैती के मामले में उसे आठ वर्ष की सज़ा भी मिली थी। अंततः एक रात बलदेव सिंह के मकान से कुछ गज़ के फ़ासले पर सूरज सिंह की हत्या कर दी गयी।

45 एकड़ की जोत वाले ज़मींदार और घृणित सूदखोर बलदेव सिंह और सूरज सिंह को वर्ग-दुश्मनों की सूची में रखा गया था। एक विवादास्पद ज़मीन पर कहा-सुनी होने से उन्हें गाँव के जगन्नाथ महतो की भी दुश्मनी मोल लेनी पड़ी

थी। सूरज सिंह की ही तरह उसकी भी हत्या कर दी गयी।

डाकुओं और अपराधियों के ख़िलाफ़ नक्सलवादियों ने जो जंग छेड़ रखी थी उसकी गूंज कोलोडेहरी तक भी पहुँच गयी थी। त्रिभुवन कहार हमेशा नक्सलवादियों को तिरस्कार के भाव से देखता था—उसने क़सम खायी थी कि वह नक्सलवादियों की हत्या कर देगा, क्योंकि वे उसकी तरह के लोगों की जानें लेते हैं। उसे इस बात पर गर्व था कि वह काली मियाँ नामक एक समृद्ध आदमी के यहाँ हुई डकैती के मामले में फँसा है। 13 नवंबर, 1978 को त्रिभुवन का सफ़ाया हो गया। नक्सलवादियों की 'सफ़ाया सूची' में अभी और भी अनेक अपराधी थे। विपिन यादव नामक व्यक्ति त्रिभुवन कहार के गिरोह का सदस्य था और वह बिहारी रजवार को मार डालने की योजना बना रहा था, क्योंकि उसे शक था कि 3 जनवरी, 1979 को बिहारी ने ही उसके मालिक की हत्या की है। चत्ती पासी के मकान के पास वह घेर लिया गया और मार डाला गया। कोलोडेहरी में एक के बाद एक हत्याएँ और स्थायी पुलिस छावनी की स्थापना अब वास्तविकता बन गयी है।

13 जून, 1977
आरा

भोजपुर ज़िले के सहार निर्वाचन-क्षेत्र में नक्सलवाद से प्रभावित कोलोडेहरी और बिचली टोला के लोगों ने सामूहिक रूप से चुनावों का बहिष्कार किया। सरकारी सूत्रों के अनुसार मतदान आमतौर पर वैसे ही बहुत धीमा (25 से 35 प्रतिशत वोट पड़े) था, लेकिन सबसे धीमा मतदान (केवल 7.2 प्रतिशत) एकवारी निर्वाचन-क्षेत्र के अंतर्गत मतदान-केन्द्र संख्या 106 पर दर्ज किया गया और यह भी नक्सलवाद से प्रभावित इलाक़ा था।

14 जून, 1977
पटना

बिहार के गृह-सचिव आर० एन० दास के अनुसार भोजपुर ज़िले के पीरो मतदान-केन्द्र के प्रजाइडिंग अफ़सर 13 तारीख़ की रात में गंभीर रूप से घायल हो गये जब कुछ लोगों ने—जिन्हें नक्सलवादी कहा जाता है—बम से उस पर हमला कर दिया।

16 अगस्त, 1977
एकवारी, सहार

सूरज अहीर की ही तरह कोई भी मुखबिर ज़िंदा नहीं बच सका। नथुनी कहार की मृत्यु आज भी कुछ ग्रामीणों के लिए एक रहस्य है। भूमिहार लगातार पूछते रहते हैं, "नथुनी की हत्या किसने की?" अन्य लोगों को पता है कि उसकी हत्या नक्सलवादियों ने की। कहा जाता है कि उसके झोंपड़े में नक्सलवादियों का एक ग्रुप मीटिंग कर रहा था। भावी दुष्परिणामों से घबराकर वह पुलिस के पास चला गया। बाद में पड़े छापे में नक्सलवादियों को भागने में सफलता मिल गयी। लेकिन कुछ ही दिनों बाद मुखबिर नथुनी कहार की हत्या हो गयी।

24 अगस्त, 1977
बाघी, सहार

24 अगस्त को जब शिवव्यास सिंह की हत्या हुई, उस समय बाघी के किसी भी व्यक्ति ने यह नहीं सोचा था कि हरिजनों के लिए यह सबसे काला दिन होगा। शाम के लगभग चार बजे का वक़्त रहा होगा जब उसके भाई रामजस लाश के पास पहुँचे। बाघी के 50-वर्षीय मुखिया रामजस सिंह का कोई दुश्मन नहीं था। दरअसल वह गाँव के दक्षिणी सिरे यानी मुसहर टोली की ओर रात के वक़्त अकसर थोड़ा ऐश करने चले जाते थे।

सहार ब्लाक के बेरथ की ही तरह बाघी पर राजपूतों के 40-45 परिवारों की हुकूमत चलती थी। लल्लन सिंह और गोपाल सिंह के पास डेढ़-डेढ़ सौ बीघे खेत थे और पिछड़ी जातियों के लोगों पर इन दोनों ज़मींदारों का ज़बरदस्त आतंक था। निचली जाति वालों में मुसहरों के 32 परिवार थे जिनकी संख्या सबसे अधिक थी और शिवव्यास सिंह से उनकी दोस्ती थी। दोनों पक्षों के बीच दरार अचानक ही पैदा हुई।

संघर्षवाहिनी के अनुसार हर रोज़ की तरह एक शाम शिवव्यास सिंह मुसहर टोली में गये। बताया जाता है कि वहाँ बुच्चन साव के शराब के ठेके पर कुछ अपरिचित चेहरों को देखकर उन्होंने कहा, "तोहनी के नक्सलाइट के रखले बाड़े का रे?" (तुम लोगों ने नक्सलवादियों को टिका रखा है क्या?)। इतना कहना था कि कुछ अपरिचित लोग अँधेरे से निकलकर उन पर टूट पड़े।

लेकिन शिवव्यास की मृत्यु के बाद मुसहरों में आतंक फैल गया। राजपूत लोग ज़रूर बदला लेंगे—यह सोच कर फुरतीले मुसहर लोग अँधेरे में ही खिसक गये। अगले दिन जब हथियारों से लैस राजपूत ज़मींदार मुसहर टोली के पास इकट्ठे हुए तो वहाँ एक भी मुसहर नहीं नज़र आया। लेकिन लूटपाट जमकर हुई। राजपूतों ने उनके मवेशी, अनाज, मुर्गे-मुर्गियाँ—सब-कुछ लूट लिया। वर्षों की शांति अब समाप्त हो चुकी थी।

3 अक्तूबर, 1977
सेओथा, सहार

गुमनाम गाँव सेओथा आज भी जल रहा है। बरुना से आध मील की दूरी पर स्थित इस गाँव का संबंध कुछ प्रमुख नक्सलवादियों से है। बूटन और चमकू मुसहर की ससुराल सेओथा में थी। काफ़ी पहले दिसंबर 1974 में इस गाँव में वर्ग-दुश्मन के सफ़ाये की पहली वारदात सामने आयी थी। शाम का अँधेरा घिरते ही नक्सलवादियों के एक दस्ते ने 30-वर्षीय राजपूत रामप्रवेश सिंह की उस समय हत्या कर दी जब वह खेत से अनाज लेकर अपने खलिहान की ओर जा रहे थे। हालाँकि गाँव वालों ने अपनी गवाही में बताया कि उन्होंने हत्यारों को नहीं देखा था, लेकिन मुक़दमा चला और पुलिस ने अपने उपाध्य अख्तियार किये। अनेक लोगों को गिरफ़्तार करके इस जुर्म में फँसाया गया तथा काफ़ी समय तक लोग जेल में पड़े रहे। दरअसल उनमें से एक व्यक्ति रघुवंश राम आज भी जेल में है।

रामप्रवेश सिंह की हत्या के बाद दो वर्षों तक सेओथा में हिंसा की कोई वारदात नहीं हुई। सहार में दर्ज एक मामले (केस सं० 2 (6) 76) के अनुसार 1976 में नक्सलवादियों के एक गुट ने राजपूतों पर हमला किया। कहा जाता है कि ये लोग सेओथा में टिके थे और जब वे गाँव से बाहर जा रहे थे तो हमले की आशंका में राजपूतों ने शोर मचाया। हथियारों से लैस नक्सलवादियों ने आत्मरक्षा में गोली चलायी और कुछ राजपूत घायल हो गये। इसके बाद गिरफ़्तारियाँ हुईं। बाद में बदला लेने के इरादे से राजपूतों ने हरिजनों के मकानों को आग लगा दी जिसमें रामबालक राम, महेन्द्र राम, रघुबीर दुसाध, सिपाही राम और रामबचन राम के मकान जला दिये गये। हमलावर मवेशियों को भी ले गये। इन पीड़ित हरिजनों ने कई बार भूमि संबंधों के ज़िला कलेक्टर के पास अर्ज़ी दी कि राजपूतों ने उनके मवेशियों को हड़प रखा है, पर कोई सुनवाई नहीं हुई।

आपातकाल के दौरान भी यहाँ राजपूतों की लूटपाट बरक़रार रही। अनेक अवसरों पर पुलिस ने गाँव पर छापा डाला। एक जगह पुलिस ने सेओथा के हरिश्चन्द चमार को गिरफ़्तार किया। पुलिस का दावा था कि इसके पास से बम बरामद हुए थे और सहार थाना में एक मामला (केस सं० 8 (3) 76) दर्ज हुआ। सेओथा में हरिजनों को पुलिस के दमन का शिकार होना पड़ता था। इन्होंने अपनी आँखों के सामने ऊगन राम की पत्नी, सिनाथी राम की माँ, रघुवंश की माँ, रघुवीर की पत्नी, जयकुमार की पत्नी और रामबालम की पत्नी को पिटते और पुलिस-यातना का शिकार होते देखा। मर्दों को भी आये दिन किसी-न-किसी बहाने पीटा जाता था। पुलिस ने रामसिद्ध राम, राजबालम राम, मुनका राम और रामनकुर राम की मुर्गियाँ लूट लीं।

हरिजनों की प्रतिक्रिया बड़ी धीमी थी। रोज़-रोज़ की इस परेशानी से बचने के लिए उन लोगों ने गाँव छोड़ कर अपने रिश्तेदारों के यहाँ जाने का फ़ैसला किया। लेकिन इसी समय सेओथा में असंतोष और अशांति घर करने लगी थी। राजपूतों को फ़ौरन ही इसकी गंध मिल गयी। उन्होंने रामप्रसाद चमार को राइफ़लों और अन्य हथियारों से बुरी तरह पीटा। फलस्वरूप रामप्रसाद की मृत्यु हो गयी और राजपूतों के खिलाफ़ एक मामला दर्ज हुआ। रामप्रसाद पर हमले के दौरान कुछ अन्य हरिजन भी घायल हुए थे। ये थे—फकर राम और उसकी माँ, रामबचन राम, मीना कुमारी, धनमुखिया और राजबालम की माँ।

हरिजनों पर सेओथा के राजपूतों का निरंतर हमला एक संगठित अभियान का अंग था। उन्होंने जवार के राजपूतों से संपर्क बना लिया था जो नक्सलवाद-विरोधी संगठन के जाने-माने सदस्य थे। हदियाबाद, बाघी, बजरैया, बरगाँव और गोदिलिया गाँवों की 40-50 राइफ़लों से इनकी ताक़त काफ़ी बढ़ गयी थी। हालाँकि हरिजनों को अपेक्षाकृत अभी ज्यादा नुक़सान नहीं उठाना पड़ा था, पर राजपूतों का पहला हमला सुनिश्चित था। 3 अक्तूबर, 1977 के आक्रमण के बाद से सेओथा में एक स्थायी पुलिस-दल तैनात कर दिया गया था और एक नक्सलवाद-विरोधी समिति का गठन हो चुका था। इसका अध्यक्ष रामसिद्ध राम नामक एक हरिजन तथा मंत्री डिप्टी सिंह नामक एक राजपूत था और इस समिति में नौ सदस्य थे।

17 दिसंबर, 1977
कोनी, सहार

कोनी (सहार) में अशांति बनी रही। 17 दिसंबर, 1977 को नक्सलवादियों के एक गुट ने खलिहान में अपने अनाज की रखवाली कर रहे मदन राय और अवधेश राय पर अचानक हमला कर दिया। अवधेश राय की हत्या हुई और मदन राय की राइफ़ल छीन ली गयी। पुलिस ने शिवकीरत, रामजतन, सकलदीप, चन्द्रदीप, महेन्द्र दुसाध, हीरालाल चमार तथा अन्य उन सभी लोगों को गिरफ़्तार कर लिया जिनके नाम राजपूतों ने अपनी रिपोर्ट में लिखाये थे।

कोनी से लगे गाँव भी अशांत हो चुके थे। 1971 से सेमराँव और बड़हारा गाँवों में राजनीतिक चेतना विकसित होने लगी थी। इस परिवर्तन के भूल में कम्युनिस्ट विचारधारा वाले तीन व्यक्ति थे—डॉ० गनेशी, मिसरी महतो और कोनी के मुखिया भैरवप्रसाद गुप्त। कोनी के दफ़ादार सूरजवंश पांडे को इन तीनों से खतरा दिखायी दे रहा था। वर्षों से निचली जातियों के प्रति इनकी अपील अपना स्थान बना रही थी। नक्सलवादी गतिविधियों से जहाँ एकवारी और

चवरी दहक रहा था, कोनी में सितम्बर 1971 में इसकी पहली चिंगारी दिखायी दी। विनोदकुमार पांडे ने जो मामला दर्ज किया था, उसमें लिखा था कि एक रात जब वे पास के बड़हरा गाँव से लौट रहे थे, गन्ने के खेत में छिपकर उन पर गोलियाँ चलायीं जिसमें उनके पिता सूरजवंश पांडे मारे गये। इस मामले में मिश्री महतो तथा अन्य तीन लोगों को अभियुक्त बनाया गया था।

अगले वर्ष 1973 में एक बदमाश सत्यनारायण तेली की लाश पायी गयी। एक बार फिर मिश्री महतो पर संदेह हुआ। 1973 में सूनजवंश पांडे के एक घनिष्ठ सहयोगी बिपिनबिहारी महतो का उनके मकान के पास ही सोते समय गला काट दिया गया। यह एकदम दिन-दहाड़े 11 बजे दिन में हुआ। एक बार फिर पुलिस का शक नक्सलवादियों पर गया, हालाँकि किसी को फँसाया नहीं गया। बदले के रूप में बिपिनबिहारी के पुत्र पुरुषोत्तम महतो ने मिश्री महतो की हत्या कर दी। बाद में बदानंद महतो के साथ उन्हें भी अभियुक्त माना गया।

मिश्री महतो के मारे जाने तक अनेक घटनाएँ हो चुकी थीं। सूरजवंश पांडे की मृत्यु के बाद पुलिस ने मिश्री महतो और डॉ० गनेशी को गिरफ़्तार किया और इसके पास से काफ़ी हथियार बरामद करने का दावा किया। जेल में दोनों को काफ़ी यातना दी गयी, लेकिन चूँकि वे सी० पी० आई० में थे, पार्टी ने उनके पक्ष में वातावरण तैयार किया। फिर तत्कालीन पुलिस-अधीक्षक जे० एन० श्रीवास्तव ने दबाव और मध्यस्थता के ज़रिये उनको क्षमा दिये जाने की अपील की। बाद में जनता पार्टी की सरकार ने डॉ० गनेशी के ख़िलाफ़ लगाये गये सारे आरोप वापस ले लिये।

कोनी की इन हिंसक घटनाओं के लिए यहाँ के अतीत का इतिहास देखना होगा। 1960 में ही बग़ल के गाँव सियाडीह में ऊँची जातियों और निम्न जातियों के बीच तनाव अपने चरम-बिन्दु पर पहुँच रहा था। लगभग इन्हीं दिनों ऊँची जातियों के लोगों ने निचली जातियां के एक व्यक्ति ज्ञान तेली की हत्या कर दी। 1974 आते-आते निचली जातियों के लोग अब पहले जैसे विनीत और आज्ञाकारी नहीं रह गये थे। 17 मई, 1974 को बमां के द्वारा किये गये हमले के फलस्वरूप जगन्नाथ तिवारी मारे गये—उन्होंने रामदास मुसहर को समान वेतन देने से इनकार किया था तथा रामदास पर हुए आक्रमण के लिए भी ये ज़िम्मेदार थे। दूसरी तरफ़ ऊँची जाति वालों को संदेह हुआ कि तिवारी की हत्या में रामप्रवेश महतो का मुख्य हाथ है और 29 मई, 1974 को उन्होंने रामप्रवेश की हत्या कर दी। 40-वर्षीय रामप्रवेश महतो कोनी के हरिजनों के प्रति हमदर्दी रखने वाले व्यक्ति के रूप में जाने जाते थे।

14 अप्रैल, 1974 को जब भैरवप्रसाद ने अपने बेटे पर आम तोड़ने की वजह से पड़ी मार का विरोध किया तो रामचन्द्र सिंह ने उनकी बड़ी निर्दयता-

पूर्वक पिटाई की। राजपूत ज़मींदार भैरवप्रसाद को गोली मारने की तैयारी में थे। समृद्ध भैरवप्रसाद पिछड़ी जाति के पहले व्यक्ति थे जो सेमराँव-संदेश पंचायत द्वारा मुखिया के पद पर चुने गये थे। लगातार 10 वर्ष तक वह इस पद पर बने रहे। वह हमेशा पंचायत के विकास के बारे में चिंतित रहते थे और एक प्रमुख कांग्रेसी के रूप में सम्मानित थे। उनके ही प्रयास से गाँव में एक डाकखाना और महिला स्कूल खुल सका। स्पष्टभाषी होने के नाते 1960 वाले दशक में जो तनाव पैदा हुआ था उसमें उन्हें ज़मींदारों का कोपभाजन बनना पड़ा। इसके बाद से ज़मींदारों ने हमेशा उन्हें परेशान करने की कोशिश की। वे बहुधा उनके मकान पर हमला और लूटपाट करते। 1971-72 की घटनाओं ने स्थिति को और बदतर बना दिया।

29 जुलाई, 1974 को शाम के लगभग सात बजे जब भैरवप्रसाद अपनी साइकिल पर सवार गड़हनी बाज़ार से लौट रहे थे, ज़मींदारों के एक गुट ने इन पर हमला किया और बर्बरतापूर्वक इनकी हत्या कर दी। पुलिस-अधीक्षक के० डी० सिंह ने अपनी रिपोर्ट में लिखा, "भैरवप्रसाद गुप्ता की मृत्यु के बारे में कोई निर्णायक प्रमाण नहीं हैं। इस इलाक़े में ऊँची जातियों और नीची जातियों के बीच तनाव बढ़ रहा है। यह भी स्पष्ट होता जा रहा है कि पिछड़ी जातियों के लोग नक्सलवादी बन रहे हैं। भैरवप्रसाद गुप्ता की मृत्यु दिनोंदिन बढ़ रहे इस तनाव का नतीजा है।"

कोनी के आस-पास के गाँवों में अशांति फैली रही। पड़ोस के गाँव सेमराँव के नारायण कवि और हीरा यादव इस तनाव के अंग थे। संघर्षवाहिनी के ज़रिये पता चला कि एक यादव युवक श्यामबिहारी को एक कथित नक्सलवादी के रूप में 29 जनवरी, 1978 को गिरफ़्तार किया गया। मदन राय के मकान पर एक पुलिस-छावनी लगा दी गयी थी। इन्होंने गवाह शरीफ़ यादव से भेंट की जिसे मदन राय की हत्या के मामले में अवधेश के साथ फँसा दिया गया था। कोनी में 28-29 जनवरी, 1978 की वारदात से भी इनका संबंध था।

उन्होंने कहा कि 28 जनवरी को शाम के लगभग सात बजे श्यामबिहारी के घर की ओर से तीन बार गोली चलने की आवाज़ सुनायी दी और कुछ लोगों को नक्सलवादी नारे लगाते हुए भागते देखा गया। अगले दिन सवेरे छह बजे जब मदन राय खेत में शौच के लिए जा रहे थे, बिहारी ने मदन राय पर गोली चलायी। शोर मचाने पर लोग इकट्ठे हो गये और बिहारी को पकड़ लिया गया। बिहारी के पास से एक पिस्तौल और दो कारतूस बरामद हुए। मदन राय सहार थाने तक गये और दिन में लगभग 11 बजे पुलिस ने आकर श्यामबिहारी को गिरफ़्तार कर लिया। उन्होंने कहा कि उन्हें गोली मार दी जाये, क्योंकि पुलिस में उनका क़तई विश्वास नहीं है और साथ ही अपने भाई से कहा कि वह पीरो में

रामइकबाल को ख़बर कर दे।

उस दिन 28 जनवरी को श्यामबिहारी और ओरसी के टुंकू उनसे मिलने के बाद कोनी आये थे। 10-12 लोगों के साथ तीन व्यक्ति नज़र आये। उन्होंने अपना नाम श्यामबिहारी, गनेशी और नरेश बताया। रोके जाने पर मदन राय ने समझा कि ये लोग इस गाँव के ही हैं और उन्हें आगे आने के लिए ललकारा। गोली लगते ही अवधेश राय की मृत्यु हो गयी और मदन राय घायल हुए। हमलावरों द्वारा एक बंदूक और एक राइफ़ल छीनी गयी। मामला दर्ज हुआ और आठ दिनों तक तीनों फ़रार रहे। जब वे कोनी में लौटे तो किसी ने इनके बारे में कहीं सूचना न दी।

उसी दिन भोजपुर के पुलिस उप-अधीक्षक राजेन्द्र शर्मा 8-10 कांस्टेबलों के एक दल के साथ हत्या की जाँच के लिए कोनी पहुँचे। गाँव वालों ने बताया कि श्यामबिहारी उसी दिन शाम के लगभग 4-5 बजे कोनी पहुँचा था। कुछ लोग अपने हाथ सेंक रहे थे और वह उनमें शामिल हो गया। इसके साथ ही उसके मकान से कुछ दूरी पर गली के पास कुछ लोग इकट्ठे हो गये और उसके घर से कुछ दूरी पर साथ मिलकर चिल्लाने लगे। वे लोग शरीफू यादव के घर की ओर बढ़े। वे संख्या में लगभग 40-50 थे और इनमें पड़ोस के चवरी तथा धनछुआँ गाँवों के भूमिहार भी शामिल थे जो लाठियों तथा भालों आदि से लैस थे। अपनी बंदूकों से उन्होंने हवा में गोली छोड़नी शुरू की और गाँव के लोग डरकर इधर-उधर भागने लगे। दो घंटे के इस हंगामे में कुछ लोग डर के मारे खेतों में जाकर छिप गये। इस बीच रघुनी, जवाहर और श्यामबिहारी के पिता झाकड़ पुलिस को सूचना देने के लिए सहार थाने तक पहुँच गये। शाम के लगभग छह बजे भूमिहारों को देखकर शरीफू चिल्लाने लगा; श्यामबिहारी अपनी गाय दुह रहा था। गोलियों की आवाज़ सुनकर वह अपने मकान में छिप गया। दिन में लगभग दस बजे उसकी माँ जब उसे खाना देने जा रही थी तो कहीं से एक गोली आकर उसे लगी और वह गिर पड़ी। श्यामबिहारी भाग निकला और सूबेदार के मकान में छिप गया, लेकिन उन लोगों ने उसे पकड़ लिया और मारने लगे और उसे मदन राय के घर तक ले आये, जहाँ पुलिस ने उसे गिरफ़्तार कर लिया। उस शाम वह रामइकबाल द्वारा ओरसी में आयोजित शिविर में भाग लेकर लौटा था।

उस दिन कोनी लौटने के बाद श्यामबिहारी ने भूमिहारों को यह चिल्लाते सुना कि "मार डालो।" "देवराज यादव ने मेरे ऊपर हमला किया। मैं हलवाहे के मकान की तरफ़ दौड़ा, लेकिन उन लोगों ने मुझे पकड़ लिया और घसीटते हुए मदन राय के घर तक लाये जहाँ एक कमरे में मुझे बंद कर दिया गया। वहाँ जमा भीड़ को हटाने के बाद धनछुआँ के एक युवक कपिल राय ने मुझसे पूछताछ शुरू की। उन्होंने पूछा कि मैंने मदन राय को छुरा क्यों दिखाया था? बाद में

कमला राय भी आ गये और उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता।" यह पता चला कि मदन राय के एक रिश्तेदार धनछुआँ के कपिलदेव राय का पिछले दस वर्षों से बारह बीघे खेत के सवाल पर भतिरघी के एक व्यक्ति से झगड़ा चल रहा था। कपिलदेव राय ने ज़बरदस्ती उस ज़मीन को जोतकर उसमें फ़सल पैदा की थी। इससे पहले के वर्ष में फ़सल काटने के समय उन्होंने श्यामबिहारी से इस काम में मदद पहुँचाने के लिए कहा था, लेकिन इस तरह के ग़ैर-क़ानूनी काम में किसी तरह की मदद करने से श्यामबिहारी ने इंकार कर दिया था। कपिल राय और मदन राय ने उसे काफ़ी डाँटा-फटकारा था और बाद में इन लोगों ने उसे शरीफू यादव को मदद पहुँचाने के लिए मजबूर किया। इसके बाद ही हत्या वाली वारदात हुई और श्यामबिहारी दोषी ठहराया गया। बताया जाता है कि पुलिस उप-अधीक्षक ने भूमिहारों को सलाह दी कि वे एक और मामला दर्ज करें, क्योंकि श्यामबिहारी बेदाग़ छूट जायेगा। इसके बाद 28 जनवरी वाली घटना की रूप-रेखा तैयार हुई।

मई, 1978
उत्तरदाहा

नवानगर, जगदीशपुर और ब्रह्मपुर की सीमा पर स्थित उत्तरदाहा गाँव भी नक्सलवाद से प्रभावित हो गया था। भदवार, बगेन, बरुही और कटाईग्राम की ही तरह यहाँ भी कुर्मी जाति के लोगों का प्रभुत्व था। इस जाति के एक सौ दस परिवार थे जो अधिकांश मामलों में राजपूतों का साथ देते थे और पिछड़ी जातियों का नेतृत्व करने के लिए अहीर (85 परिवार) जाति के लोग सामने आये। राजपूतों के प्रभाव-क्षेत्र वाले इस गाँव में अहीरों का एक ऐसा वर्ग था जो बाद में बहुत कायर साबित हुआ।

अहीरों में हवलदार यादव नाम का एक व्यक्ति बहुत मशहूर था जो अनेक अपराधों से जुड़ा हुआ था। वह अपने साथ एक हथियार रखता था जिसे वह कलकत्ता से लाया था, लेकिन अपनी उद्दण्ड और लापरवाह प्रवृत्ति के बावजूद तथाकथित नक्सलवादी संधा दुसाध से उसका बहुत अच्छा संबंध था। और इन्हीं संबंधों के कारण वह धीरे-धीरे नक्सलवादी के रूप में विख्यात हो गया। एक बार उसने एक ग़रीब व्यक्ति की गाय चुरा ली और संधा महतो ने इसका विरोध किया जिससे वह संधा महतो का कट्टर दुश्मन बन गया। लोगों ने यह कहना शुरू किया कि नक्सलवादी अब उससे नफ़रत करते हैं। उसने संधा पर हमला किया। जगदीशपुर थाने के अनुसार (केस सं० 3(5)78) हवलदार यादव की दुसाध टोली के पास हत्या की गयी थी। इस हत्याकांड में जिन पन्द्रह लोगों का नाम था उनमें से संधा और मुसाहिब भागने फ़रार हो गये और भूमिगत होकर नक्सल-

वादियों की पाँत में मिल गये।

फिर भी तथाकथित नक्सलवादियों के गाँव से भाग जाने के बाद भी उत्तर-दाहा में अशांति बनी रही। 8 सितम्बर को कुर्मी जाति के एक अध्यापक रामेश्वर महतो की कुछ ग़लतफ़हमी के कारण हत्या हो गयी। उन्हें बहुत ही सीधा-सादा समझा जाता था। हवलदार यादव के घनिष्ठ सहयोगी और दस एकड़ की ज़मीन के मालिक 45-वर्षीय फागू महतो की भी हत्या हुई। इस प्रकार फागू के व्यवहार से क्षुब्ध ग़रीब और भूमिहीन किसानों ने अपनी ओर से एक न्याय कर दिया। इस हत्या के अभियोग में भोला महतो, राधाचरण महतो, प्रेम महतो और परम महतो को जेल में डाल दिया गया। और साठ दिन के बाद उनकी ज़मानत हुई।

पुलिस के पास अशांत क्षेत्रों का जो नक़्शा है उसमें उत्तरदाहा को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और इसे जुझारू हरिजनों का गढ़ माना जाता है। नक्सल-वादियों के एक दस्ते ने जब कामेश्वर सिंह नामक एक महंत की हत्या कर दी और हरिजनों ने इस महंत की पचास एकड़ से भी अधिक ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लिया तब हथियार बंद पुलिस-दस्ता इस गाँव में लाया गया और कामेश्वर सिंह के मकान पर तैनात कर दिया गया। यह भी अफ़वाह थी कि कामेश्वर सिंह हत्या के प्रयास में बच गया था और एक दूसरे गाँव मसाढ़ में छिपकर रहने लगा था जहाँ उसकी थोड़ी ज़मीन थी। लेकिन उत्तरदाहा में नक्सलवादियों की मौजूदगी बनी रही और इनका प्रभाव बग़ल के देवरार और अरैला गाँवों तक बढ़ता चला गया। नक्सल-वादियों के प्रभाव वाले इलाक़ों में तैनात पुलिस-छावनियों में अब इस बात की चर्चा होने लगी थी कि नक्सलवादियों के छापामार दस्ते ज़मींदारों का अनाज ज़ब्त कर रहे हैं और अपनी खुली सभाएँ आयोजित कर रहे हैं।

3 जनवरी, 1979
नरही-चाँदी, कोइलवार

सहार के अशांत इलाक़ों से नक्सलवाद की जो लहर चली थी उसे कोइलवार में नरही-चाँदी तक पहुँचने में थोड़ा समय लगा। सोन नदी के निकट कोइलवार थाने से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित इन दोनों गाँवों में इतनी निकटता है कि लोग इसे नरही-चाँदी के नाम से ही जानते हैं और ऐसा लगता है जैसे दोनों एक ही गाँव के नाम हों। नरही-चाँदी में तीन-चौथाई ज़मीन पर राज-पूतों का नियंत्रण है और इन्होंने निचली जातियों के लोगों को कभी अपना दुश्मन नहीं माना। यहाँ के मुख्य व्यापारिक समुदायों में कुरमी और अहीर शामिल हैं और सहार की तुलना में वे यहाँ ज़्यादा ग़रीब नहीं हैं। वे छोटे-मोटे व्यापार करते हैं और बटाई पर खेती करते हैं। इन्हें कभी अड़ियल नहीं समझा गया।

3 जनवरी को जब एक सम्पन्न राजपूत रामदेव सिंह, उसके पिता और

उसकी माँ की हत्या हो गयी तब भोजपुर के अशांत गाँवों की सूची में नरही-चाँदी का भी नाम जुड़ गया। इस हत्याकांड के बावजूद पुलिस-अधीक्षक टी० पी० सिंह को घबराने का कोई कारण नहीं दिखायी दिया। उनका कहना था कि "अब तक की खोजबीन से जो जानकारी मिली है उससे यही तय होता है कि रामदेव सिंह की हत्या के पीछे नक्सलवादियों का हाथ नहीं है। लेकिन गवाहों ने इस कांड को नक्सलवादी रंग देने की कोशिश की है...यह गुंडों के दो गुटों की लड़ाई थी।"

पुलिस-अधीक्षक की इस खोजबीन-भरी रिपोर्ट के साथ-साथ एक और कहानी जुड़ी हुई है जिसे प्रशासन नहीं जानता। गाँव के सभी लोगों को यह पता था कि रामदेव सिंह एक नौकरानी के साथ सोते थे जो झगरू कहार की विधवा थी। कुछ और भी जटिलताएँ थीं। रामदेव सिंह की सगी बहन एक कहार युवक से प्यार करती थी और इस युवक को गाँव का चौकीदार जानता था। इस प्रेम-प्रसंग का नतीजा यह हुआ कि अप्रैल 1978 में जब रामदेव सिंह की बहन की शादी हो रही थी, तो विवाह-मंडप में एक ज़बरदस्त विस्फोट हुआ। बाद में जो मुक़दमा चला उसमें किशन महतो को अपराधी बनाया गया और गाँव के चौकी-दार तथा रामदेव सिंह के परिवार के बीच तनाव और बढ़ गया। अब रामदेव सिंह के लिए केवल एक ख़तरा बच रहा था और वह था गाँव के चौकीदार का भाई रामकिशुन।

30 अक्तूबर, 1978 को रामकिशुन दुश्मन की घात में फँस गया और पुलिस ने हत्यारों के साथ साँठ-गाँठ करके मुख्य गवाह लक्ष्मण बढ़ई का नाम भी दर्ज नहीं किया। यह बात कृष्ण महतो नामक चौकीदार से बरदाश्त नहीं हुई। इसके अलावा इस हत्या के अभियुक्त रामदेव सिंह और अन्य सात व्यक्तियों को भी पुलिस ने नहीं पकड़ा। दरअसल उसका भाई किशन बैजनाथ महतो का साला था जो सहार ब्लाक के बरगाँव गाँव में रहता था।

नरही-चाँदी के निचली जातियों के लोगों के बीच रामदेव सिंह आतंक का प्रतीक था। उसकी शादी नहीं हुई थी और वह पिछड़ी जातियों की औरतों को अपनी वासना का शिकार बनने पर मजबूर करता था। रामदेव सिंह ने कमला कहार की पत्नी, मोती हजाम की पत्नी, शामा कहार की पत्नी, शिवपूजन तेली की बेटी, घोंघा सुनार की पत्नी, रामशीश महतो और जसवंत सिंह की बेटियों, कटहरी यादव की पत्नी और मिलन कहार की पत्नी को अपनी कभी न बुझने-वाली वासना का शिकार बनाया था। इसीलिए किशन महतो के प्रति हमदर्दी में काफ़ी लोग एकजुट हो गये थे।

3 जनवरी, 1979 को जिस समय रामदेवसिंह स्थानीय बाज़ार से वापस लौट रहे थे, चार व्यक्ति राइफ़ल लेकर उनकी तरफ़ बढ़े। वह अपने मकान में घुसने ही वाले थे कि गोली चलने की आवाज़ सुनायी दी। रामदेव सिंह ने जवाब

में अपने रिवाल्वर से गोली चलायी और मकान के अंदर घुस गये। एक घंटे से अधिक समय तक दोनों तरफ़ से गोलियाँ चलती रहीं। बाद में जब हमलावरों ने मकान का दरवाज़ा तोड़कर अंदर प्रवेश किया तो रामदेव के परिवार का कोई भी सदस्य जीवित नहीं बच सका। रामदेव सिंह की उनकी माँ और बाप के साथ हत्या कर दी गयी और इनके चेहरों को मार-मारकर विकृत कर दिया गया। अंत में इनकी लाशें मकान से तीन फ़र्लांग की दूरी पर कोइलवर की रेलवे लाइन पर मिलीं। इस प्रकार एक बहुत बड़े अत्याचारी की हत्या हुई। पुलिस का कहना है कि हमलावरों की संख्या चालीस से भी अधिक थी और भोजपुर ज़िले में दस वर्षों से भी अधिक समय से चल रहे युद्ध की यह सबसे ज़्यादा हिंसक घटना थी।

कोइलवर थाने में धारा 302 के अंतर्गत दर्ज मुक़दमे में इन लोगों को अभियुक्त कहा गया था—सकल अहीर, कथेरी अहीर, हरिमन अहीर, चन्द्रिका दुसाध, रामावतार दुसाध, विष्णु दुसाध, भुतेली दुसाध, जोगेन्द्र दुसाध, रामलाल महतो, ललन महतो, श्रीकृष्ण ठाकुर और जयश्री ठाकुर। पुलिस ने उपेन्द्रनाथ तिवारी को भी बहुत पीटा, क्योंकि उसे तिवारी पर भी शक था। राजबलि महतो, रामकिशन महतो और किशन महतो फ़रार हो गये थे। इसके बाद राजपूतों ने बदले की कार्रवाई शुरू की। दो दिन बाद इन लोगों ने जीतन अलगू और लाली दुसाध के मकान को आग लगा दी। इस मामले में हरवंश सिंह, सुदामा सिंह तथा अन्य लोगों के नाम मुक़दमा नं० 8 (1) 79 दर्ज किया गया।

रामदेव सिंह से संबंधित लोगों ने इन तीनों लाशों को उठाया और पटना में कदमकुँआ स्थित जयप्रकाश नारायण के निवास-स्थान पर इन लाशों को ले गये। इन लोगों ने न्याय की माँग की। आख़िरकार जे० पी० ने ही यह वायदा भी तो किया था कि पाँच वर्ष के अंदर भोजपुर में शांति क़ायम हो जायेगी। सम्पूर्ण क्रांति का जन्म होना अभी बाक़ी था।

जयप्रकाश नारायण के यहाँ से असंतुष्ट होकर इन लोगों ने उन लाशों को एक ट्रक पर लादा और पटना में विधानसभा तक गये। अजीब विडम्बना-भरी स्थिति थी। नरही-चाँदी गाँवों में अभी आग लगी ही थी। 23 अप्रैल को राजपूत मुखिया त्रिवेणी सिंह पर एक स्थानीय बाज़ार में हमला किया गया। लोगों का कहना था कि इस हमले के पीछे रामबलि महतो का हाथ था जो फ़रार था। नरही-चाँदी में स्थापित पुलिस-छावनी अभी भी बरक़रार है। सहार से कोइलवर तक नक्सलबाड़ी के संदेश को लोगों को हृदयंगम करने में एक दशक से भी ज़्यादा समय लगा।

नवम्बर-दिसम्बर 1979

अकाल का वर्ष

वर्ष का अंत यहाँ के लोगों के लिए भूख का तोहफ़ा लेकर आया। ज़िले के नौ खंडों को अकाल-क्षेत्र घोषित कर दिया गया। नवम्बर 1979 में आरा की सड़कों पर नक्सलवादियों ने जो पहला ज़बरदस्त जुलूस निकाला (जगदीश महतो और रामेश्वर अहीर के नेतृत्व में हरिजनिस्तान की माँग वाले जुलूस के लगभग एक दशक बाद) उसमें अन्य बातों के अलावा यह माँग की गयी थी कि इन इलाक़ों से पुलिस-छावनियाँ हटायी जायें और ग़रीबों तथा अकालग्रस्त लोगों को तत्काल राहत पहुँचायी जाये। गाँवों में स्थान-स्थान पर ग़रीब किसानों ने अपनी क़िस्मत का फ़ैसला अपने ही हाथों में लिया।

जगदीशपुर के असूधन गाँव में दीनानाथ सिंह नामक एक राजपूत को निचली जातियों के लोगों का शिकार होना पड़ा। दरअसल जब गाँव के मुसहरों, अहीरों और रजवारों ने दीनानाथ से चावल की माँग की तो उन्होंने इंकार कर दिया, जिसके फलस्वरूप इन लोगों ने उसके मकान पर हमला करके सैकड़ों मन चावल लूट लिया। जब एस० डी० ओ० रामध्यानप्रसाद मामले की तहक़ीक़ात के लिए असूधन पहुँचे तो ग़रीब किसानों ने सचाई को छिपाने की तनिक भी कोशिश नहीं की और साफ़ शब्दों में कहा कि भूख से मरने के बजाय वे किसी भी तरह की सज़ा भुगतने के लिए तैयार हैं।

जगदीशपुर के मदुरा गाँव में भी भूख की आग अपने प्रचंड रूप में थी। लेकिन यहाँ जब नक्सलवादियों ने गाँव के मुखिया से चावल की माँग की तो उसने इस माँग को फ़ौरन पूरा कर दिया। जगदीशपुर के ककीला गाँव के किसान ज़मींदारों से लगातार अनुरोध करते रहे कि वे बाहर के व्यापारियों को अनाज न बेचें, क्योंकि गाँव के लोग भूख से मर रहे हैं। उन्होंने वायदा किया कि अगर खाने के लिए बनियों से अनाज मिला तो वे कुछ भी करने को तैयार हैं। जब ज़मींदारों ने यह अनुरोध मानने से इंकार कर दिया और ट्रैक्टरों पर अनाज लादकर बाज़ार की तरफ़ जाने लगे तो मुसहरों ने धावा बोल दिया। दलीपपुर और भरासन गाँवों में भी इसी तरह की घटनाएँ हुईं।

फतहपुर, तरारी में अकाल से पीड़ित लोग उग्र हो उठे। उनका नेतृत्व रामइकबाल दुसाध नामक व्यक्ति कर रहा था जिसे पुलिस काफ़ी पहले भूल चुकी थी। जून 1974 में एक भूमिहार ज़मींदार की राइफ़ल छीनकर वह हरि दुसाध के साथ फ़रार हो गये थे। काफ़ी समय तक घर से ग़ायब रहने के कारण उनकी पत्नी ने यह समझा कि बहुआरा में हुई पुलिस मुठभेड़ में वह भी मार डाले गये और इसी दुख में उसने ज़हर खाकर आत्महत्या कर ली। लेकिन रामइकबाल गिरफ़्तार हो गये थे और भागलपुर सेंट्रल जेल में एक साल रहने के बाद वह

वापस आये थे। वह किसी ज़माने में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता थे। अक्तूबर 1979 में राम इकबाल फतहपुर के ज़मींदारों के लिए आतंक बनकर सामने आ गये थे।

भूमिहारों ने तो यह बात मान ली कि वे अपने अनाज बाहर के व्यापारियों को नहीं बेचेंगे, लेकिन बनियों ने इसे मानने से इंकार कर दिया। इस पर मुसहरों ने उन पर हमला कर दिया और लगभग साठ मन अनाज वे लूट ले गये। पुलिस के आने पर इन लोगों ने अपना जुर्म क़बूल किया। साथ ही ज़मींदारों ने बीस हज़ार रुपया इकट्ठा करके गाँव में पुलिस-छावनी का बंदोबस्त किया, क्योंकि उन्हें भय था कि ये लोग धान की फ़सल को लूट लेंगे।

19 दिसम्बर, 1979 को शाम को चार बजकर 45 मिनट पर फतहपुर-स्थित पुलिस-छावनी पर नक्सलवादियों ने हमला किया। इस मुठभेड़ में तीन कांस्टेबलों की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गयी। कामेश्वर सिंह और दामोदर सिंह की तुरंत, लेकिन भगवानसिंह की बाद में मृत्यु हुई। नक्सलवादियों के हाथ सात राइफ़लें और लगभग तीन सौ चक्कर गोलियाँ लगीं। इस हमले ने सबको आश्चर्य में डाल दिया और पुलिस ने तथा गाँव के लोगों ने देखा कि हमलावर नक्सलवादी हवा में गोलियाँ छोड़ते हुए और ज़ोर-ज़ोर से यह बोलते हुए कि "जनता मत डरना, जनता को नहीं मारना है" बड़े इत्मीनान के साथ लूट की राइफ़लें लिये हुए बाहर निकल गये।

अध्याय 4

राज्य की हिफाजत के लिए

दुश्मन हर जगह है। बंदूक से लैस जैतूनी हरी वर्दी में तैनात बिहार मिलिट्री पुलिस अथवा केंद्रीय रिज़र्व पुलिस के जवान; ज़मींदार के मकान के ऊपर ईंट और गारे से बनायी गयी पुलिस चौकियाँ; धनी ज़मींदारों के पाले हुए तगड़े लठैत; खादी की पोशाक और टायर की चप्पलों में सुशोभित शांति समितियों के पदाधिकारी; पटना से प्रकाशित ऊँची जातियों के लोगों के अखबार; जन-विद्रोह को कुचलने में दक्ष लोगों की साँठगाँठ से ज्ञान के 'तटस्थ' केंद्रों में आसीन विद्वान।

सहार के देहातों को चीरने वाली धूल-भरी सड़क से जब भी सरकारी निशान वाली कोई जीप गुज़रती है, आरा से कुछ किलोमीटर दूर गड़हनी में कंटीले तारों से घिरी पुलिस-चौकी को संदेश पहुँच जाता है। रोज़ाना मदद के लिए अतिरिक्त सैनिक दस्ते आते हैं। छोटी और अधमुंदी आँखों वाले गुरखे पूरी तरह चौकस खड़े रहते हैं और उनकी उँगलियाँ बंदूक के घोड़े पर टिकी रहती हैं। अर्द्ध-सैनिक टुकड़ियाँ एक के बाद एक कई खेपों में पहुँचती हैं और तड़के ही किसी 'अशांत' गाँव को घेर लिया जाता है और फिर शुरू होता है 'संदिग्ध' व्यक्तियों की धर-पकड़ का रोज़ चलने वाला सिलसिला।

शरीर से बाहर झाँकती पसलियों वाले अध-नंगे कमज़ोर मुसहरों और चमारों को उनकी पीठ पर संगीन की नोक चुभोकर पास खड़ी जीप तक ले जाया जाता है और जीप में ठूँस दिया जाता है। कभी-कभी प्रतिरोध भी देखने को मिलता है, पुलिस से झड़प होती है और फिर हवा में बारूद की गंध फैल जाती है और कुछ लाशें बिछ जाती हैं। औरतें अँधेरे की आड़ लेकर अपने मर्दों को देखती रहती हैं, जिनके हाथों को पीठ की तरफ़ ले जाकर बाँध दिया गया होता है। 'आपरेशन थंडर' का एक चरण समाप्त हो गया है, दूसरा चरण कब शुरू होगा—कुछ पता नहीं, पर इतना ज़रूर पता है कि यह पहले से कहीं ज़्यादा घिनौना होगा।

राज्य की हिफ़ाज़त के लिए पुलिस द्वारा की जाने वाली हत्याओं के निरंतर बढ़ते रूप में—जिसे 'मुठभेड़' का प्यारा-सा नाम दे दिया जाता है—'आपरेशन थंडर' जारी है और पटना के दानापुर कैन्टोनमेंट से भोजपुर के गाँवों में अर्द्ध-सैनिक टुकड़ियों के निरंतर भेजे जाने में कोई कमी नहीं आयी है।

1970 के दशक के शुरू के वर्ष भावी घटनाओं का पूर्वाभास देने लगे थे। गंगा के दोनों तरफ़ नक्सलवादियों के बिखरे हुए गुट थे। कुछ और थे जो जेलों में अपने दिन गुज़ार रहे थे। ऐसा लगता था कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) द्वारा शुरू किया गया आंदोलन टूटकर बिखर गया है, लेकिन सरकार को अभी भी हिंसा के फैलने की पूरी आशंका थी। 8 अक्तूबर, 1970 को बिहार मंत्रिमंडल ने क़ानून और व्यवस्था की बिगड़ती हुई स्थिति से निपटने के लिए भंग किये गये निरोधक नज़रबंदी क़ानून को फिर से चालू करने के बारे में विचार करने का फ़ैसला किया। समाचारपत्रों ने एलान किया कि चारु मजुमदार की तलाश जारी है। मुंगेर और मुज़फ्फरपुर (सारन) ज़िलों के सूरजगढ़ तथा मुसहरी इलाक़ों में नक्सलवादियों की गतिविधियों तथा हज़ारीबाग के रूआम जंगलों में अमलेन्दु सेन-मेरी टाइलर गुट की गिरफ़्तारी की ख़बरों ने राज्य की प्रशासन व्यवस्था को झकझोर दिया था और चौकन्ना कर दिया था।

9 अक्तूबर, 1970 को बिहार के एक दैनिक समाचारपत्र 'द इंडियन नेशन' ने लिखा : "राज्य में नक्सलवादियों के निरंतर बढ़ते आतंक से कारगर ढंग से निपटने के लिए बिहार पुलिस को कुछ विशेष अधिकार प्रदान किये जायेंगे। यह फ़ैसला बिहार मंत्रिमंडल की एक विशेष बैठक में राज्य में क़ानून और व्यवस्था की स्थिति पर विचार करने के बाद लिया गया। यह निर्णय किया गया कि पुलिस-दल को तत्काल और मज़बूत बनाया जाये तथा ख़ुफ़िया विभाग को संगठित करने की दिशा में क़दम उठाये जायें। मंत्रिमंडल को बताया गया कि राज्य में नक्सलवादियों ने 26 हत्याएँ और गंभीर क़िस्म की नौ डकैतियाँ की हैं।" राज्य में नक्सलवादियों की बढ़ती हुई गतिविधियों को देखते हुए यह फ़ैसला किया गया था और जुलाई 1970 तक अलग-अलग ज़िलों में गिरफ़्तार किये गये व्यक्तियों और मामलों की छानबीन से सरकार के लिए चिंतित होने का पर्याप्त कारण उपलब्ध था।

प्रेस-विज्ञप्ति में बताया गया था कि कुल 17 ज़िलों में से 11 में नक्सलवादियों की घुसपैठ है। बिहार में आगे चलकर 'अशांत' क्षेत्रों में अर्द्ध-सैनिक टुकड़ियों ने जो दमन किये वे सरकार की उस अनम्य नीति के परिणाम थे जो बुनियादी तौर पर दो बातों पर आधारित थी : एक तो यह कि उग्रवाद क़ानून और व्यवस्था की समस्या है; तथा दूसरे, नक्सलवादियों से निपटने के लिए विशेष अधिकारों का होना अत्यंत आवश्यक है।

एक तथ्य और सामने आया : नक्सलवादियों से 'प्रभावित' ज़िलों की जो सूची प्रकाशित हुई थी उसमें शाहाबाद का—जो 1973-74 में भोजपुर और रोहतास नामक दो ज़िलों में बाँट दिया गया—कहीं भी ज़िक्र नहीं था। अपने क्षेत्र में माहिर और आधुनिक पुलिस-अधिकारी एवं पत्रकार बी० एन० सिन्हा, डी० आई० जी० (नक्सलाइट) ने इस भेद को बड़े साफ़ शब्दों में रखा : "बिहार में और सहार से मुकामा तक की पट्टी में भी हिंसा के इस पंथ के दो दौर हैं—पहला, 1967 से 1971 तक की अवधि, जिसमें उत्तर बिहार और धुर दक्षिण बिहार में नक्सलवादी गतिविधियाँ देखी गयीं। दूसरे दौर में 1972 से आज तक की अवधि को शामिल किया जा सकता है और इसमें भोजपुर, पटना, नालन्दा, गिरिडीह, हज़ारीबाग और धनबाद में नक्सलवादी गतिविधियों में तेज़ी रही।"[1] हालाँकि 1967 में उत्तर बंगाल में नक्सलबाड़ी वाली घटना के फ़ौरन बाद शाहाबाद में माओवादी रणनीति पर आधारित कार्यक्रम तैयार करने की कोशिश की गयी फिर भी सिन्हा का कहना है कि "दूसरे दौर की घटनाएँ ऊपरी तौर से सार्वजनिक परीक्षण से परे की बात थीं।"[2]

इसका प्रसार ऐसे समय शुरू हुआ जब अन्य इलाक़ों में इसका प्रभाव समाप्त हो रहा था। बी० एन० सिन्हा की अटकलों के अनुसार—"1971 में सहार थाने के अंतर्गत नक्सलवादियों के छोटे-मोटे केंद्र तैयार हुए। इस समय तक उत्तर बिहार में और यहाँ तक कि छोटानागपुर में नक्सलवादियों ने भागना शुरू कर दिया था।" शाहाबाद को ख़बरों में कोई स्थान नहीं मिलता था। सहार ब्लाक के एक गुमनाम गाँव चवरी में किसानों और पुलिस के बीच ज़बरदस्त मुठभेड़ के बाद ही मई 1973 में बिहार के अख़बारों में इस ख़बर को प्रमुख स्थान दिया गया और ज़िले में नक्सलवादियों के नेतृत्व में चल रहे किसी किसान आंदोलन के अस्तित्व के बारे में आम लोग भी जान सके।

6 मई, 1973 को सबेरे अर्द्ध-सैनिक संगठनों के जवानों ने गाँव को घेर लिया, ताकि बाहर से आये एक व्यापारी के अनाज को लूटने की वारदात में शामिल 'संदिग्ध व्यक्तियों' को पुलिस गिरफ़्तार कर सके। गाँव में प्रवेश करने पर खेतिहर मज़दूरों ने ज़बरदस्त प्रतिरोध किया। पुलिस ने गोली चलायी और कई घंटों तक यह मुठभेड़ होती रही जिसमें चार किसान मारे गये और कुछ कांस्टेबल घायल हुए। चवरी की इस घटना को अख़बारों ने जमकर प्रचारित किया और अजीबोग़रीब प्रतिक्रियाएँ सुनने को मिलीं।

राज्य विधान परिषद के सदस्य रणजीत बहादुर सिंह ने राजनीतिक दलों के नेताओं से अपील की कि वे चवरी जैसी क़ानून-व्यवस्था संबंधी समस्याओं से निपटने

1. बी० एन० सिन्हा, "फ्रॉम नक्सलबाड़ी टु एकवारी", 'द सर्चलाइट', पटना, 11 जून, 1975
2. वही

में प्रशासन को पूरा-पूरा समर्थन दें और साथ ही उन्होंने एक विस्फोटक स्थिति से दृढ़ता के साथ निपटने के लिए और समयानुकूल कार्रवाई करने के लिए प्रशासन की तारीफ़ की।[1] दूसरी तरफ़ भूतपूर्व पुलिस-मंत्री और बिहार राज्य समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष रामानंद तिवारी ने कहा कि भोजपुर ज़िले में चवरी में हुई घटना नक्सलवादी आतंक नहीं है, बल्कि यह मज़दूरी बढ़ाने के प्रश्न पर ज़मींदारों और भूमिहीनों के बीच का संघर्ष है।[2] समाजवादी नेता कर्पूरी ठाकुर ने इस घटना में मृत लोगों के परिवार वालों को न्याय दिलाने के लिए भूख-हड़ताल की। राज्य में केदार पांडे के मंत्रिमंडल की स्थिति बहुत कमज़ोर थी और समाजवादी खेमों में उठ रहे असंतोष को शांत करने के लिए वह जल्दी ही कोई क़दम उठाना चाहते थे और यह बात बहुत स्पष्ट रूप में सामने आ गयी थी।

फिर भी चवरी गोलीकांड जाँच आयोग की स्थापना तथा 31 दिसम्बर, 1975 को प्रकाशित आयोग के निष्कर्षों से पर्याप्त रूप से यह स्पष्ट नहीं हुआ कि एक राजनीतिक-सामाजिक स्थिति के प्रति 'विशेष अधिकारों' और 'क़ानून और व्यवस्था' जैसे दृष्टिकोण को अपना कर सरकार ने कौन-सी बुद्धिमानी का परिचय दिया। चवरी में उस दिन बिहार मिलिट्री पुलिस और केंद्रीय रिज़र्व पुलिस के निरंकुश जवानों ने आतंक की जो मिसाल पेश की, उसका कोई औचित्य दिखायी नहीं देता।

दरअसल, आरा के अश्विनीकुमार सिन्हा—जिन्होंने आयोग के समक्ष हरिजनों और अन्य लोगों का एक वकील की हैसियत से प्रतिनिधित्व किया था—आयोग के निष्कर्षों से बहुत क्षुब्ध थे। उनका कहना था कि उन्होंने कभी ऐसी आशा नहीं की थी। वह बहुत निराश थे। दुख और क्रोध के साथ घटना का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा, "चवरी में जो कुछ हुआ उसे नक्सलवादी घटना नहीं कहा जाना चाहिए, इसकी जड़ें वहाँ के कृषि संबंधी विवादों में हैं। जो मसला भारतीय दंड संहिता की धारा 143-144 के अंतर्गत दर्ज किया गया था और साधारण चोरी का मामला था उसे बाद में भारतीय दंड संहिता की धारा 395 में तबदील कर दिया गया और इसे डकैती का मामला बना दिया गया। ऐसा इसलिए किया गया ताकि पुलिस को निरंकुश अधिकार मिल जायें। इस प्रकार एक कृषि समस्या को क़ानून और व्यवस्था की समस्या बना दिया गया।"

चवरी की घटना के प्रति जो रवैया अपनाया गया उससे यह बहुत स्पष्ट था कि वहाँ मौजूद स्थिति पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया। अश्विनीकुमार सिन्हा उन अनेक लोगों में से थे जो इस घटना के बाद चवरी गये थे। इस घटना के बाद संसद सदस्य बलिराम भगत और मैंने चवरी का दौरा किया। "इस गाँव में जिन

1. 'द इंडियन नेशन', पटना, 11 मई, 1973
2. वही

चार किसानों को पुलिस ने अपनी गोली का निशाना बनाया था उनमें लालमोहर दुसाध भी थे। हम लोगों ने लालमोहर दुसाध की पत्नी से भेंट की और उसने एक दूसरी ही कहानी बतायी। उसने बताया कि वह अन्य औरतों के साथ खेत में फसल काट रही थी और उसी समय एक भूमिहार ज़मींदार के पुत्र ने ढेर सारी औरतों के सामने उसे पकड़ लिया और छेड़खानी की। फिर भी खेत में काम जारी रहा, लेकिन शाम को घर लौटने पर सारी औरतों ने फ़ैसला किया कि वे अगले दिन से काम पर नहीं जायेंगी। लालमोहर ने जब यह सुना कि उसकी पत्नी के साथ ज़मींदार के बेटे ने अश्लील व्यवहार किया है तो वह ग़ुस्से से पागल हो उठा...यह बातें सुनकर मेरा खून खौल उठा। बूढ़ी औरतें रो रही थीं, और लालमोहर की विधवा पत्नी सुबकियाँ ले रही थी। गाँव में एक भी मर्द नहीं था। ज़्यादातर लोग गिरफ़्तार हो गये थे और जो बचे थे वे गाँव छोड़कर चले गये थे। यह सोचकर बहुत हैरानी होती है कि कमरतोड़ मेहनत कोई और कर रहा है और ज़मींदारों के महल खड़े होते जा रहे हैं।"

चवरी के बारे में विस्तृत जानकारी मिलने पर उस तनावपूर्ण स्थिति का आभास होता था जो 6 मई, 1973 की घटना से पूर्व व्याप्त थी। आसपास के गाँवों के लिए यह सर्वविदित है कि ग़रीब हरिजनों की जो औरतें भूमिहार ज़मींदारों के साथ सोने को तैयार हो जाती हैं उन्हें अनाज का एक अतिरिक्त बोझा मिलता है। चवरी में निरंतर बढ़ते असंतोष का एक कारण यह भी था कि भूमिहार ज़मींदार निचली जातियों की औरतों पर यह दबाव डालते थे कि फ़सल काटने के दिनों में वे रात में काम पर आया करें। इसके पीछे निश्चित रूप से उनकी वासना होती थी। इसके साथ ही मज़दूरों को दी जाने वाली अपर्याप्त मज़दूरी भी असंतोष का एक कारण थी।

26 अप्रैल, 1973 को अरवाल (गया) से आया एक व्यापारी चवरी के ज़मींदारों से अनाज ख़रीदकर जब ले जा रहा था तो उसे गनेशी दुसाध के नेतृत्व में किसानों के एक गुट ने रोक लिया और उसका अनाज छीन लिया। इसके बाद से घटनाएँ बड़ी तेज़ी से होने लगीं। सहार सुरक्षित निर्वाचन-क्षेत्र के विधायक राजदेव राम ने चवरी के कुछ ज़मींदारों को बंदूक का लाइसेंस दिये जाने की सिफ़ारिश की, ताकि वे नक्सलवाद के प्रसार से व्यक्तिगत तौर पर अपनी तथा अपनी फ़सल की रक्षा कर सकें।[1] पुलिस-अधीक्षक, आरा के कार्यालय में अपराध की स्थिति पर होने वाली मासिक बैठक में किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा भेजी गयी अर्ज़ी—जिसके नीचे भेजने वाले के नाम के स्थान पर 'एक भयभीत ग्रामीण' लिखा था—पढ़ी गयी और इस पर विचार के लिए उसे पुलिस-अधीक्षक के पास भेज दिया गया।

1. आर० सी० एफ० आई० सी०, (चवरी गोलीकांड जाँच आयोग की रिपोर्ट), पृ० 14

इस बैठक के बारे में इंसपेक्टर एम० एस० बघेल ने, जो चवरी कांड में शामिल थे, अपने विचार व्यक्त किये : "चवरी के कुछ निवासियों ने जिलाधीश के पास एक अर्जी भेजी थी। इस गुमनाम अर्जी को पुलिस-अधीक्षक ने हम लोगों को पढ़कर सुनाया और मुझे ऐसा लगा कि उन स्थानीय लोगों के अन्दर नक्सलवादी गतिविधियों के कारण काफ़ी आतंक फैला हुआ है। उनके अन्दर फिर से विश्वास पैदा करने के लिए हमने कुछ उपाय किये।"[1] आयोग की कार्यवाहियों के दौरान पुलिस उप-अधीक्षक एस० एम० शोएब ने साफ़-साफ़ शब्दों में कहा, "जिले में अपराध की स्थिति पर हुई बैठक में पुलिस-अधीक्षक ने ऑफ़ीसर-इंचार्ज को उन कारणों की जाँच का आदेश नहीं दिया जो चवरी में हिंसात्मक घटनाओं की वृद्धि के लिए जिम्मेदार थीं।"[2]

पुलिस उप-अधीक्षक से बाद में जो सवाल किये गये उससे साफ़ पता चलता है कि पुलिस ने बहुत उद्दंड रवैया अख्तियार किया।

आयोग : क्या यह फ़ैसला लिया गया कि चवरी में कठोर क़दम उठाया जाना चाहिए?

उत्तर : वहाँ उचित कार्रवाई करने का फ़ैसला लिया गया।

इसके अनुसार 6 मई, 1973 को पुलिस अपनी पूरी ताक़त के साथ चवरी के अभियान पर रवाना हो गयी।

इंसपेक्टर एम० एस० बघेल ने बताया : "मेरे साथ सलाह-मशविरा करके पुलिस उप-अधीक्षकों ने एक योजना तैयार की जिसके अनुसार हमें तीन दिशाओं से बस्ती के अन्दर प्रवेश करना था। हमारी योजना पश्चिम, दक्षिण और उत्तर से दुसाध टोली में घुसकर अपराधियों की धर-पकड़ करने की थी ताकि इन दिशाओं से कोई भी व्यक्ति भागकर बाहर न जा सके।" भूमिहार जमींदारों ने चवरी के घेराव में पुलिस का कितना साथ दिया, यह भी बाद के बयानों में स्पष्ट हो जाता है : "दुसाध टोली के पूर्व में भूमिहारों के मकान हैं। बस्ती के पूर्व की दिशा में हमने किसी जवान को तैनात नहीं किया, क्योंकि हमें पता था कि दुसाध-टोली से केवल पश्चिम, उत्तर और दक्षिण की ही तरफ़ से भागने में दुसाधों को सफलता मिल सकती है...चवरी के केवल चार ग्रामीणों ने हमारी कार्रवाई में सहयोग किया। वे सभी भूमिहार थे और हमने उन्हें इसलिए साथ रखा था ताकि तलाशी के समय उन्हें गवाह बनाया जा सके।"[3]

पुलिस-अधीक्षक ने उन लोगों के ख़िलाफ़ वारंट जारी करने का आदेश दिया था जिनके नाम अनाज लूटने के मामले में दर्ज थे और यह भी निर्देश दिया

1. अश्विनीकुमार सिन्हा के अप्रकाशित दस्तावेज़
2. वही
3. वही

गया था कि उन लोगों को गिरफ़्तार कर लिया जाये। अगले दिन पीरो सर्किल के इंसपेक्टर की देख-रेख में प्रातः लगभग छह बजे एक पुलिस-दल चवरी पहुँचा। सियाराम राय और गिरजानंदन शर्मा नामक दो भूमिहारों को तलाशी के लिए गवाह बनाया गया। सहार के ऑफ़ीसर-इंचार्ज नागेन्द्र सिंह कुछ कांस्टेबलों के साथ खदेरन दुसाध के मकान में घुसे ही थे कि लगभग पचास-साठ व्यक्ति 'पुलिस को मारो' चिल्लाते हुए इन पर ईंट फेंकने लगे। घबराकर पुलिस पीछे हट गयी और नहर के किनारे रुककर मदद के लिए और भी सैनिक दस्तों के आने का इंतज़ार करने लगी।

इस बीच इंसपेक्टर ने बहुआरा के सरपंच जगनारायण सिंह और कोलोडेहरी के सूरज सिंह का सहयोग प्राप्त कर लिया, ताकि अगर अनाज लूटने के मामले के अभियुक्त चौदहों व्यक्ति शांतिपूर्वक आत्म-समर्पण कर दें तो ज़रूरत पड़ने पर इन दोनों व्यक्तियों को मध्यस्थ बनाया जा सके।[1] लेकिन यह प्रयास विफल हुआ। मज़दूरों ने पुलिस को सूचित किया कि किसी भी हालत में वे इस बात की इजाज़त नहीं देंगे कि उनकी तलाशी ली जाये या उन्हें गिरफ़्तार किया जाये अथवा उनकी सम्पत्ति को ज़ब्त किया जाये। दिन में लगभग पौने ग्यारह बजे पुलिस के अतिरिक्त दस्ते आ गये जिनका नेतृत्व दो पुलिस उप-अधीक्षक तथा अनेक अफ़सर कर रहे थे। शांतिपूर्ण समझौते का एक असफल प्रयास किया गया।

गाँव में पुलिस के घुसते ही मार-पीट शुरू हो गयी। दोनों तरफ़ से हथियारों का खुलकर प्रयोग हुआ और दोपहर डेढ़ बजे तक लड़ाई चलती रही। लालमोहर दुसाध की घटनास्थल पर ही, गनेशी दुसाध की अस्पताल जाते समय रास्ते में और बालकेश्वर दुसाध तथा दीनानाथ तेली की आरा सदर अस्पताल में उसी दिन मृत्यु हो गयी। महिलाओं और बच्चों को तनिक भी चोट नहीं आयी। पुलिस ने 19 चक्कर गोलियाँ चलायीं। 47 व्यक्तियों के ख़िलाफ़ सहार पुलिस-स्टेशन में मामला दर्ज किया गया और 36 को हिरासत में लिया गया। पुलिस के 19 जवान घायल हुए थे। बाद में चवरी में बिहार मिलिट्री पुलिस का एक प्लाटून तैनात कर दिया गया।

चवरी में आये रिपोर्टरों और विभिन्न राजनीतिज्ञों ने भी अपनी रिपोर्टें पेश कीं। पटना से प्रकाशित उच्च जातियों के लोगों के एक समाचारपत्र ने चवरी की घटना पर अपना निष्कर्ष व्यक्त करते हुए लिखा : "इस घटना के पीछे चाहे जो भी कारण रहा हो, पुलिस की कार्रवाई ने आतंक से पीड़ित ऊँची जातियों के लोगों के अन्दर फिर से आत्मविश्वास पैदा किया है और पिछड़ी जातियों के अन्दर दहशत फैली है।" समाजवादी नेता कर्पूरी ठाकुर ने एक सर्वदलीय जाँच समिति के गठन की

1. आर० सी० एफ़० आई० सी०

माँग की ताकि उन परिस्थितियों की जाँच की जा सके जिनमें बाध्य होकर पुलिस ने गोली चलायी। संयुक्त समाजवादी पार्टी के भूतपूर्व विधायक रामसकल सिंह ने भोलाप्रसाद सिंह, विनायक प्रसाद (दोनों संसोपा के विधायक), और शोषित दल के जगदेव प्रसाद के साथ चवरी की यात्रा की और बताया : "चवरी में पुलिस कार्रवाई का तत्काल कोई कारण नहीं था। इसके अलावा पुलिस ने गोली चलायी जबकि ऐसा करने की उसने अनुमति नहीं ली थी। घटनास्थल पर कोई मैजिस्ट्रेट मौजूद नहीं था। गोली चलाने से पहले लाठीचार्ज करना और आँसू गैस छोड़ना ज़रूरी होता है जबकि पुलिस ने ऐसा कुछ नहीं किया।"[1]

चवरी के बारे में टिप्पणी करते हुए अश्विनीकुमार सिन्हा ने कहा, "पुलिस को अपनी चमड़ी बचाने की जल्दी थी। इस घटना से सम्बद्ध प्रशासनिक और पुलिस-अधिकारी भयंकर जातिवादी थे—श्रीमती कृष्णासिंह : ज़िलाधीश, के० डी० सिंह : पुलिस उप-अधीक्षक, के० पी० सिंह : पुलिस-अधीक्षक, एस०एस० वघेल : डी० सी०, नागेन्द्र सिंह—ये सारे लोग राजपूत जाति के थे। डॉक्टरी जाँच से इस बात की पूरी तरह पुष्टि हो गयी है कि उन चारों हरिजनों को बिलकुल नज़दीक से गोली मारी गयी थी। जिस स्थान पर गोली लगी थी, वह जलकर काला पड़ गया था और इससे पता चलता है कि दो फ़ीट से भी कम की दूरी से उन्हें गोली मारी गयी थी। मृतकों के शरीर पर घसीटे जाने के निशान थे। आरा सदर अस्पताल के सिविल असिस्टेंट-सर्जन डॉक्टर महावीरदास ने पोस्टमार्टम किया था, लेकिन चूँकि वह जाति से हरिजन थे इसलिए आयोग ने उन्हें सरकारी गवाह के रूप में स्थान नहीं दिया। लोग झूठ बोल सकते हैं, लेकिन तथ्यों को झुठलाया नहीं जा सकता। पुलिस ने अभूतपूर्व बर्बरता का परिचय दिया और गाँव में आतंक का साम्राज्य स्थापित कर दिया। इस घटना के बाद से पुलिस में मेरा रहा-सहा विश्वास भी ख़त्म हो गया। इसमें कोई शक नहीं कि भोजपुर में नक्सलवादियों ने अत्याचारी ज़मींदारों का सफ़ाया किया है, लेकिन उनकी विचारधारा यह नहीं है कि वे डाकू बनें। चवरी में पुलिस ने उनके साथ डाकुओं जैसा व्यवहार किया।"[2]

आयोग द्वारा दर्ज की गयी गवाहियों तथा आयोग के निष्कर्षों के बीच जो विरोधाभास है वह 'चवरी गोली कांड जाँच आयोग की रिपोर्ट' में बहुत साफ़ दिखायी पड़ता है। सबसे ज्यादा चिंता की बात यह है कि इस कांड को उचित ठहराने के लिए पुलिस-अधीक्षक ने अजीबोग़रीब तर्क पेश किये हैं। सवाल-जवाब के दौरान पुलिस-अधीक्षक ने संकेत दिया है कि किसी व्यक्ति को किस तरह नक्सलवादी समझा जाता है। अपने बयान में उन्होंने कहा है कि जब तक कोई

1. आरा, भोजपुर में जनवरी 1979 में रामसकल सिंह से लिया गया इंटरव्यू।
2. अश्विनीकुमार सिन्हा से 25 दिसंबर, 1978 को लिया गया इंटरव्यू।

व्यक्ति—भले ही वह विचार से नक्सलवादी क्यों न हो—किसी ख़ास मामले में अभियुक्त अथवा संदिग्ध व्यक्ति के रूप में सामने नहीं आता तब तक उसे गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता। जब यह पूछा गया कि क्या वह किसी व्यक्ति को उसके कार्यों के आधार पर नक्सलवादी मानते हैं तो पुलिस-अधीक्षक ने जवाब दिया, "कुल मिलाकर हाँ, क्योंकि नक्सलवादी शब्द की कोई मान्य परिभाषा नहीं है इसलिए अगर उसकी कार्रवाई हत्या, डकैती, लूटपाट आदि से संबंधित है तो उसे नक्सलवादी माना जा सकता है।"[1] क़ानून और व्यवस्था के प्रति पुलिस का दृष्टिकोण बहुत अवमानना-भरा है और वह कोई क़दम उठाने से पहले किसी जाँच की वस्तुगत स्थिति पर ध्यान नहीं देती। दरअसल जब आयोग ने पुलिस उप-अधीक्षक के० पी० सिंह से पूछा कि "6 मई, 1973 को चवरी में हुई घटनाओं पर क्या पुलिस-अधीक्षक ने संतोष व्यक्त किया था अथवा असंतोष ज़ाहिर किया था?" के० पी० सिंह ने फ़ौरन जवाब दिया कि "पुलिस-अधीक्षक ने हम लोगों से कहा कि हमने एक कठिन स्थिति को बड़ी कुशलता और संयम के साथ संभाल लिया।"

इस बात को भी स्वीकार किया गया कि नृशंस हत्याकांड पर परदा डालने के लिए 'नक्सलवादी' शब्द का इस्तेमाल किया गया। एम० एस० वघेल ने स्वीकार किया कि 5 मई को अपराध-स्थिति पर हुई बैठक से पूर्व उन्हें इस आशय की कोई जानकारी नहीं मिली थी कि चवरी नक्सलवादियों से प्रभावित गाँव है। इसके अलावा जो लोग मारे गये और जो गिरफ़्तार हुए उनके ख़िलाफ़ कभी किसी तरह का मामला नहीं दर्ज हुआ था। आयोग द्वारा जाँच के दौरान तरह-तरह की तिकड़मों का सहारा लिया गया। चवरी में बरामद हथियारों की सूची को कई बार बदला गया ताकि पुलिस उसे अपने पक्ष में इस्तेमाल कर सके। आयोग द्वारा जाँच शुरू किये जाने के छह महीने बाद इस मामले से संबंधित कागज़ात (केस डायरी) को सीलबंद किया गया। ज़मींदारों और पुलिस का प्रतिनिधित्व करने वाले वकीलों ने हरिजनों का प्रतिनिधित्व करने वाले वकीलों के ख़िलाफ़ आपस में सलाह-मशविरा किया। इनमें से कोई बात प्रकाश में नहीं आयी।

इस घटना के काफ़ी दिनों बाद अश्विनीकुमार सिन्हा ने बताया : "उस दिन चवरी में मैंने जो कुछ देखा उससे मेरा ख़ून खौल उठा। संसोपा के एक कार्यकर्ता प्रणव मुखर्जी ने अनुरोध किया कि मैं इस मामले को अपने हाथ में लूँ। इसकी फ़ीस के रूप में मुझे जो प्राप्त हुआ वह मेरी दैनिक आय का महज़ एक-चौथाई हिस्सा था। लेकिन हम कुछ नहीं कर सके। पुलिस बेदाग़ छूट गयी, अख़बारों ने झूठ के पहाड़ खड़े कर दिये, मासूम हरिजनों को गिरफ़्तार किया गया और इस

1. आर० सी० एफ़० आई० सी०, पृ० 8।

प्रकार आयोग का काम समाप्त हो गया। लालमोहर की बीवी के साथ बदसलूकी की घटना से जो कांड शुरू हुआ था वह चार हरिजनों की निर्मम हत्या के साथ समाप्त हो गया। चवरी के बाद अगर भोजपुर में कोई ज़मींदार मारा जाता है तो नक्सलवादियों को दोषी ठहराया जाता है। अगर कोई हरिजन मारा जाता है तो उसे फ़ौरन नक्सलवादी कह दिया जाता है। मैं अब बूढ़ा हो चुका हूँ, लेकिन मैं आपको यह सारी बातें बताऊँगा। पुलिस पर अब मेरा तनिक भी विश्वास नहीं है। बेशक मेरे इस विचार को आप और लोगों को भी बता सकते हैं। मैं आपसे एक बात और बताना चाहूँगा—भोजपुर का यह संघर्ष जारी रहेगा। अब अधिक समय तक हरिजन लोग दबकर नहीं रहेंगे।"

भारी-भरकम और घने अक्षरों में प्रकाशित 'चवरी गोलीकांड आयोग की रिपोर्ट' 1976 में जारी हुई और उसने पुलिस को निर्दोष साबित कर दिया। ठेठ क़ानूनी शब्दावली में लिखित इस रिपोर्ट में पुलिस की भूमिका का वर्णन करते हुए कहा गया है कि "गाँव में पुलिस-दल को जिस मुठभेड़ का सामना करना पड़ा उसमें पुलिस द्वारा शक्ति का उचित इस्तेमाल किया गया था और इसे किसी भी रूप में ज़्यादती नहीं कहा जा सकता। उन परिस्थितियों में यह सवाल ही पैदा नहीं होता कि पुलिस का कोई भी व्यक्ति ताक़त का ज़रूरत से ज़्यादा अथवा अनुचित इस्तेमाल करता।"

इस रिपोर्ट के अंतिम पैराग्राफ़ में इस बात का संकेत मिलता है कि चवरी के नर-संहार के बाद घटनाक्रमों की क्या दिशा हो सकती है : "नक्सलवादी हिंसा के निरंतर बढ़ते आतंक से निपटने के लिए स्थानीय पुलिस-अधिकारी पूरी तरह सज्जित नहीं थे और वे नक्सलवादी अपराधियों तथा नक्सलवादी अपराधों को एक साधारण क़ानून और व्यवस्था की समस्या की तरह परम्परागत ढँग से ग्रहण करते थे। इसके अलावा उनके काम में एक रुकावट यह भी थी कि नक्सलवादी पार्टी को एक राजनीतिक दल का दर्जा प्राप्त था जिस पर सरकार ने प्रतिबंध नहीं लगाया था। दरअसल चवरी गाँव में नक्सलवादी गतिविधियों की जानकारी के साथ इस समस्या के प्रति एक ठोस नीति वांछित थी जो बहुत देर में तैयार हुई। सोनाटोला में पुलिस द्वारा की गयी कार्रवाई के लगभग एक वर्ष बाद जो नीति तय की गयी थी उस नीति को ध्यान में रखकर उच्च अधिकारियों की ओर से स्थानीय पुलिस के पास उचित निर्देश और उपकरण आने चाहिए थे, ताकि चवरी में भी वह स्थिति का और कुशलता से सामना कर सकती।"[1]

4 मार्च, 1974। बेरथ (सहार) से कुछ दूर स्थित सोलह झोंपड़ी वाले गाँव सोनाटोला के बाहर जब पुलिस से भरी जीपें पहुँचीं, तो चवरी के मुक़ाबले पुलिस

1. वही, पृ० 189

बेहतर साज़-सामानों से लैस थी। सोनाटोला को उन हरिजनों ने बसाया था जो गाँव के ताक़तवर राजपूतों से परेशान होकर अपनी जान बचाने के लिए बेरथ से भाग गये थे। मिट्टी से बने इन खपरैल वाले मकानों में एक सौ से ज़्यादा हरिजन नहीं थे। धीरे-धीरे सहार में सक्रिय नक्सलवादियों के लिए यह एक आश्रय-स्थल हो गया, क्योंकि इसे वे 'क़िले जैसा' गाँव कहते थे। चवरी में पुलिस ने जिस तरह ख़तरनाक 'पिलबाक्स' की खोज की थी (जो वस्तुतः मिट्टी का बना एक छोटा कमरा था जिसमें लोहे की छड़ों वाली खिड़की लगी थी और जिसे आग रखने के लिए इस्तेमाल किया जाता था), पुलिस को यहाँ के मकानों की दीवारों में ऐसे सूराख़ मिले थे जिसे वह हरिजनों की मोर्चाबंदी कहती थी और मकान के बाहरी छोर पर जो गड्ढे थे उन्हें पुलिस की शब्दावली में युद्ध के दौरान काम आने वाली खाइयाँ कहा गया था।

वर्षों से संघर्ष करते-करते और 1973 आते-आते सोनाटोला के हरिजनों को अपने अधिकारों का आभास हो गया था। बेरथ और सोनाटोला के बीच संबंधों में क्रमशः तनाव आता गया और घृणा तथा असंतोष का एक वातावरण तैयार हो गया। खून-ख़राबे के डर से दिन में गाँव के मर्द खड़ी फ़सल में अपने को छिपा लेते थे। अक्तूबर 1973 में रघुनाथ दुसाध की पत्नी अपने पति को खेत पर खाना पहुँचाने के बाद लौट रही थी कि रास्ते में राजपूतों ने उसे पकड़ लिया और बुरी तरह पीटा।

1973 तक सहार में नक्सलवाद का ज़ोर बढ़ गया था और बेरथ के ज़मींदारों को यह आशंका होने लगी कि सोनाटोला नक्सलवादियों का गढ़ बन सकता है। फलस्वरूप फ़रवरी 1974 में किराये के गुंडों की मदद से राजपूतों ने हरिजनों को डराना-धमकाना शुरू किया, ताकि वे आकर घुटने टेक दें। 3 मार्च, 1974 को यह तनाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया जब सोनाटोला के निकट बेरथ के एक किसान झूलन सिंह की उस समय दिन-दहाड़े हत्या कर दी गयी जब वे अपने खेत की कटनी करा रहे थे। झूलन सिंह की हत्या के समाचार ने तथा बेरथ और सोनाटोला के बीच बढ़ते तनाव की ख़बरों ने पुलिस को सोनाटोला में अपना अभियान शुरू करने का बहाना दे दिया। चवरी आयोग की जाँच के दौरान पुलिस उप-अधीक्षक एस० एम० शोएब ने घटना का विस्तृत विवरण पेश किया :

"झूलन सिंह की हत्या का समाचार मिलने के बाद और अपने कार्यालय में विचार-विमर्श करने के बाद पुलिस-अधीक्षक ने मुझे बुलवाया और कहा कि मैं कुछ अन्य अफ़सरों को लेकर सोनाटोला जाऊँ और वहाँ छापा डालूँ। पुलिस-दल आरा से अलग-अलग गाड़ियों में रवाना हुआ और सब लोग सोनाटोला बस्ती से एक मील दूर एक स्थान पर इकट्ठे हुए। एक दूसरी गाड़ी में पुलिस-अधीक्षक भी वहाँ पहुँचे। उसी स्थान पर मैजिस्ट्रेट भी पहुँचे। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं कि

हमारे साथ कितने जवानों ने इस कार्रवाई में भाग लिया, लेकिन मोटे तौर पर हमारे पास एक कम्पनी (अर्थात सौ हथियारबंद सिपाही) से ज़्यादा सैनिक थे। केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस के कुछ अफ़सर और जवान भी हमारे इस अभियान में शामिल थे। सोनाटोला से लगभग आधा मील पूर्व की तरफ़ रुककर अलग-अलग अफ़सरों के ज़िम्मे काम बाँट दिया गया। उस समय तक बेरथ अथवा किसी दूसरे गाँव का कोई आदमी हमारे साथ नहीं था। मुझे सोनाटोला के पूरब में तैनात किया गया था। 30 सशस्त्र सिपाहियों की एक प्लाटून की ज़िम्मेदारी मुझे दी गयी। इसी प्रकार अन्य अफ़सरों को सोनाटोला को अलग-अलग दिशाओं की ओर सैनिकों के साथ भेज दिया गया। हर प्लाटून के साथ एक मैजिस्ट्रेट भी नियुक्त कर दिया गया था।

"गाँव से लगभग तीन सौ गज़ की दूरी पर एक स्थान से हमने बस्ती के चारों तरफ़ घेरा डाल दिया। सारी रात हम सोनाटोला को चारों तरफ़ से घेरे रहे। हमने तय किया था कि सुबह होते ही गाँव में प्रवेश करेंगे। स्थानीय लोगों ने किसी तरह का प्रतिरोध नहीं किया। यह कहना ग़लत है कि हमने सोनाटोला के प्रत्येक व्यक्ति को गिरफ़्तार कर लिया था। हमने बच्चों, महिलाओं और बूढ़ों को नहीं गिरफ़्तार किया था। हमने सोनाटोला के केवल उन्हीं मर्दों को गिरफ़्तार किया जो छिपकर बैठे थे। गाँव के बूढ़े लोग और औरतें हमारे सामने इकट्ठी हो गयीं और उन्होंने कहा कि उनको जहाँ रहने का आदेश दिया जायेगा वहीं वे रुके रहेंगे। इस पर हमने उनसे कहा कि जब हम लोग बस्ती के अन्दर अपना काम शुरू कर दें तो तुम लोग एक जगह पर खड़े रहना। इस अभियान में हमने सोनाटोला से 28 आदमियों को गिरफ़्तार किया।"

लगभग दो सप्ताह के अन्दर ही अख़बारों ने पुलिस की सफलता का बखान किया : 46 भूमिगत नक्सलवादियों ने पुलिस अथवा एस० डी० ओ० के सामने आत्मसमर्पण कर दिया।[1]

लेकिन बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो इस ग़लत विवरण से सामने नहीं आतीं। 18 झोंपड़ियों वाली इस छोटी-सी बस्ती को पूरे दो दिन तक घेरकर रखा गया और ज़िले में अब तक हुई अर्द्धसैनिक कार्रवाइयों में यह एक अभूतपूर्व घटना थी। पुलिसदल के साथ जिनको देखा गया, उनमें एक भूतपूर्व विधायक सूरज प्रसाद भी थे। इसके अलावा ज़िलाधीश श्रीमती कृष्णा सिंह ने, जो राजपूत जाति की हैं, सोनाटोला की कार्रवाई के दौरान बेरथ के राजपूत ज़मींदारों को झिड़का था और कहा था कि "आप लोगों के लिए शर्म की बात है कि राजपूत होकर भी आप हुक्मउदूली करने वाले मुट्ठी-भर हरिजनों को शांत नहीं रख सकते।" ज़िलाधीश

1. 'द सर्चलाइट', 15 मार्च, 1974

के राजपूतवाद से सभी परिचित थे—अपने कार्यकाल में उसने आरा के वकील-समुदाय में से जिन नौ अतिरिक्त अभियोक्ताओं का चयन किया गया था, वे सभी राजपूत थे।[1]

सोनाटोला आज भी क्षोभ और पीड़ा से मुक्त नहीं है, लेकिन अब अगर पुलिस की कोई जीप पास की नहर के किनारे रुकती है और पुलिस के निरकुंश जवानों का दल गाँव की तरफ़ बढ़ता है तो गाँव वाले घबराकर तितर-बितर नहीं होते। एक बूढ़ी औरत, जिसका बेटा आज भी जेल में पड़ा है, अपने दुखदर्द का बयान करती है, पर उसके चेहरे पर तनिक भी शिकन नहीं आती—बेरथ के राजपूत अब चैन की नींद नहीं सो पाते।

आयोग के समक्ष जिरह के दौरान पुलिस-अधीक्षक के० डी० सिंह ने रुक-रुककर बोलते हुए स्वीकार किया : "जून 1974 में भोजपुर ज़िले का कार्यभार सौंपने से पहले मैंने नक्सलवाद-विरोधी कार्रवाई को लागू करने की एक योजना तैयार की थी। उक्त योजना एक गोपनीय मामला है।" 1974 के दौरान नक्सलवाद-गतिविधियों में काफ़ी तेज़ी आयी और पहले की तुलना में 'मुठभेड़' की वारदातें भी ज़्यादा हुईं। यह तो स्पष्ट हो ही चुका था कि परम्परागत तरीक़ा कारगर साबित नहीं हो रहा है, इस पर चिंता भी व्यक्त की जा रही थी :

आयोग : भोजपुर ज़िले का कार्यभार सौंपते समय क्या आप इस बात से संतुष्ट थे कि ज़िले में नक्सलवादी गतिविधियों से उत्पन्न समस्या को संतोषजनक ढँग से हल किया जा रहा था ?

के० डी० सिंह : नहीं। मेरी राय थी कि इस समस्या पर उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा था जितना ध्यान देने की ज़रूरत थी।

आयोग : क्या यह कहना सही होगा कि क़ानून और व्यवस्था से निपटने के परम्परागत तरीक़े नाकाफ़ी साबित हो रहे थे ?

के० डी० सिंह : जी हाँ, व्यक्तिगत तौर से मुझे ऐसा लगता था कि स्थिति से ठीक से न निपटने के पीछे कुछ और कारण भी थे।

आयोग : क्या इनमें से एक कारण पुलिस-अफ़सरों की निष्क्रियता थी ?

के० डी० सिंह : मैं इसे पुलिस की निष्क्रियता नहीं कहूँगा। नक्सलवादी गतिविधियों से निपटने के लिए एक विशेष योजना तैयार की गयी थी और मंज़ूरी के लिए इसे उच्च अधिकारियों के पास भेजा गया था। इसके अलावा ज़िले में क़ानून और व्यवस्था से संबंधित कुछ अन्य गंभीर मसलों में भी हम उलझे थे। नक्सल-

1. अश्विनीकुमार सिन्हा से इंटरव्यू, जिसका उल्लेख ऊपर है।

वादी गतिविधियों से निपटने के लिए मैंने जो योजना तैयार की थी उसे मेरे द्वारा भोजपुर ज़िले का कार्यभार सौंपने तक लागू नहीं किया गया। जिस महीने मुझे भोजपुर का कार्यभार सौंपा गया, अर्थात जून 1974 में ही, मैंने इस योजना को तैयार किया था।

इसके बाद पुलिस-अधीक्षक के रूप में योगेशनारायण श्रीवास्तव आते हैं। जून 1974 के बाद ही 'मुठभेड़' की घटनाओं में वृद्धि हुई और हरिजनों की लाशें बिछने लगीं। नये पुलिस-अधीक्षक को भोजपुर में महत्वपूर्ण नक्सलवादियों की हत्या में कामयाबी मिली और इसे उसने बड़ी निरंकुशता के साथ कार्यान्वित किया—इसमें 14 जनवरी, 1975 को एक विख्यात नक्सलवादी रामेश्वर अहीर की दिन-दहाड़े गोली मारने की घटना भी शामिल है। जब योगेशनारायण श्रीवास्तव ने अर्द्धसैनिक दस्तों के साथ पीरो ब्लाक के चाँदी गाँव में मोर्चेबंदी की, रामेश्वर अहीर वहाँ से निकल भागे और सोनाटोला पहुँच गये। उनका पीछा किया गया, उन्हें पकड़ लिया गया और खुद पुलिस-अधीक्षक श्रीवास्तव द्वारा उन्हें एकदम क़रीब से गोली मारी गयी।

बिहार के एक हिन्दी दैनिक 'आर्यावर्त' ने इस 'मुठभेड़' का वर्णन करते हुए अनचाहे यह रहस्योद्घाटन कर दिया कि बहुप्रचारित पुलिस-किसान मुठभेड़ की कहानी एक कपोल कल्पना है :

"पिछले बुधवार को रात के समय भोजपुर के पुलिस-अधीक्षक वाई० एन० श्रीवास्तव ने सहार थानान्तर्गत नक्सलवादियों के एक अड्डे सोनाटोला गाँव में छापा मारकर रामेश्वर अहीर की हत्या कर दी।"[1]

रामेश्वर के पास ऐसा कोई हथियार नहीं बरामद हुआ जिससे उन्हें दोषी ठहराया जा सके और जैसा कि उनके पिता ने बताया—धमनिया की पुलिया के पास दोपहर में लगभग 12 बजे तमाम लोगों की आँख के सामने उन्हें गोली मारी गयी। रामेश्वरजी के पिता अपने बेटे की लाश की बग़ल में बैठकर रो रहे थे और प्रेस फ़ोटोग्राफ़रों की भीड़ लगी थी। कहा जाता है कि कैमरों की फ़्लैश लाइट से अपनी चौंधियायी आँखों से रामेश्वर के पिता की ओर देखते हुए पुलिस-अधीक्षक श्रीवास्तव ने कहा, "तुम्हारा बेटा एक सच्चा बहादुर इंसान था।"

रामेश्वर अहीर की शहादत के बाद भी नक्सलवादी गतिविधियों का बढ़ना जारी रहा। मासूम हरिजनों को 'संदिग्ध' बताकर गिरफ़्तार करने और निर्दयतापूर्वक उनकी हत्या करने से किसानों के अन्दर प्रतिरोध की एक ठोस भावना घर

4. 'आर्यावर्त,' 20 जनवरी, 1975

करने लगी थी। सहार-संदेश क्षेत्र से निर्वाचित संसोपा के एक विधायक रामसकल सिंह ने बताया, "नक्सलवाद का नामोनिशान मिटा देने की इच्छा में पुलिस और क़ानूनी अदालतें इस ज़िले में नक्सलवाद को बनाये रखेंगी।" चवरी में हरिजनों का जो ख़ून बहा था उसकी लम्बी धार रिस-रिसकर सोनाटोला, हनुमान-छपरा, बहुआरा, बाबूबाँध, पिंजरोई तथा भोजपुर के अन्य असंख्य गाँवों के धान के खेतों और झोंपड़ियों तक पहुँच गयी है। भोजपुर जाने वाली अर्द्धसैनिक टुकड़ियों से भरी ट्रेनों का पटना-आरा लाइन पर चलना जारी है।

23 मई, 1975 को पुलिस उप-महानिरीक्षक बी० एन० सिन्हा (मध्य-क्षेत्र) ने विद्रोह को कुचलने के लिए अपनी उस रणनीति का ब्यौरा दिया जिसे उन्होंने भोजपुर तथा आस-पास के ज़िलों के लिए तैयार किया था; नक्सलवादी आतंक को समाप्त करने के उद्देश्य से पुलिस-अधिकारियों को पाँच जिलों—गया, नालंदा, पटना, भोजपुर और रोहतास—में सतर्क कर दिया गया है। इन ज़िलों के सभी थानों में पुलिस-अफ़सरों को निर्देश दिया गया है कि अवैध हथियारों को ज़ब्त कर लें। पुलिस ने यह भी एलान किया कि वह पटना, भोजपुर और नालंदा में सक्रिय 35 नक्सलवादी नेताओं की तलाश कर रही है। प्रेस-विज्ञप्ति के अंत में बड़े आशावादी ढँग से कहा गया था कि "स्थिति पूरी तरह नियंत्रण में है।"[1] पुलिस ने आंदोलन के विकास को बड़ी चिंता के साथ रेखांकित किया था : इस समय तक वे दावा करने लगे थे कि भोजपुर के नक्सलवादियों ने उत्तर प्रदेश के बलिया और गाज़ीपुर ज़िलों में प्रशिक्षण-केन्द्र स्थापित कर लिये हैं।

एक सप्ताह के अन्दर ही दूसरी प्रेस-विज्ञप्ति जारी की गयी। 28 मई, 1975 को नक्सलवादी मामलों से सम्बद्ध पुलिस उप-महानिरीक्षक (नक्सलवादी) शिवाजीप्रसाद सिंह ने एक संक्षिप्त घोषणा की, "बिहार सरकार ने भोजपुर और पटना ज़िले में सभी स्वस्थ व्यक्तियों को हथियार से लैस करने का फ़ैसला किया है ताकि वे नक्सलवादियों के आतंक से—जिन्होंने हाल ही में सशस्त्र संघर्ष छेड़ दिया है—अपनी रक्षा कर सकें।" उन्होंने आगे कहा, "दोनों ज़िलों के ज़िलाधीशों से कहा गया है कि वे उग्रवादियों के प्रभाव वाले गाँवों का दौरा करें और मौक़े पर ही उन लोगों को हथियारों के लाइसेंस जारी कर दें जिनके अन्दर इन हथियारों को रखने की क्षमता है—इन गाँवों में ज़मींदारों पर उग्रवादियों के बढ़ते हमलों को ध्यान में रखकर यह फ़ैसला किया गया है। गड़बड़ी मुख्यतया ज़मीन संबंधी मसलों को लेकर फैली है।"[2]

यह भी बताया गया कि इन इलाक़ों में बचे-खुचे दुश्मनों के सफ़ाये का अभियान जारी है। दरअसल, 1975 की गर्मियाँ आते-आते 'संदिग्ध' व्यक्तियों

1. 'द इंडियन नेशन', 24 मई, 1975
2. वही, 28 मई, 1975

की तलाश में तड़के केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस के जवानों से भरी जीपों का भोजपुर के आस-पास के गाँवों में आना एक आम बात हो गयी थी। बिहार स्टूडेंट्स एसोसिएशन (बी० एस० ए०)[1] ने सरकार के इस क़दम की भर्त्सना की।

पिंजरोई (संदेश) की घटनाओं ने स्थिति को और स्पष्ट कर दिया। यहाँ के हत्याकांड के बाद हरिजनों ने निवेदन किया : "स्मरणीय है कि जब देश पर अँग्रेज़ों की हुकूमत थी उस समय यह माना जाता था कि कोई भी वर्दीधारी व्यक्ति चाहे वह अफ़सर हो या नॉन-कमीशंड अफ़सर हो या निजी सेवक हो, उसे यह अधिकार होता था कि युद्ध या शांति के काल में राजा की प्रजा पर वह हमला कर सकता था। आज आज़ादी के बाद की इस तारीख़ में भी हमारे देश के सर्वोच्च न्यायालय ने भी एलान किया है कि क़ानून किसी साधारण या ख़ास व्यक्ति को अतिरिक्त सम्मान नहीं देगा। आज जब यह माना जाता है कि संविधान के अंतर्गत ग़रीब जनता या हरिजनों को समान सुरक्षा प्राप्त है, संदेश थाने के अन्तर्गत पिंजरोई में जो कुछ हुआ वह दिल दहला देने वाला है।"

3 दिसम्बर, 1975 को एकदम सवेरे एक तथाकथित सूचना पर कि कुछ नक्सलवादी लोग अपनी लूटपाट को प्रचारित करने के लिए एक बैठक करने जा रहे हैं, सशस्त्र पुलिस ने पिंजरोई गाँव की चमार टोली को चारों ओर से घेर लिया और टोले के लोगों को आदेश दिया कि वे हाथ ऊपर उठाकर अपने-अपने मकानों से बाहर निकल आयें। भयभीत और विनम्र निवासियों ने इस आदेश का पालन किया और फिर उन्हें हथकड़ी लगाकर पास के बागीचे में इकट्ठा किया गया।

रामदयाल नामक एक चमार ने अपने मकान से निकलने से इंकार किया और घर के दरवाज़े पर खड़े रहने की जुर्रत की। इस पर एक नौजवान पुलिस-कांस्टेबल ने उसे गालियाँ दीं और अभद्र व्यवहार किया। रामदयाल ने इसका विरोध किया। इस पर एक पुलिस वाले ने उसके पेट में अपनी संगीन भोंक दी और वह चीत्कार करते हुए गिर पड़ा। उसके दो बच्चे 14-वर्षीय हरिशंकर चमार और 15-वर्षीय शंकर चमार मकान से बाहर निकल आये और भयभीत निगाहों से भागने का रास्ता ढूँढ़ने लगे। बिना किसी कारण के उन बच्चों को गोली मार दी गयी। चूँकि उनके पास से कोई ख़तरनाक चीज़ बरामद नहीं हुई, इसलिए यह मानने का कोई कारण नहीं दीखता कि वे सार्वजनिक सुरक्षा की दृष्टि से ख़तरनाक थे।

टोले की औरतें इस क़दर डर गयी थीं कि पुलिस के बुलाने पर भी वे बाहर आने में हिचकिचाती रहीं। इन निर्मम हत्यारों ने उन्हें भी अपना निशाना बनाया।

1. वही, 30 मई, 1975

उन पर किसी तरह का रहम नहीं दिखाया गया, हालाँकि भय से अपने काँपते हाथों को फैलाकर वे दया की भीख माँग रही थीं। एक मर्द मकान के अन्दर ही रह गया था, उसे भी मार डाला गया और उसे नक्सलवादी कहा गया। उसका नाम जवाहर चमार था और वह रामदयाल का रिश्तेदार था।

हथकड़ी-लगे हाथों वाले इन चमारों को जेल में डाल दिया गया। इन्हें फ़ौजदारी के कम-से-कम 14 मामलों में फँसाया गया और इनकी ज़मानत का विरोध किया गया। इनमें 13 और 14 वर्ष के दो लड़के भी थे जिनके नाम क्रमशः जयकुमार और राम उपाध्याय थे।

एम० डी० अज़ीम द्वारा लिखायी गयी प्रथम सूचना-रिपोर्ट को देखने से कोई भी समझ सकता है कि यह एक फ़र्ज़ी मामला था। गाँव में नक्सलवादियों की कार्रवाई के बारे में पुलिस को एक अज्ञात व्यक्ति से जानकारी मिली थी। विरोधियों के बारे में कहा गया था कि उन्होंने घातक हथियारों का इस्तेमाल किया और इसे प्रमाणित करने के लिए कुछ हथियार भी पेश किये गये जिन पर खरोंच के निशान थे ताकि उन्हें पहचाना जा सके। आरोप में यह भी बताया गया कि नज़दीक आने पर इन लोगों ने तलवारों से हमला किया जिससे पुलिस के कुछ लोग घायल हो गये। यह कहीं नहीं बताया गया था कि अगर उनके पास बारूद वाले हथियार थे तो उन्होंने तलवार या लाठी का सहारा क्यों लिया? यह भी कहा गया कि कुछ बदमाश तब नहीं पकड़े जा सके, क्योंकि वे एक गली के रास्ते भाग गये। लेकिन वहाँ कोई गली नहीं है और जब चारों तरफ़ से गाँव को पुलिस ने घेर रखा हो उस समय कोई दिन-दहाड़े कैसे भाग सकता था!

रामदयाल की झोंपड़ी के बंद दरवाज़े के भीतर तीन औरतें और एक मर्द सिकुड़े-सिमटे बैठे थे। भागने का कोई रास्ता नहीं था। पुलिस थोड़ी देर तक बाहर ही चहलक़दमी करती रही। कुछ ही मिनट पहले उसने रामदयाल को मौत के घाट उतार दिया था। थोड़ी दूर पर रामदयाल के बेटों की ख़ून से लथपथ लाशें पड़ी थीं। राइफ़ल से छूटी गोलियों की आवाज़ अभी हवा में गूँज ही रही थी कि पुलिस के और दस्ते पहुँच गये। रामदयाल को बिना किसी झगड़े-झंझट के मार दिया गया था, पर उसका दरवाज़ा तो अभी भी अंदर से बंद ही था। पुलिस को जब लगा कि वे दरवाज़े से नहीं घुस सकते तब वे छप्पर पर चढ़ गये।

उधर बागीचे में एकत्रित बूढ़े और औरतें पुलिस से चिरौरी—बिनती—कर रही थीं कि वे संयम से काम लें, पर इसका कोई फ़ायदा नहीं था। अंत में जब दरवाज़ा तोड़कर पुलिस अंदर घुसी तो तीन औरतें सामने आयीं। गोलियों की धुआँधार बारिश में दो ने तो फ़ौरन ही दम तोड़ दिया और तीसरी कराहती हुई गिर पड़ी। दोनों मृतकों में एक तेनीराम की पतोहू और दूसरी एक फ़रार नक्सलवादी अनंतलाल गुप्ता की पत्नी थी। रामदयाल का रिश्तेदार जवाहर चमार अभी भी

भाग नहीं सका। पुलिस को उसकी भी 'तलाश' थी। इसके फ़ौरन बाद गोलियों से छलनी हुई छह लाशों और गंभीर रूप से घायल राधिका देवी को लेकर पुलिस की जीप आरा सदर अस्पताल की ओर रवाना हो गया। इस सारे हत्याकांड में एक घंटा से भी कम समय लगा। बागीचे में जिनको रोक रखा गया था उनमें से छह को गिरफ़्तार कर लिया गया और शेष को रिहा कर दिया गया।

कुछ महीनों बाद संसद-सदस्य बलिराम भगत तथा पिंजरोई के कुछ लोगों के अनुरोध पर गिरफ़्तार लोगों को जमानत पर रिहा कर दिया गया—इनके खिलाफ़ आधे दर्जन से अधिक फ़र्जी मामले थे। उनके रिश्तेदारों के लिए और ख़ासतौर से 75-वर्षीय धरीक्षण चमार के निकट-संबंधियों के लिए—जिन्हें उम्र की परवाह किये बिना औरों की ही तरह हथकड़ी-बेड़ी में रखा गया था, जमानत पर छुड़ाने की प्रक्रिया बड़ी कष्टकर थी। पिंजरोई हत्याकांड के काफ़ी दिनों बाद ज़िलाधीश ने इलाक़े का दौरा किया और ग्रामीणों को राहत पहुँचाने का आश्वासन दिया। सरकार के इस आश्वासन के बाद पिंजरोई के नगीनाराम ने हर छोटे-बड़े अधिकारी से भेंट की, पर यह आश्वासन पूरा नहीं किया गया। रामदयाल चमार का टूटा हुआ मकान आज भी वैसे ही पड़ा है। पुलिस ने किसी विजेता सेना की तरह एक-एक सामान ज़ब्त कर लिया। उन दिनों देश में आपात-स्थिति लागू थी और इस तरह की ख़बरों के या किसी तरह के विरोध के प्रकाशित होने का सवाल ही नहीं पैदा होता था। पिंजरोई पर न तो किसी ने ध्यान दिया और न किसी ने आँसू बहाये।

1975 का वर्ष भोजपुर के लिए रक्तपात से भरा भयंकर वर्ष था। 14 जनवरी, 1975 को रामेश्वर अहीर की हत्या से दहल उठने के बावजूद नक्सलवादियों ने ऐसा कोई संकेत नहीं दिया जिससे यह लगे कि उन्हें अपने किये का पछतावा हो। पटना में पुलिस के दिग्गज अफ़सरों ने हड़बड़ी में आयोजित एक संवाददाता सम्मेलन में यह संदेह दूर करने की कोशिश की कि पुलिस का मनोबल टूट रहा है। जून के पहले सप्ताह में सहार के दुल्लमचक में पुलिस और नक्सलवादियों के बीच हुई मुठभेड़ के फ़ौरन बाद पुलिस और प्रशासन के चार सर्वोच्च अधिकारियों—फ़हीमुद्दीन अहमद, पुलिस उप-महानिरीक्षक (नक्सलवादी) बद्रीनारायण सिन्हा, भोजपुर के ज़िलाधीश कबीरकुमार ख़ान और ज़िले के पुलिस-अधीक्षक योगेशनारायण श्रीवास्तव ने एक संवाददाता सम्मेलन आयोजित किया।

अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ और अत्यंत जानकार पुलिस-प्रधान बी० एन० सिन्हा ने रेखांकित किया कि पीरो के गड़हनी में हथियार छीने जाने की घटना के बाद से नक्सलवादी आंदोलन जितनी तेज़ी से बढ़ा है वह चिंताजनक है। नक्सलवादियों ने 1971 में चार, 1972 में दो, 1973 में दो, 1974 में 33 और मई 1975

की समाप्ति तक आठ व्यक्तियों की हत्या की। इसके जवाब में पुलिस ने 1974 में 57 और मार्च 1975 की समाप्ति तक 22 नक्सलवादियों को गिरफ़्तार किया और छह की हत्या की। इस आम धारणा से असहमत होते हुए कि यह मूलतः ऊँची और पिछड़ी जातियों के बीच का जातिगत युद्ध है, सिन्हा ने कहा कि यह माओवादी नेता चारु मजुमदार की विचारधारा पर आधारित एक राजनीतिक आंदोलन है जो 'नक्सलबाड़ी से एकवारी तक' फैला है। इसके पीछे केवल सामाजिक-आर्थिककारण ढूँढना ग़लत होगा, क्योंकि सहार में तमाम ऐसे हरिजन हैं जो ग़रीब नहीं हैं। उन्होंने एक विधायक राजदेव राम का ख़ासतौर से उल्लेख किया जिसके पास खासी संपत्ति है और जो नक्सलवादी विचारधारा के विरोधी के रूप रूप में अच्छी तरह जाना जाता है।

ज़िले में नक्सलवादी गतिविधियों के तेज़ होने के साथ-साथ पुलिस कार्रवाइयों, गिरफ़्तारियों आदि में वृद्धि हुई। जून 1975 के तीसरे सप्ताह तक पुलिस ने 6 राइफ़लों, 8 मस्कटों, 4 आसामी राइफ़लों, 23 देसी बंदूकों, 16 बमों, 7 हथगोलों, 141 कारतूसों, राइफ़ल की 37 गोलियों और भारी मात्रा में नक्सलवादी साहित्य के पकड़े जाने का दावा किया। 169 व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया गया और 13 की हत्या की गयी। जून समाप्त होते-होते भोजपुर के 4 थानों में सशस्त्र पुलिस की 4 कंपनियाँ तैनात कर दी गयी थीं। जिन मुक़ामों पर पुलिस को तैनात किया गया वे थे—सहार में एकवारी और अगिआँव, पीरो में गड़हनी और संदेश में सिकरहटा तथा तरारी और नवानगर। एक कंपनी को रिजर्व के रूप में रखा गया था। उग्रवादी राजनीति के शुरू होने के बाद से पुलिस के पास यह दिखाने के लिए काफ़ी बातें थीं कि उसने कड़ी मेहनत की है। 1972 के बाद से उन्होंने 198 नक्सलवादियों को गिरफ़्तार करने और 19 को मार डालने का दावा किया है और उनके अनुसार नक्सलवादियों ने 3 पुलिस कर्मचारियों की हत्या की और 13 राइफ़लें छीनीं।

अपने कर्मचारियों के टूटते मनोबल को ऊपर उठाने की दिशा में भी पुलिस क़दम उठा रही थी। राज्य प्रशासन की मदद से उसने एलान किया कि 21 मई, 1975 को दुल्लमचक में हुई मुठभेड़ में नक्सलवादियों के हाथों मारे गये कांस्टेबल के वारिस को 10 हज़ार रुपये का अनुमान दिया जायेगा। राज्य ने तरह-तरह की कोशिशें कीं जिससे भोजपुर के हरिजनों की निगाह में अपनी खोई प्रतिष्ठा और साख को वह फिर से क़ायम कर सके। 2 जून, 1975 को जगदीशपुर के हदियाबाद में ज़मींदारों द्वारा किये गये हत्याकांड के बाद पुलिस ने 18 ज़मींदारों को गिरफ़्तार किया। ज़िलाधीश कबीर ख़ान और पुलिस-अधीक्षक योगेशनारायण श्रीवास्तव की मौजूदगी में ज़मींदारों के घरों से बोरे-के-बोरे चावल हरिजनों के शोक-संतप्त परिवारों के बीच बाँटा गया। बाद में उसी वर्ष ज़िला-

धीश कुशेश्वर झा ने दिआरा की 356 एकड़ विवादास्पद ज़मीन को फुलारी (संदेश) के हरिजनों के बीच बाँटा—इसमें से ढाई एकड़ ज़मीन झपसी यादव की विधवा को मिली। झपसी यादव नक्सलवादियों पर ज़मींदारों के हमले में मारे गये थे।[1]

1975 का वर्ष हरिजनों के लिए खून-खराबे से भरा वर्ष था। किसानों और पुलिस के बीच 3 अप्रैल को पीरो के हनुमानछपरा में, 14 अप्रैल को सहार में, 2 जुलाई को बहुआरा, सहार और बाबूबाँध में तथा 28 नवंबर को सहार में हुई 'मुठभेड़ों' ने रक्तपात की एक मिसाल क़ायम की थी। 'ऑपरेशन थंडर' ने जनता के खून के प्यासे जवानों को भोजपुर के गाँवो की असंख्य बस्तियों में घेराव और विनाशअ-भियान के लिए जिस तरह छुट्टा छोड़ दिया वह बेमिसाल है। 23 मई, 1975 को बी० एन० सिन्हा ने बताया कि नालंदा ज़िले में हिलसा से लेकर भोजपुर में नवानगर और रोहतास ज़िले में नसरीगंज तक ज़िले की सीमा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।[2]

आंदोलन को रोकने के लिए ज़मींदारों के बीच हो रहे शानदार गठबंधन को 'जन-प्रतिरोध दस्ता' नाम से प्रचारित करने की भी तमाम कोशिशें हो रही थीं। इमरजेंसी के काले परदे ने नर-संसार की अनेक घटनाओं को प्रकाश में नहीं आने दिया। जिस समय भोजपुर में ज़बरदस्त मारकाट चल रही थी, इसी तरह की घटनाएँ पास के पटना ज़िले में भी जारी थीं।

3 जून, 1975 को मसौढ़ी ब्लाक के लगभग 5 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में गहरुअवाँ गाँव में सब-इंसपेक्टर सामंतसिंह ने 15 नक्सलवादियों को मशीनगन से उड़ा दिया।[3] गाँवों में पुलिस द्वारा जितने लोगों की हत्याएँ की जाती थीं उनकी तुलना में अख़बारों को दी जाने वाली संख्या अविश्वसनीय रूप से बहुत कम होती थी। वस्तुतः बहुआरा (सहार) में पुलिस और नक्सलवादियों के बीच हुई लम्बी लड़ाई के बाद जब एक पत्रकार इस गाँव में गया तो उसे जो-कुछ देखने-सुनने को मिला वह अत्यंत भयावह था। सब-इंसपेक्टर ने उसकी तरफ़ मुख़ातिब होते हुए कहा, "अगर हरिजनों के बारे में सरकार अनाप-शनाप नहीं बकती होती तो हम लोग समूचे गाँव को भस्म कर दिये होते।"

इन वर्षों में 'मुठभेड़' की ख़बरों में वृद्धि हुई है, पर उन पर परदा नहीं डाला जा सका है। 1979 के अंत तक सहार के गाँवों में ज़मींदारों के मकानों पर पुलिस-छावनियाँ क़ायम कर दी गयी थीं और गड़हनी की पुलिस छावनियों को और भी ज़्यादा सैनिकों और बंदूकों से लैस किया गया था। इस समय तक ज़मींदारों के संगठन बन चुके थे और अनेक अवसरों पर इन संगठनों ने पुलिस का साथ दिया था। पटना के अख़बारों ने तो गुरपा गाँव में ज़मींदारों के हाथ बेकुसूर हरिजनों की हत्या को भी 'नक्सलवादियों' द्वारा की गयी हत्या का नाम दे दिया।[1] लेकिन ज़मींदारों के हाथ से बाज़ी निकलती जा रही थी। अपने बेटे-बेटियों, पति-पत्नियों की हत्या या गिरफ़्तारी के इतने दिनों बाद जो लोग पीछे बच रहे हैं वे घुटने टेकने को तैयार नहीं थे।

1. 'द इंडियन नेशन', 2 दिसम्बर, 1975
2. वही, 24 मई, 1975
3. 'द सर्चलाइट', 5 जून, 1975

पकरी चौक,
आरा
14-12-77

प्रिय लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायणजी,

मेरी शुभकामनाएँ

इमरजेंसी की 19 महीने की यातना और पीड़ा के बाद हमारे देशवासियों ने राहत की साँस ली। घुटन-भरे दिन बीत गये और जनता ने आज़ादी की खुली और स्वच्छ वायु में साँस लेने की आशा की; गुलामी की जंज़ीरें ढीली पड़ीं और अंततः जनता उससे मुक्त हुई। जनता पार्टी को उसके पूरे स्वरूप में विश्व की मान्यता दिलाने का श्रेय काफ़ी हद तक आपको है। इससे कोई इंकार भी नहीं कर सकता।

महोदय, जब आप जेल से छूटकर आये तो लोगों ने सोचा कि उनका मसीहा सूली पर से उतरकर आ गया है। लोकसभा और विधानसभा चुनावों में लोगों की मानसिक स्थिति ऐसी थी कि यदि जनता पार्टी का एक भी उम्मीदवार कहीं से हार जाता था तो लोग इसे अपना व्यक्तिगत नुक़सान समझते थे। चुनावों में जनता पार्टी की जीत के बाद हमने सोचा कि भारत अब एक नये इतिहास की रचना करने जा रहा है।

जनता सरकार ने जो पहला क़दम उठाया वह सभी नक्सलवादी और आनंद-मार्गी अपराधियों को आम माफ़ी देना था, जिन्होंने एक समय में देश में आतंक फैला रखा था। आपके विचारों से प्रभावित सरकार को यह विश्वास हो गया कि वे अब पूरी तरह बदले हुए नर-नारी हैं, क्योंकि जनता सरकार की स्थापना के साथ स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आया है। जनता सरकार के सत्ता में रहने के कुछ ही महीनों बाद देश ने एक ज़बरदस्त मोड़ लिया। उपभोक्ता सामग्रियाँ या तो बाज़ार से ग़ायब हो गयीं या उनकी क़ीमतें इतनी बढ़ गयीं कि वे आम आदमी की पहुँच से परे हो गयीं। देश में हर तरफ़ अपराध में वृद्धि हुई, हड़तालों और तालाबंदी का दौर फिर से शुरू हो गया, हर वर्ग के सरकारी कर्मचारी अपनी पुरानी

1. 'द इंडियन नेशन', 13 मार्च, 1977

लालचभरी माँगों को लेकर आवाज़ ऊँची करने लगे, किसानों पर करों में वृद्धि हो गयी, परीक्षाओं में फिर पढ़ने-लिखने के झंझट से छुटकारा मिल गया, पुलिस की गोलियों से आसमान गूँजने लगा, चाहे किसी भी कारण से हुई हत्या को हरिजनों और कमज़ोर वर्गों पर अत्याचार कहा जाने लगा, मंत्रियों ने अपने पूर्ववर्तियों से छल-कपट और झूठ का लबादा उधार ले लिया, अफ़सरों में पहले से भी ज्यादा भ्रष्टाचार फैल गया, जंगली घास की तरह भाई-भतीजावाद में वृद्धि हुई और विधायकों ने शांतिपूर्ण विचार-विमर्श के ज़रिये समस्याओं को हल करने के बजाय कर्मचारियों को हड़काने का सहारा लिया।

भारत की नयी आज़ादी के इतिहास का पहला पन्ना इस प्रकार लिखा गया।

महोदय, आपको पता है कि रेडियो का प्रत्येक प्रसारण तथा प्रत्येक अखबार हरिजनों तथा कमज़ोर वर्ग पर अत्याचार जैसे समान विषय पर जनता पार्टी या कांग्रेस के किसी-न-किसी नेता को उद्धृत करता है। हर पार्टी के नेता यही दावा करते हैं कि केवल वे ही हरिजनों तथा कमज़ोर वर्ग के लोगों के रक्षक हैं, लेकिन व्यवहार में वे व्यापक प्रचार करने के अलावा उनके लिए कुछ नहीं करते हैं। इस दौड़ में एक पार्टी दूसरी पार्टी को पीछे छोड़ने में लगी रहती है। सत्ता में रहने पर कांग्रेस ने भी ऐसे ही नारों के ज़रिये हरिजनों को तुष्ट रखने का प्रयास किया था, पर हरिजनों ने असलियत समझने में चूक नहीं की और समय आने पर उन्होंने कांग्रेस को लात मारकर सत्ता से हटा दिया। क्या जनता सरकार के साथ ऐसा नहीं होगा ?

महोदय, 1974 में आप सहार तथा इसके आसपास के इलाक़ों में गये थे। आपको निश्चय ही जानकारी होगी कि किसने किसकी हत्या की अथवा किसने किस पर अत्याचार किया। लेकिन इसे हमेशा हरिजनों पर अत्याचार कहा गया, हालाँकि हरिजनों के अलावा भी लोगों की मौत हुई। आपको शायद अभी भी एकवारी, चवरी, दुल्लमचक, फुलारी, डेहरी, बंशीडेहरी, बेरथ, गुरपा और कुछ अन्य गाँवों में हुई हत्याओं की याद हो। केवल तथाकथित ऊँची जातियों के मासूम लोग इसके शिकार हुए। जब पुलिस ने चवरी गाँव में नक्सलवादियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई की तो आपके चेलों ने इतनी चिल्लपौं मचायी कि श्री कर्पूरी ठाकुर ने आमरण अनशन शुरू कर दिया कि चवरी के हत्यारों को जेल से रिहा किया जाये। उनके ज़ोर देने पर चवरी कांड के हत्यारों को रिहा कर दिया गया और एक न्यायिक जाँच बैठायी गयी। आयोग ने लम्बी जाँच-पड़ताल के बाद जो फ़ैसला दिया उससे श्री ठाकुर को खीझ ही हुई।

चूँकि नक्सलवादियों को आपके आदेश पर रिहा किया गया था, वे हर रोज़ गिरोह-के-गिरोह बनाकर मार-काट कर रहे हैं और हत्याएँ करना उनके लिए

एक आम बात हो गयी है। अपने पिछले कामों के लिए उनके मन में न तो कोई पछतावा है और न वे अपने भावी कार्यक्रमों को छिपाने की कोशिश करते हैं। वे खुलेआम इस बात का दावा करते हैं कि तथाकथित बड़ी जाति के लोगों की हत्या करके वे समाज में परिवर्तन ला देंगे। भोजपुर ज़िले के बाघी, दिदुआ और केसठ में हत्या की ताज़ा वारदातें हुई हैं। क्या आपको इन सारी बातों की जानकारी नहीं है अथवा आप जान-बूझकर सच्चाई से मुँह मोड़ना चाहते हैं ? मुझे यक़ीन है कि आपको यह अच्छी तरह मालूम है कि आपके प्रिय हरिजन लोग ही नक्सलवादी के रूप में काम कर रहे हैं—अपने इन्हीं चहेते हरिजनों के लिए आपने जाति-प्रथा को समाप्त करने की दलील दी है। गाज़ीपुर ज़िले के शेरपुर में जो घटनाएँ हुई उनमें गाँव के हरिजनों ने ही सबसे पहले हत्याएँ शुरू कीं और जब ऊँची जाति के लोगों ने इन हत्याओं के बदले में कार्रवाई की तब आप हाथ में लट्ठ लेकर सामने आ गये और हरिजनों की तरफ़ से आपने ढेर सारे उत्तेजक बयान दिये। वहाँ आपने सत्य और न्याय को पूरी तरह ताक पर रख दिया।

बिहार के माननीय मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर ने बेलछी[1] में मारे गये लोगों के परिवार वालों को पाँच-पाँच हज़ार रुपया मुआवज़े के रूप में दिया है। भोजपुर ज़िले के सहार, संदेश और तरारी इलाक़ों में असंख्य हत्याएँ हुई हैं। वहाँ कितने परिवारों को इस तरह का मुआवज़ा दिया गया ? महोदय, क्या किसी हरिजन और तथाकथित बड़ी जाति के सदस्य की ज़िन्दगी में कोई फ़र्क है ? लेकिन ऐसा लगता है कि आपकी और आपके चेलों की निगाह में दोनों के जीवन में फ़र्क है। अगर कोई हरिजन मारा जाता है—भले ही वह अपने व्यक्तिगत चाल-चलन अथवा पुलिस की बदमाशी से मारा गया हो—आप और आपके चेले धुआँधार वक्तव्यों के साथ सामने आ जाते हैं, लेकिन तथाकथित बड़ी जाति के लोगों को जब नक्सलवादी लोग काटकर टुकड़े-टुकड़े कर रहे होते हैं तब आपकी निगाह इन बातों पर नहीं जाती।

महोदय, आपने वर्ग-युद्ध का आह्वान किया है, जिसे साधारण भाषा में कहा जाये तो यह एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग को मार डालने का आह्वान है। आपके कहने का मतलब भी यही है, लेकिन दिखावे के लिए आप इसे अहिंसा के साथ जोड़ देते हैं। वर्ग-युद्ध के आपके आह्वान में और अहिंसा की व्याख्या में तनिक भी संगति नहीं है। आप जानते हैं कि दबे हुए लोगों को अधिक समय तक दबाकर नहीं रखा जा सकता। एक दिन वे उठ खड़े होंगे और खुद को संगठित करके आपकी चुनौती का सामना करने के लिए तैयार हो जायेंगे। तब आपको पता चलेगा कि आज आप जो कुछ बोल रहे हैं उस भाषा का वास्तविक मतलब क्या होता है।

1. बिहार के पटना ज़िले में 1977 में हरिजनों के नर-संहार का एक दृश्य-स्थल।

महोदय, आपने न्यायपालिका की प्रतिष्ठा के लिए आवाज़ उठायी है। जब अनेक वरिष्ठ जजों की पदोन्नति के अवसरों की अवहेलना करके श्री ए०एन० राय को सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश बनाया गया तो आपने उसकी भर्त्सना की थी। लेकिन आज क्या हो रहा है? गुजरात उच्च न्यायालय के एक कनिष्ठ जज को सर्वोच्च न्यायालय की पीठ में शामिल कर लिया गया है और ऐसा करते समय दो वरिष्ठ जजों की अवहेलना की गयी है। इस घटना से क्षुब्ध होकर एक जज ने इस्तीफ़ा भी दे दिया है। लेकिन आज आप क्यों खामोश हैं? क्या आप यह महसूस नहीं करते कि जनता सरकार भी देश के इतिहास को उसी क़लम और स्याही से और संभवतः उसी काग़ज पर लिख रही है जो पिछली कांग्रेस सरकार ने छोड़ रखा है? आप जानते हैं कि जनता सरकार—खासतौर से बिहार में—बुराइयों का गढ़ बन गयी है। और फिर भी आप इसकी तरफ़दारी करते हुए यह कहते रहते हैं कि इसके पास कोई जादू की छड़ी नहीं है जिससे एक ही दिन में सारी बुराइयाँ समाप्त कर दी जायें। जब श्रीमती गांधी का देश पर शासन था, आपको हर ओर बुराइयाँ-ही-बुराइयाँ दीख रही थीं। अब चूँकि उस पार्टी का शासन है जिसकी स्थापना आप द्वारा हुई है, इसलिए आपको हर तरफ़ गुलाब की पंखुड़ियाँ बिछी हुई नज़र आ रही हैं। शायद आप ऐसा ही सोचते हैं।

महोदय, हमें पूरा विश्वास है कि आप एक निष्पक्ष व्यक्ति हैं और आपको सत्ता में आने की भूख नहीं है। हमें उम्मीद है कि आप हर व्यक्ति के साथ समान न्याय करेंगे।

आपका ही
राजकिशोर सिंह
एडवोकेट, आरा

श्री जयप्रकाश नारायण को
14 दिसम्बर, 1977 को भेजा गया पत्र।

ज़मींदार लोग और उनके लठैत अधिक समय तक निष्क्रिय बनकर नहीं रह सके। सहार में एकवारी के एक ज़मींदार शिवपूजन सिंह की 23 मार्च, 1971 को हुई हत्या से लेकर 3 जनवरी, 1979 को आरा के नरही-चाँदी में हुए कांड तक एक दीर्घकालिक युद्ध के आठ वर्ष बीत चुके हैं और छापामारों द्वारा बदमाश ज़मींदारों और उनके लठैतों के ख़िलाफ़ छेड़े गये संघर्ष में कमी आने का कोई संकेत नहीं मिल रहा है। इलाक़े के प्रमुख अत्याचारियों मसलन हरिसिंह, थाना सिंह, जगदीश सिंह और मुनिलाल की हत्या ने साबित कर दिया है कि अत्याचारी की दुखद मृत्यु ही होती है। इस सशस्त्र संघर्ष में राजपूत और भूमिहार ज़मींदारों ने असंतुष्ट होकर खेतिहर मज़दूरों के ख़िलाफ़ अपने संगठन बना लिये हैं और हथि-

यारों से लैस इन संगठनों के ज़रिये वे अपने अत्याचार को और तेज़ कर रहे हैं।

चवरी की घटना के बाद यह पूरी तरह स्पष्ट हो गया कि ज़मींदार लोग नक्सलवादियों के सफ़ाये के कार्यक्रम में सरकारी तंत्र के साथ हर स्तर पर सहयोग करेंगे। 'एक भयभीत ग्रामीण' की ओर से लिखा गया रहस्यमय पत्र, सहायता के लिए एक ज़मींदार द्वारा किया गया अनुरोध आदि से सरकारी क्षेत्रों में जो प्रतिक्रिया देखने को मिली वह चवरी हत्याकांड से बहुत साफ़ हो जाती है। चवरी की घटना के बाद राजसत्ता के साथ ज़मींदारों का संबंध और राज्य के प्रति ज़मींदारों का विश्वास और मज़बूत हो गया, लेकिन चवरी के बाद हदियाबाद, गुरपा, सोनाटोला तथा अन्य गाँव होकर हरिजनों का जो खून प्रवाहित हुआ उसने यह साबित कर दिया कि इस तरह की घटनाएँ ज़मींदारों और पुलिस के बीच स्थायी अंतर्बन्धन के कारण घटित हुई।

यह भी आरोप लगाया गया कि बेरथ, बाघी और एकवारी में 1974 में ऊँची जातियों के ज़मींदारों द्वारा स्थापित प्रशिक्षण-केन्द्रों की स्थापना में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने मदद पहुँचायी थी। 1974-75 के आसपास आरा में 'कुँअर सेना' का कार्यालय खोला गया। वीरबहादुर सिंह इसके अध्यक्ष थे। इस संगठन का उद्देश्य उन किसानों को आतंकित करना था जो ज़मींदारों की हुक्मउदूली कर रहे थे। सहार ब्लाक में बेरथ और एकवारी में तथा संदेश ब्लाक में फुलारी में हुए हत्याकांडों में कुँअर सेना का हाथ बताया जाता है।

28 मई, 1975 को पुलिस उप-महानिरीक्षक (नक्सलवादी) शिवाजीप्रसाद सिंह ने एलान किया कि बिहार सरकार ने भोजपुर और पटना ज़िले के सभी स्वस्थ पुरुषों को हथियारों से लैस करने का फ़ैसला किया है, ताकि वे नक्सलवादियों के ख़िलाफ़ अपनी रक्षा कर सकें।[1] इससे एक सप्ताह पूर्व मध्य क्षेत्र के उप-महानिरीक्षक (पुलिस) ने इस बात की पुष्टि की थी कि भोजपुर, नालंदा, रोहतास और गया ज़िलों में थाना-स्तर पर सभी पुलिस-अफ़सरों को आदेश दिया गया है कि नक्सलवादियों द्वारा हथियार छीनने की अभूतपूर्व घटनाओं को देखते हुए वे हर तरह से ग़ैर-लाइसेंसशुदा हथियारों को ज़ब्त कर लें। इसके अलावा 1975 का उत्तरार्द्ध आते-आते बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री जगन्नाथ मिश्र ने बिना किसी प्रचार के भोजपुर की यात्रा की और ज़मींदारों तथा उनके बेटों के लिए स्थापित 'फ़ायरिंग ऐंड शूटिंग सेंटर' का उद्घाटन किया।[2]

दूसरी तरफ़, ज़मींदारों को बिना किसी रोक-टोक के बंदूकों के लाइसेंस दिये जाने से स्थिति और ख़राब हो गयी और ऊँची जातियों के लोगों की ताक़त में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। व्यवहार में ज़िलाधीश ही वह अधिकारी है जो बंदूकों के

1. 'द इंडियन नेशन', 30 मई, 1975
2. पटना से किशन पटनायक द्वारा प्रकाशित एक समाजवादी पत्रिका 'सामयिक वार्ता'।

लाइसेंस प्रदान करता है। लाइसेंस के लिए अर्ज़ियाँ सब-डिवीज़नल ऑफ़ीसर के पास भेजी जाती हैं जिसे वह आगे बढ़ा देता है, ताकि इस पर पूरी-पूरी रिपोर्ट मिल जाये। इसके बाद संबद्ध अर्ज़ी फिर एस० डी० ओ० के पास वापस पहुँचती है और वह इसे अंतिम आदेश के लिए ज़िलाधीश के पास भेज देता है। पुलिस-अधीक्षक के० डी० सिंह का कहना है कि उनके कार्यकाल में यही तरीक़ा अमल में लाया जाता था। लेकिन चवरी आयोग के समक्ष उन्होंने स्वीकार किया कि जब ज़िलाधीश के पद पर श्रीमती कृष्णा सिंह आयीं तब इस तरीक़े में मामूली-सा परिवर्तन कर दिया गया। के० डी० सिंह ने कहा कि "कभी-कभी वह इस तरह की अर्ज़ियों की रिपोर्ट और राय के लिए मेरे पास भेजती थीं और इस प्रकार बंदूक के लाइसेंस से संबंधित तमाम अर्ज़ियाँ रोज़ाना बहुत बड़ी तादाद में मेरे पास पहुँचती थीं।"[1] बड़ी जातियों के पास और ख़ासतौर से ज़मींदारों के पास काफ़ी बंदूकें हो गयी थीं। ये आँकड़े जनता के सामने लाये जाने चाहिए। हथियारों के इस जमाव को 'गुहार' अर्थात ऊँची जातियों के लोगों को एकजुट करने का आह्वान नाम से जाना जाता था।

चवरी, सोनाटोला और बाबूबाँध जैसे स्थानों में ज़मींदारों के बीच ज़बरदस्त एकता क़ायम हुई, लेकिन हदियाबाद और गुरपा में तो यहाँ तक देखने को मिला कि ज़मींदारों की कार्रवाईयों में पुलिस ने छुपे तौर पर इनका साथ दिया। हदियाबाद में हुए नर-संहार से यह पूरी तरह साबित हो गया कि किसानों के बढ़ते हुए असंतोष के आगे ज़मींदार लोग झुकने को तैयार नहीं हैं। 2 जून, 1975 को जगदीशपुर ब्लाक के हदियाबाद गाँव में ज़मींदारों ने भयंकर लूटपाट की। प्रथम सूचना-रिपोर्ट दर्ज कराने वाले व्यक्ति निर्मोही राम ने 60 ज़मींदारों के ख़िलाफ़ नामज़द रिपोर्ट लिखायी—इनमें से अधिकांश हदियाबाद के थे जो ख़ुद लूटपाट में शामिल थे। उसने बताया कि बग़ल के दो गाँवों अयार और रतनपुर, के कुछ ज़मींदार भी इस वारदात में शामिल थे। कुल मिलाकर 46 लोग गिरफ़्तार किये गये। यह पूछे जाने पर कि इस लूटपाट के पीछे कौन-से कारण थे, निर्मोही राम ने जवाब दिया कि "ई वाक्या का कारण हम न कह सकी लेकिन हदियाबाद के लोग से अदावत पहले से आवत बा।"[2] पुलिस-सूत्रों ने स्वीकार किया कि हदियाबाद के ज़मींदारों द्वारा नक्सलवाद-विरोधी यह पहली कार्रवाई नहीं है—इससे पहले 26 मार्च, 1975 को इन लोगों ने रामविश्वास महतो को ज़िंदा जला दिया था, क्योंकि उस पर नक्सलवादी होने का संदेह था।

जगदीशपुर ब्लाक के आस-पास के गाँवों में ज़मींदारों द्वारा की जाने वाली

1. आर० सी० एफ़० आई० सी०
2. कारण अस्पष्ट हैं, लेकिन हदियाबाद के ऊँची जातियों के लोग काफ़ी पहले इसकी तैयारी कर रहे थे।

लूटपाट केवल हरिजनों तक ही सीमित नहीं थी। खेतिहर मज़दूर यदि अपने पाँव पर खड़े होने की कोशिश करते थे तो ज़मींदारों को काफ़ी क्रोध आता था। सोहनगी की घटनाएँ इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं। जगदीशपुर ब्लाक के इस गाँव में आठ बीघे का एक प्लाट था जिसे 'मंदिर की ज़मीन" कहते थे और यह ज़मीन क्षितीश्वर भगवान को समर्पित थी। मंदिर के क्षेत्र पर साधुओं के एक सम्प्रदाय का स्वामित्व था जो उत्तर प्रदेश में गोरखपुर के रहने वाले थे। 1912 से ही इस ज़मीन को बटाईदार के रूप में दुसाध, चमार और यादव जोत रहे थे। 1974-75 में जब साधु लोग इस मंदिर को छोड़कर वापस चले गये तो इस ज़मीन की मिल्कियत आरा के एक वकील सच्चिदाप्रसाद के हाथ में आ गयी।

रामसिंह नामक एक राजपूत ज़मींदार की काफ़ी दिनों से इस ज़मीन पर निगाह लगी थी। वह यादवों, दुसाधों और चमारों को बराबर धमकी दे रहा था, क्योंकि ये लोग अभी भी उस ज़मीन के बटाईदार थे। 1977 आते-आते यादवों के प्रति उसके मन में और भी ज़्यादा ग़ुस्सा पैदा हो गया। सम्पत यादव और गिरजा यादव नामक दो भाइयों ने सोहनगी के अपने बिरादरी वालों को सलाह दी और इन लोगों ने अन्य बटाइदारों से कहा कि सब लोग आपस में पैसा जुटाकर एक पम्पिग-सेट ख़रीद लें जिसका सामूहिक तौर पर इस्तेमाल किया जा सके। फलस्वरूप यादव-भाइयों ने अपनी ढाई बीघे ज़मीन को बंधक रखकर लगभग पाँच हज़ार रुपये लगाकर एक पम्पिग-सेट ख़रीद लिया।

अतीत में इन मज़दूरों ने रामसिंह के आदेशों को मानने से इंकार किया था। एक रात रामसिंह के नेतृत्व में किराये के बीस गुंडों का एक गिरोह खेत पर पहुँचा और पम्पिग-सेट को लेकर चल दिया। वहाँ खड़े निहत्थे मज़दूर लाचारी के साथ यह सब देखते रहे। आज तक सोहनगी के ग्रामीणों को न्याय नहीं मिल सका। न्याय पाने की उम्मीद में जितनी अर्ज़ियाँ लिखी गयीं और जो मुक़दमेबाज़ी हुई उसमें इन लोगों की रही-सही कमाई भी बरबाद हो गयी।

1976 में भोजपुर के खेतिहर मज़दूरों को संगठित करने के काम में लगी बनारसी देवी गुप्ता नामक एक महिला ने सोहनगी के ग्रामीणों से संपर्क किया और सोहनगी तथा अड़ोस-पड़ोस के इचरी, हदियाबाद तथा बरनाव के लोगों को न्यूनतम मज़दूरी के बारे में सरकार के नियमों की जानकारी दी। इस सिलसिले में बुलायी गयी सभा में जाने के लिए विश्वेश्वर दुसाध नामक एक मज़दूर ने जब अपने मालिक रामबचन सिंह से इजाज़त माँगी तो उन्होंने साफ़ इंकार कर दिया। फिर भी वह इस सभा में गया, लेकिन सभा से लौटने के बाद वह यह देखकर सकते में आ गया कि उसकी फसल काट ली गयी है।

इस इलाक़े में थानासिंह को अपने कारनामों के लिए जो कुख्याति मिली थी, रामसिंह उसी परंपरा का निर्वाह कर रहा था और उसके बारे में कहा जाता है

कि अपने पूर्वज की तुलना में वह ज्यादा ही अत्याचारी है।

मालिक से मनमुटाव करके यहाँ का कोई मजदूर चैन की नींद नहीं सो सकता और उसे हमेशा यह भय बना रहता है कि अयार-इचरी-हदियाबाद के जमींदारों के गुंडे उसे छोड़ेंगे नहीं।

सोलह सौ की आबादी वाला हदियाबाद गाँव 1972 से ही उबलने लगा था। यहाँ राजपूतों के एक सौ परिवार हैं और गाँव की एक हज़ार बीघे ज़मीन में से आठ सौ बीघे ज़मीन पर इन्हीं लोगों का अधिकार है। पिछड़ी जाति के लोगों में दूसरों के मुक़ाबले अहीरों की स्थिति अच्छी है और इनके पंद्रह परिवार हैं। हदियाबाद की यह एक ख़ास विशेषता है कि यहाँ साठ प्रतिशत से अधिक लोगों को औपचारिक शिक्षा प्राप्त है। जिन दिनों जगदीश महतो अपने छोटे ग्रुप के साथ भोजपुर के गाँवों का अध्ययन कर रहे थे, उनकी भेंट फागू महतो नामक एक कुरमी से हुई। निम्न जातियों की औरतों के साथ बलात्कार करने की राजपूतों की आदत से फागू महतो बहुत क्षुब्ध रहा करते थे। 1972 में जगदीश महतो की मृत्यु के बाद हदियाबाद के इर्द-गिर्द के गाँवों में फागू महतो आम चर्चा का विषय बन गये थे।

इस समय तक हदियाबाद में राजपूतों और अहीरों के बीच, जो पिछड़े वर्ग के लोगों में संख्या में सबसे ज्यादा थे, तनाव पनप रहा था। कुछ ही दिनों बाद यदु यादव और भूआर यादव को राजपूतों ने मिलकर पीटा। बताया जाता है कि जिस समय मार-पीट चल रही थी, एक दूसरे अहीर हरिद्वार यादव ने हमलावर राजपूतों में से एक व्यक्ति रामप्रवेश सिंह को धमकी दी और कहा कि इसके परिणाम भयंकर होंगे। इस बीच सात-आठ बीघे जोत वाले मुखिया जगदीश सिंह और उनके पुत्र घटना-स्थल पर पहुँच गये और उनके बीच-बचाव करने से उस समय तो झगड़ा निपट गया, लेकिन तनाव बना रहा।

इधर चमारों के अंदर निरंतर असंतोष बढ़ता जा रहा था। बाद में पुलिस को यह संदेह होने लगा कि कम-से-कम एक दर्जन नौजवान—जिनमें अधिकांश हरिजन थे—पीरो के अगिआँव गाँव के विज्ञान-स्नातक 30-वर्षीय फागू महतो से लगातार मिलजुल रहे हैं और संगठित हो रहे हैं।

फागू इन नौजवानों से खुलेआम कहा करता था कि वे अपने घर की औरतों की इज्ज़त के लिए संघर्ष करें। गाँव में फागू की आवाजाही से ज़मींदारों के अंदर डर पैदा हो गया और अपनी ही बिरादरी के मुखिया की मदद से इन लोगों ने जून 1974 में फागू को पकड़ लिया और उसके हाथ-पैर बाँध दिये। बद्री चमार ने खुद को फागू का चाचा बताते हुए ज़मींदारों के चौकीदार की हिरासत से फागू को छुड़ाना चाहा, लेकिन इसमें उन्हें कामयाबी नहीं मिली। फागू के ज़िद करने पर इन लोगों ने उसके हाथ की रस्सियाँ खोल दीं। मुखिया ने उसको फुसलाने के

लिए खाना खाने का आग्रह किया, लेकिन फागू ने इंकार कर दिया। बाद में मुखिया फागू को लेकर अपने मकान के अंदर घुसा और इसे सम्मान का सूचक समझकर फागू ने उसकी बात मान ली। इसके बाद मुखिया ने पुलिस वाले से काफ़ी अनुनय-विनय किया और फागू को रिहा कर दिया गया। फागू रिहा हो गया, लेकिन उसने मुखिया को माफ़ नहीं किया।

11 अगस्त, 1974 की रात में हरिजनों के एक ग्रुप ने हरिजनटोला के पास मुखिया और उसके बेटे पर हमला कर दिया। मुखिया का बेटा उमेश घायल होकर महीनों अस्पताल में पड़ा रहा। मुखिया की लाश कुएँ में मिली। चौकीदार पूरन गडेरी ने प्रथम सूचना-रिपोर्ट दर्ज करायी, लेकिन इस रिपोर्ट में किसी का नाम नहीं दिया। अलबत्ता उमेश सिंह ने अस्पताल में दिये गये अपने बयान में 11 व्यक्तियों के नाम लिखाये। ये थे—लक्ष्मण चमार, महेश्वर, नारायण, बद्रीराम, निर्मोही राम, 15-वर्षीय मेदुनाथ राम, 15-वर्षीय राजेन्द्र राम, दुलार राम, भुतेली राम, रामनाथ राम और दुर्योधन राम। सेशन जज के० डी० शर्मा ने 11 में से 6 को आजीवन कारावास की सज़ा दी। यह सारा कुछ जगदीशपुर के मुक़दमा नं० 8 (8) 74 की परिणति था।

पुलिस सब-इंसपेक्टर कामेश्वर सिंह ने इनमें से अनेक लोगों को विस्फोटक पदार्थ रखने के मामले में फँसा दिया। आर्म्स-ऐक्ट की धारा 25 के अंतर्गत दर्ज किये गये एक दूसरे मामले (केस संख्या—10 (8) 74) में धनपत राम, राजेन्द्र राम, मोती राम, भिखारी राम, जिन्दर राम और दुलार राम को फँसाया गया। ये लोग दिसम्बर 1977 तक पुलिस की हिरासत में रहे और जब नक्सलवादियों को माफ़ी दी गयी इसके बाद ही वे ज़मानत पर छूट सके। इनमें से कोई भूमिगत नहीं हुआ।

मुखिया की हत्या वाली वारदात के समय लक्ष्मण चमार आरा के सदर अस्पताल में घायल अवस्था में पड़े थे। उनका कहना था कि उस रात अपने झपोड़े से निकलकर जब वह पेशाब करने के लिए जा रहे थे तो किसी ने भाले से उन पर वार किया। इसके अलावा एक भी गवाह ऐसा नहीं था जो मुखिया वाली घटना को देखने या अपराधियों को पहचानने का दावा कर सके। यहाँ तक कि चौकीदार ने भी इंकार कर दिया। इस बात की काफ़ी अफ़वाह थी कि उमेश सिंह ने राजपूत सब-इंसपेक्टर के साथ साँठ-गाँठ करके उन सारे लोगों को फँसा दिया जो ज़मींदारों से असंतुष्ट नज़र आ रहे थे।

अपनी जाति के ही मुखिया जगदीश सिंह की हत्या के बाद भी ज़मींदारों की मानसिक स्थिति में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। 18 सितम्बर, 1973 को शिवनारायण सिंह और बहादुर सिंह ने पुलिस-हिरासत में क़ैद मोतीराम की पत्नी दरबी देवी की भैंस को पकड़ लिया और उसकी पूंछ काट दी। वह बेचारी भैंस की पूंछ

लेकर चारों तरफ़ दौड़ती रही, लेकिन न तो किसी पुलिस वाले ने और न प्रशासन के किसी अधिकारी ने उसकी रिपोर्ट दर्ज की। हदियाबाद में तनाव बढ़ता गया और विभिन्न जातियों के बीच खाई चौड़ी होती गयी। धीरे-धीरे ज़मींदारों का एक संगठन तैयार हो गया जिसमें राजपूतों के प्रभुत्व वाले अयार, सिमराँव, बरनाव, इचरी और रतनपुर गाँवों के ज़मींदार शामिल थे।

26 मार्च, 1975 को ज़मींदारों के एक गिरोह ने 16-वर्षीय रामबिश्वास महतो को उस समय पकड़ लिया जब वह ट्यूबवेल पर नहा रहा था और उसे ख़ूब पीटने के बाद पुआल के ढेर पर फेंक दिया और उसमें आग लगा दी। रामबिश्वास महतो निर्मोही राम और भूतेली चमार का साथी था। गाँव की एक बूढ़ी औरत (बहादुर सिंह की माँ) ने राजपूतों से बहुत विनती की कि वे ऐसा न करें, लेकिन उन पर कोई असर नहीं हुआ। यह घटना दिन में 11 बजे की है। रामबिश्वास की शोक-संतप्त माँ ने अपनी आँखों के सामने अपने बेटे को जलते देखा था और वह दौड़ कर गड़ हनी पुलिस-स्टेशन तक गयी, लेकिन पुलिस के गाँव में आते-आते रामबिश्वास का शरीर जलकर राख हो गया था। इस नृशंस कांड के गवाह रतन और भँवर यादव ने बताया कि एक नामज़द रिपोर्ट दर्ज की गयी है जिसमें 23 व्यक्तियों के नाम हैं। इनमें से कुछ प्रमुख नाम हैं—बनबहादुर सिंह, साहिब सिंह, रंगबहादुर सिंह, ज्वालासिंह और रामचन्द्र सिंह। गाँव वालों ने रामबिश्वास की माँ को उसके मायके भेज दिया। दरअसल उसका पति बहुत पहले गुज़र गया था और रामबिश्वास के अलावा उसके पास और कोई ऐसी चीज़ नहीं थी जिसके लिए वह अपनी ससुराल में रहती।

हदियाबाद में ज़मींदारों की शामत जल्दी ही आने वाली थी। अयार, इचरी, बरनाव और सिमराँव के ज़मींदारों ने 2 जुलाई को सवेरे ही हदियाबाद की चमार टोली में आग लगा दी। बताया जाता है कि सुरेन्द्र सिंह और रामबरन सिंह ने हमलावरों का नेतृत्व किया था।

हिंसा का वातावरण तेज़ी से तैयार हो रहा था। अभी एक दिन पहले ही चार घंटे तक ज़मींदार चमार टोली पर बंदूकों से गोलियाँ चलाते रहे थे। गोलियों की आवाज़ सुनकर घबराहट में टोले के कुछ लोग भागकर पड़ोस के गाँव भरेसिया चले गये थे और वहाँ से उन्होंने पुलिस को जानकारी दी। लालगंज पुलिस-स्टेशन को जाने वाली सड़क पर इन्हें दो कांस्टेबल मिले, पर इन दोनों ने बड़ी लाचारी से जवाब दिया कि "एक रिवाल्वर और दो सिपाही भला क्या कर सकते हैं?" निर्मोही राम ने अपनी प्रथम सूचना-रिपोर्ट में अनेक ज़मींदारों के नाम लिखवाये—इनमें से अगले दिन वाले अग्निकांड में कई ज़मींदार प्रत्यक्ष रूप से शामिल थे।

जगदीशपुर थाने में दर्ज (केस सं० 6.7.8 (8) 74) मामले पर यदि विश्वास

करें तो जिस समय यह अग्निकांड हुआ, पुलिस के दस-बारह कर्मचारी वहाँ मौजूद थे। इस घटना के चश्मदीद हरिजनों ने दावा किया कि पुलीस-अधीक्षक कामेश्वर सिंह बड़ी उत्तेजना के साथ सब-कुछ देखते रहे, लेकिन उन्होंने अपने आदमियों को एक बार भी हमलावरों पर गोली चलाने को नहीं कहा। 26 घंटे तक आग का प्रकोप बना रहा और हदियाबाद एक धधकती भट्ठी की तरह तपता रहा। आज भी साठ बीघे ज़मीन बंजर की तरह पड़ी हुई है, क्योंकि यह उन हरिजनों की ज़मीन है जो इस अग्निकांड के दिन गाँव छोड़कर भाग गये और फिर कभी वापस नहीं लौटे।

फागू महतो को इस घटना से कोई आश्चर्य नहीं हुआ। 11 जून को बिहार के जेलमंत्री रामरतन राम ने आरा जेल का निरीक्षण किया। उन्होंने फागू महतो से पूछा, "क्या तुम्हें मालूम है कि हदियाबाद के ज़मींदारों ने 2 जून को हरिजन-टोली पर हमला किया और भयंकर लूटपाट की?" फागू ने फ़ौरन ही जवाब दिया, "यह कोई नयी बात नहीं है। हमारे समाज में ग़रीब और भूमिहीन लोग अभी इस हालत में नहीं हैं कि वे अपने सम्मान की रक्षा कर सकें और उन्हें निरंतर इस प्रयास में लगे रहना चाहिए कि वे हर क़ीमत पर अपने सम्मान की रक्षा करें।"

आपातस्थिति के ख़त्म होने के फ़ौरन बाद 11 मार्च, 1977 को सहार ब्लाक के गुरपा गाँव में ज़मींदारों ने जिस नृशंसता का परिचय दिया उससे साफ़ पता चल गया कि चवरी की वारदात के बाद भी ज़मींदारों और पुलिस के बीच घनिष्ठ सहयोग जारी है।

इस गाँव में भूमिहारों के 24 परिवार हैं और ट्यूबवेल जैसी सिंचाई-सुविधाओं की सुलभता के साथ-साथ गाँव की 50 प्रतिशत जमीन पर इनका क़ब्ज़ा है। अहीरों के 22 परिवार हैं और इनके पास भी अपनी ज़मीन है, लेकिन कर आदि और बटाईदारों को मिलने वाले अनाज दे देने के बाद इनके पास कुछ ख़ास नहीं बचता। दुसाधों के पाँच परिवार हैं और गाँव के लगभग सभी हरिजन पढ़े-लिखे तो हैं, लेकिन भूमिहीन हैं।

जातिगत तनावों के बावजूद गुरपा में काफ़ी दिन तक शांति बनी रही। एक रात जब भूमिहार लोग कटी हुई फ़सल की निगरानी कर रहे थे, किसी ने उन पर गोली चलायी। हालाँकि लोगों का कहना है कि यह गोली कुछ बदमाशों द्वारा चलायी गयी थी, लेकिन भूमिहारों ने अहीरों पर शक किया, क्योंकि बंदूक की आवाज़ गाँव के दक्षिणी छोर से आयी थी जिधर अहीरों के घर थे। फलस्वरूप घायल भूमिहारों, रामइकबाल पांडे और केदार पांडे, ने एक फ़ौजदारी के मामले में रंगनाथ अहीर, शिवकुमार अहीर, भदई अहीर, मोहर अहीर, लालमोहर अहीर, रामायण अहीर तथा कुछ अन्य लोगों को फँसा दिया। यह घटना एक-दूसरे की

विरोधी जातियों के बीच निरंतर बढ़ती दरार का संकेत दे रही थी।

इसके कुछ ही दिनों बाद 27 जून, 1976 को एक भूमिहार ज़मींदार रामबहल पांडे की कुछ ज़मीन को बीस सूत्री कार्यक्रम की घोषणा और बाद में इसके कार्यान्वयन के अंतर्गत फ़ालतू ज़मीन घोषित कर दिया गया। इस घोषणा के अनुसार क़ानूनी तौर पर यह ज़मीन भदई अहीर को मिल जानी चाहिए थी, क्योंकि वे पिछले सात वर्ष से इसे जोत रहे थे। उसी दिन शाम को लगभग छह बजे भूमिहारों के एक दल ने लाठियों और भालों से मोहन, कूकर और शिवजी अहीर पर हमला कर दिया—इन लोगों ने ज़मीन को जोतना शुरू कर दिया था। इन्हें गंभीर अवस्था में आरा सदर अस्पताल में भर्ती किया गया। हिंसा की इस कार्रवाई को देखते हुए अहीरों ने हत्या के प्रयास का मामला दर्ज कराया और थाने में लिखायी गयी रिपोर्ट में रामबहल पांडे, कमला पांडे, हरिहर पांडे, रामधारी पांडे और गोपी पांडे के नाम दिये। लेकिन इस बात के पर्याप्त अशुभ संकेत मिलने लगे थे कि अभी हिंसात्मक घटनाएँ और भी ज्यादा उग्र रूप में सामने आयेंगी। गोपी पांडे ने जेल से ही हरिजनों के पास संदेश भिजवाया कि "जिस दिन मैं रिहा होऊँगा गुरपा की धरती पर से हरिजनों का नामोनिशान मिटाकर ही दम लूँगा।"

अभियुक्त भूमिहारों के गाँव लौटने तक ऊँची जातियों और पिछड़ी जातियों के बीच नफ़रत की एक अभेद्य दीवार खड़ी हो चुकी थी। दो महीने भी अभी नहीं बीते थे कि गुरपा के सबसे खूँख्वार और अमीर ज़मींदार धरम पांडे की ज़मीन फ़ालतू घोषित कर दी गयी। इस ज़मीन के स्वामित्व में परिवर्तन की घोषणा की जा चुकी थी और गाँव के अहीर जाति के सरपंच कैलाश राम ने सम्बद्ध हरिजनों के नाम स्वामित्व-हस्तांतरण सम्बन्धी क़ानूनी कागज़ात भी प्राप्त कर लिये थे। लेकिन धरम पांडे की ज़मीन पर वास्तविक रूप से दावा करने का किसी में साहस नहीं हुआ, क्योंकि भदई अहीर पर पड़ी मार अभी उनकी स्मृति में बनी हुई थी।

8 अगस्त, 1976 को ज़िले के अधिकारियों ने धरम पांडे को आदेश दिया कि वह इस अतिरिक्त भूमि को छोड़ दें। फिर भी, स्वामित्व सम्बन्धी कागज़ात पास में होने के बावजूद गुरपा में किसी को उस ज़मीन पर दावा करने का साहस नहीं हुआ।

कुछ ही दिनों बाद 11 अगस्त को एक अभूतपूर्व घटना हो गयी। उस दिन शाम के लगभग सात बजे कुछ अज्ञात व्यक्तियों का एक दल गुरपा में घुस गया और उसने गोपी, अवधबिहारी, जगन्नाथ, सिंहलदीप पांडे और जगदीश पांडे को गोली मार दी। सिंहलदीप को छोड़कर शेष की घटना-स्थल पर ही मृत्यु हो गयी—सिंहलदीप ने अगले दिन अस्पताल जाते समय रास्ते में दम तोड़ा। कुछ अन्य लोग भी घायल हुए। यह सारी कार्रवाई बड़ी नाटकीय थी; हत्यारों को नहीं पहचाना

जा सका, क्योंकि वे सभी पुलिस की वर्दी में थे और भूमिहार लोग अपने बचाव में कोई क़दम उठायें इससे पहले ही हत्यारे 'नक्सलबाड़ी ज़िंदाबाद' नारे लगाते हुए रात के अँधेरे में ग़ायब हो गये।

अगले दिन जब मृतक भूमिहारों के घरवाले इन लाशों को आरा जाने वाली बस में रख रहे थे कि इन्होंने गाँव के चौकीदार चन्द्रमणि यादव को पकड़ लिया। चन्द्रमणि यादव पिछली रात की वारदात की रिपोर्ट देने जा रहा था। बस-अड्डे पर खड़े भयभीत दर्शकों ने देखा कि एक भूमिहार ने उस चौकीदार को एकदम नज़दीक से गोली मार दी। उस समय सवेरे के महज़ सात बजे थे। भूमिहारों की हत्या को पुलिस ने नक्सलवादी कार्रवाई बताया और अनुमान लगाया कि कमज़ोर अहीरों ने बदला लेने के लिए नक्सलवादियों से साँठ-गाँठ की थी—शायद उन्हें आमंत्रित भी किया था। 26 व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया गया और गाँव में एक पुलिस-चौकी क़ायम कर दी गयी। पुलिस ने भूमिहारों के खुलेआम सहयोग से तपेश्वर पांडे के मकान की छत पर अपना खेमा गाड़ा।

इमरजेंसी खत्म होने और 1977 के चुनावों की घोषणा के बाद अचानक पुलिस की छावनी हटा ली गयी और 11 मार्च, 1977 को पुलिस-दल गुरपा से रवाना हो गया। गाँव छोड़ते समय पुलिस के कुछ लोगों ने हरिजनों की बस्ती के पास खड़े कुछ लोगों से कहा : "आज होली होगी।" इस वाक्य ने सुनने वालों के मन में छिपे संदेह को गहरा कर दिया। होली क़रीब आ रही थी, पर इस वाक्य का आशय ख़ून की होली से था। भूमिहारों ने पुलिस-दल को गाँव के बाहर तक छोड़ा और उन्हें शानदार विदाई दी। बाद की घटनाओं ने साबित कर दिया कि गुरपा से पुलिस का उस दिन विदा होना मात्र संयोग नहीं था।

गाँव से पुलिस के रवाना होने के कुछ ही घंटों के अन्दर शाम के लगभग पाँच बजे गोलियों की आवाज़ सुनायी पड़ी और भयंकर चीख़-पुकार के बीच बंदूकों, राइफ़लों, तलवारों, भालों आदि से लैस 25-30 भूमिहारों के एक दल ने गाँव की हरिजन बस्ती पर धावा बोल दिया। हरिजनों में दहशत फैल गयी और वे आतंकित होकर भागने लगे। सरपंच कैलाश राम अपनी जान बचाने के लिए एक कमरे में छिप गये। वह बेहद घबराये हुए थे और हाँफ रहे थे।

कैलाश राम पिछले 14 वर्षों से गुरपा के सरपंच थे। उस दिन की घटना का बयान करते समय भी वह बेहद घबराये हुए थे। उनकी आवाज़ काँपने लगी। अतिरिक्त ज़मीन के नये मालिकों को परचा बाँटने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी और इस प्रकार भूमिहारों की नफ़रत मोल ली थी।

घर के बंद दरवाज़ों के पीछे कैलाश राम अभी काँप ही रहे थे कि आती हुई भीड़ को देखकर दो औरतें बड़ी तेज़ी से मकान के अन्दर घुसीं। तब तक पटाख़े की आवाज़ सुनायी पड़ी और घर के फूस के छप्पर में आग लग गयी। वाह

लोगों की चीख़ गूंज पड़ी और वातावरण धुएँ की गंध से भर गया। कुछ आवाज़ें सुनने में आयीं, "वे भीतर आग लगा रहे हैं।" अँधेरे का फ़ायदा उठाकर किसी तरह कैलाश राम वहाँ से भाग खड़े हुए और इस प्रकार उन्होंने अपनी जान बचायी। अब तक नर-संहार लगभग पूरा हो गया था और सत्तर वर्ष की आयु के तीन बूढ़े—रामन कुम्हार, काली टाटो और दीपन यादव ही भाग न सकने के कारण आग में जलकर मर गये। खेत से लौटती दो औरतों को राख में मिला दिया गया। 45-वर्षीया तिजिया देवी और एक 28-वर्षीया गर्भवती युवती फूलकुमारी को पकड़कर आग में झोंक दिया गया।

कई दिनों बाद तक गुरपा के अधजले झोंपड़े सारी दास्तान कह रहे थे। जलाने का काम कुछ घंटों तक चला। रात में 11 बजे जब पुलिस पहुँची, तब तक सब-कुछ ख़त्म हो चुका था। लेकिन आग बुझने में तीन दिन लग गये। 15 व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया गया। इनके पास से 4 बंदूकें, 7 राइफ़लें और लगभग 2000 कारतूस बरामद हुए। बाद में कुछ और भी चिंताजनक तथ्यों का पता चला : इस अग्निकांड में जितने लोग मारे गये उनमें से किसी का नाम पहले कभी भी किसी अपराध के सिलसिले में नहीं दर्ज था। वे बिलकुल निर्दोष थे और हरिजन थे।

सहार के बेलौर, संदेश, बगेन और बेरथ के ज़मींदारों ने आतंक के बल पर असंतुष्ट लोगों को शांत करने के लिए जो हमलावर रवैया अपनाया था, गुरपा उसका एक हिस्सा था। पुलिस की साँठ-गाँठ भी बहुत स्पष्ट थी। कैलाश राम ने भोजपुर के पुलिस-अधीक्षक से अनुरोध किया कि वह रघुवंश पांडे के हथियार ज़ब्त कर लें और पुलिस-अधीक्षक ने ऐसा करने का वचन भी दिया पर आज तक इसे अमल में नहीं लाया गया। भूमिहारों के हाथों में पहले से ज़्यादा बंदूकें पहुँच गयीं और गोपी पांडे के वंशज आज भी हरिजनों की तलाश कर रहे हैं। कैलाश राम कहते हैं : "हम लोग उन लोगों के लिए गोरैया की तरह हैं और वे हमारे पीछे पड़े हैं।"

किसानों के दिमाग़ में गुरपा नाम ज़मींदारों द्वारा किसानों पर बदले की भावना से की गयी बेलगाम क्रूरता के अलावा और कुछ नहीं है। अभी कुछ महीनों पहले चवरी के ज़मींदारों ने अपने अड़ियल मज़दूरों को चेतावनी दी थी:—"गुरपा याद रखना।" 1975 में बी० एन० सिन्हा का यह कथन कि 'लोगों ने प्रतिरोध करने वाले गुट बनाने शुरू कर दिये हैं' दरअसल भोजपुर के गाँवों के ज़मींदारों द्वारा की जाने वाली 'गुहार' का ही हिस्सा था, ताकि खेतिहर मज़दूरों और ग़रीब किसानों के प्रतिरोध को कुचला जा सके।

'जहाँ तक नक्सलवाद के क़ानून और व्यवस्था सम्बन्धी पहलू का प्रश्न है, मेरा

विचार है कि यह पूरी तरह सरकार की चिंता का विषय है, क्योंकि केवल सरकार के पास ही वे साधन हैं जिनसे नागरिकों के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा की जा सकती है। मेरी धारणा है कि नक्सलवाद का मुक़ाबला करने के लिए हथियारबंद प्रतिरोध के निजी संगठनों को किसी भी तरह का बढ़ावा देने में—ख़ासतौर से जब देश में कमज़ोर सरकार हो—संभावित गृहयुद्ध के भड़कने का ख़तरा निहित है। लेकिन जहाँ यह बात सही है कि सरकार को अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए, वहीं इस बात को भी नहीं भुला देना चाहिए कि नक्सलवादी आंदोलन या किसी भी क्रांतिकारी हिंसा को केवल गिरफ़्तारी करने, सज़ा देने या गोली मारने से ख़त्म नहीं किया जा सकता जब तक इसके साथ ही समस्या की जड़ तक उपायों को न लागू किया जाये। समस्या की जड़ तक पहुँचने में बेशक सरकार, राजनीतिक दल, सामाजिक और गांधीवादी कार्यकर्ता—सब मिलकर उल्लेखनीय योगदान कर सकते हैं।"

—जयप्रकाश नारायण, 'फ़ेस टु फ़ेस'

"राज्य-विद्रोह का मुक़ाबला करने में आमतौर पर इस्तेमाल किये जाने वाले निम्नांकित उपाय हैं : संकेंद्रित पुलिस कार्रवाइयाँ अथवा विशेष सैनिक दस्ते द्वारा की जाने वाली कार्रवाइयाँ जिनमें सर्वोच्च सैनिक संगठन हो चाहे वह सेना ही क्यों न हो; साथ-ही-साथ राजनीतिगत या बिहार के संदर्भ में जातिगत सम्बन्धों पर ध्यान दिये बिना अलग-अलग इलाक़ों का सर्वेक्षण और इलाक़ों के अनुसार लोगों की विपदाओं का वर्गीकरण तथा उनके इन कष्टों के समग्र रूप से निवारण के लिए प्रशासनिक उपाय; विभिन्न क्षेत्रों से चुने गये उत्साही और निष्ठावान समाज-सुधारकों को सामाजिक-सांस्कृतिक धरातल पर परिवर्तन लाने के काम में लगाना, क्योंकि किसी छापामार की सैनिक पराजय ही काफ़ी नहीं है और न ही यह अपने-आप में कोई उद्देश्य हो सकता है ; हर तरह के सामाजिक अन्याय को मिटाने के लिए कठोर क़ानूनों की रचना और अंत में, सरकार के सभी स्तर और सभी क्षेत्रों से इन इलाक़ों में कुशल कर्मचारियों को भेजना जो सभी गतिविधियों को बढ़ा सकें और इनके साथ समन्वय क़ायम कर सकें। पुलिस का काम जहाँ समाप्त होता है अन्य माध्यमों का काम शुरू हो जाता है, क्योंकि राजनीतिक शून्यता को प्रगतिशील कार्यक्रमों के ज़रिये फ़ौरन भरा जाता है। इस स्थिति में पुलिस अथवा सुरक्षा कर्मचारियों को वहाँ न्यूनतम संख्या में बना रहने दिया जाता है कि महज़ क़ानून लागू किया जा सके और शेष को बैरकों में बुला लिया जाता है।"

—बी० एन० सिन्हा, आई० पी० एस०, 'फ्राम द गन टु द सन'

बिहार में ज़मीन संबंधी संघर्ष का मुक़ाबला करने में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप

में सरकार के साथ सर्वोदय के लोगों के सहयोग की घटना अभूतपूर्व नहीं है। उत्तर बंगाल में नक्सलबाड़ी विद्रोह के फ़ौरन बाद उत्तरी बिहार में माओवादियों की गतिविधियों ने इस बात का संकेत दे दिया था कि अब यह आंदोलन पश्चिम बंगाल की सीमाओं को लाँघ चुका है। मुजफ़्फ़रपुर में बारह गाँवों का एक छोटा-सा ब्लाक मुसहरी है। 1968 के मध्य में नक्सलवादियों ने मुसहरी को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया और यह स्पष्ट हो गया कि बिहार में 'आधार क्षेत्र' की तलाश शुरू हो गयी थी।

मई 1969 तक यह आंदोलन मुसहरी गाँव के बाहरी इलाक़ों तक फैल गया था। 30 जून, 1969 को नक्सलवादियों के नेतृत्व में लगभग दो सौ हथियारबंद मज़दूरों ने बिहार के भूतपूर्व सहकारिता मंत्री महंत रामकिशोर दास के मकान और फ़ार्म पर हमला किया और लगभग 150 मन तिलहन तथा मक्का लूट लिया। रामकिशोर दास मुजफ़्फ़रपुर के निकट मिदनापुर थाने के अंतर्गत छपरा गाँव में रहते थे। बड़ी तेज़ी से घटनाएँ हो रही थीं और समाचारपत्रों में निरंतर बढ़ते तनाव की ख़बरें स्थान पाने लगी थीं।

उसी वर्ष जून में एक और घटना हुई। जयप्रकाश नारायण ने अचानक उत्तराखंड की अपनी पूर्व-निर्धारित यात्रा को बीच में ही रद्द कर दिया और अचानक मुसहरी के लिए रवाना हो गये। यात्रा रद्द करने और मुसहरी जाने का कार्यक्रम बनाने के पीछे कई कारण थे और वे सभी एक-दूसरे से जुड़े थे। जिस समय उत्तराखंड में पौड़ी नामक स्थान में वह पहुँचे थे, उन्हें सूचना मिली कि मुजफ़्फ़रपुर ज़िला सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष बद्रीनारायण सिन्हा और सचिव गोपालजी मिश्रा को नक्सलवादियों ने नोटिस दिया है कि उनकी हत्या कर दी जायेगी।

जयप्रकाश नारायण का कहना है कि इस ख़बर ने उन्हें मुसहरी जाने के लिए प्रेरित किया: "ऐसा लगता है कि उन लोगों ने (नक्सलवादियों ने) अब मूर्तियों, तसवीरों और देश के महान नेताओं मसलन रामकृष्ण परमहंस देव, स्वामी विवेकानंद, गुरुदेव रवीन्द्र नाथ, महात्मा गांधी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की पुस्तकों जैसी निर्जीव वस्तुओं को अपना निशाना बनाने के बाद अब इन महान विभूतियों के जीवित अनुयायियों और प्रशंसकों को अपना निशाना बनाने का फ़ैसला किया है।" संक्षेप में कहें तो सर्वोदय और इसके अनुयायियों के लिए ख़तरा पैदा हो गया था। जे० पी० ने आगे कहा, "पिछले काफ़ी दिनों से मैं लगातार यह सोच रहा था कि हमारे आंदोलन में जो आग थी वह ख़त्म हो रही है और हम लोग अर्थात हमारे कार्यकर्ता निस्तेज और आत्मा से शिथिल होते जा रहे हैं।" सर्वोदय को अपनी धार तेज़ करने की ज़रूरत थी और इस काम के लिए मुसहरी बहुत आदर्श-स्थल महसूस हुआ।

जे० पी० ने लिखा है: "मैं किसी व्यक्ति विशेष के ख़िलाफ़ नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक न्याय के लिए संघर्ष कर रहा हूँ और मेरा मूल्यांकन इसी दृष्टि से किया जाना चाहिए।" इस अजीबोग़रीब तर्क के ज़रिये, ऐसा लगता है कि नक्सलवादी लोग निरकुंशता, ज़मीन संबंधी निजी हितों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं और इसलिए इनसे संघर्ष करना ज़रूरी हो गया है। जयप्रकाश नारायण के मुसहरी पहुँचने पर काफ़ी उत्तेजना देखने में आयी, जिसकी पहले से ही आशा थी।

इसके बाद शब्दाडम्बरों और सदाचार संबंधी वाक्-पटुता का नाटक शुरू हुआ। जमशेदपुर में अपने केन्द्र पर नक्सलवादियों के आक्रमण की जानकारी देते हुए जयप्रकाश नारायण ने गांधी शांति प्रतिष्ठान के अयूब ख़ाँ को अपने पत्र में लिखा, "अगर हिंसा के हिमायती लोग गांधी को अपने दुश्मन के रूप में देख रहे हैं तो इसमें आश्चर्य क्या? हमें तो इस बात से प्रसन्नता होनी चाहिए कि ख़ूनी क्रांति के समर्थकों को गांधीजी के आदर्शों में ऐसी शक्ति दिखायी पड़ रही है कि वे डर के मारे इसे नष्ट करने पर उतारू हैं, लेकिन यह इतनी पवित्र और प्रकाशमान है कि इसकी रोशनी हमेशा चमकती रहेगी।"

कई वर्षों बाद 44-वर्षीय प्यारेमोहन त्रिपाठी ने, जिन्होंने 'ग्रामीण विकास संबंधी स्वैच्छिक संगठनों के एसोसिएशन' (एवार्ड) में तेरह वर्षों तक काम किया था और जिनकी इस संस्था की ओर से परियोजना-अधिकारी के रूप में मुसहरी में नियुक्ति हुई थी, अत्यंत पराजय के स्वर में बताया, "1972 आते-आते जयप्रकाश नारायण ने ख़ुद ही यह महसूस किया कि सामाजिक परिवर्तन और पुनर्निर्माण के उनके उद्देश्यों को मुसहरी वाले तरीक़े से नहीं प्राप्त किया जा सकता है।" उन्होंने आगे बताया कि उस क्षेत्र में 'एवार्ड' की कोशिश से अनेक परिवर्तन आये, लेकिन इन सबके बावजूद राज्य सरकार जो न्यूनतम कार्य कर सकती थी वह आज तक नहीं शुरू किया जा सका। उनका आशय चकबंदी जैसे कार्यों से था।

1978 के शुरू के दिनों में क्षमा प्राप्त करने के बाद मुसहरी लौटकर आये नक्सलवादियों से जब त्रिपाठी सहित 'एवार्ड' के अन्य सदस्यों ने भेंट की तो उन्होंने देखा कि इनमें से अधिकांश की निष्ठा अभी भी हिंसात्मक संघर्ष में बनी हुई है। यद्यपि संघर्ष के भूतपूर्व नेतागण—राजकिशोर, तसलीम, रामदेव पासवान और अशोक की मृत्यु हो चुकी थी, लेकिन उनके अनुयायियों ने अपने इन शहीद नेताओं के अधूरे काम को पूरा करने का संकल्प लिया था। मुसहरी ब्लाक के प्रह्लादपुर गाँव में स्थित स्थानीय हाई स्कूल में आयोजित एक सभा में मुसहरी कांड के रिहा हुए व्यक्तियों में से एक व्यक्ति रामचन्द्र ने कहा, "वे सभी कारण आज भी पहले ही की तरह मौजूद हैं।"

त्रिपाठी इस बात से सहमत थे कि कम-से-कम कुछ लोगों के लिए यह बात जायज़ थी। रामचन्द्र अपने पिता और माँ की मृत्यु के बाद जेल से बाहर आया था

और यहाँ आकर उसने देखा कि जिस झोंपड़ी में किसी ज़माने में उसका परिवार रहा करता था—उसे वर्षों पहले उजाड़ दिया गया है। रामप्रीत पासवान जैसे अपेक्षाकृत अधिक उग्र युवकों ने तो स्वघोषित गांधीवादियों से मिलने से भी इंकार कर दिया। 'एवार्ड' जिन 33 परिवारों को फिर से बसाने की आवश्यकता महसूस कर रही थी उनमें से अधिकांश अभी भी अत्यंत दुराग्रही और अक्खड़ मिज़ाज के थे और 'एवार्ड' से उनका बस यही कहना था कि पुलिस ख्वामख्वाह उन लोगो को इलाक़े में हुई मामूली चोरी आदि में फँसाकर परेशान करती है, इसलिए इस परेशानी से बचने का उपाय वह ढूंढ़े। त्रिपाठी ने बताया कि "हमने उनसे बस एक ही बात कही। हम सारी बातों से सहमत नहीं हैं, लेकिन चूँकि हम दोनों ग़रीब जनता के बारे में चिंतित हैं इसलिए सामाजिक न्याय को प्राप्त करने की यात्रा में जहाँ तक हम साथ चल सकें, दोस्तों की तरह रहें और साथ चलें।"

जिस समय भोजपुर में नक्सलवादियों की चहल-पहल शुरू हुई, सर्वोदय के लोगों का ध्यान किसानों की स्थिति सुधारने की बजाय कुछ अन्य बातों पर टिका हुआ था। 1974 का बिहार छात्र आंदोलन देश-भर में फैल चुका था और राजनीति से काफ़ी लम्बे समय तक संन्यास लेने के बाद जयप्रकाश नारायण ने ख़ुद को इस आंदोलन के सिद्धांतकार और मसीहा के रूप में महसूस किया। राज्य में नौजवानों का जोश अपने पूरे उफान पर था और अत्यंत सम्मानित जयप्रकाश नारायण इस आंदोलन के शिखर पर सवार होकर हमेशा के लिए फ़ैसला करने की मनःस्थिति में थे। जयप्रकाश नारायण का नया नारा था—'सम्पूर्ण क्रांति' और इसने जादू की तरह काम किया।

बिहार की राजधानी पटना से सौ किलोमीटर से भी कम दूरी पर भोजपुर की हरिजन बस्तियों से ख़ून की एक पतली धार निकल चुकी थी जो क्रमशः मोटी होती जा रही थी। 2जून, 1975 को ज़मींदारों ने जगदीशपुर ब्लाक के हदियाबाद गाँव में ग़रीब चमारों के झोंपड़ों को ख़ाक में मिला दिया था। इससे दो सप्ताह पहले पुलिस ने सहार के दुल्लमचक गाँव में रामप्रवेश कहार और गोपाल चमार को गोलियों से भून दिया था।

जयप्रकाश नारायण को इन सारी घटनाओं की जानकारी मिल रही थी। 'एवार्ड' के त्रिपाठी के अनुसार जयप्रकाश नारायण के अत्यंत विश्वसनीय सर्वोदयी कार्यकर्ता बाबूराम चन्दावार ने 1972 से ही भोजपुर आना-जाना शुरू कर दिया था। अक्तूबर 1974 में अखिल भारतीय सर्वसेवा संघ ने नक्सलवादी आतंक को रोकने के लिए जयप्रकाश नारायण के निर्देशन में एक आंदोलन छेड़ने का फ़ैसला किया।

ख़ुद भोजपुर में मार्च 1974 में सोनाटोला की वारदात के बाद एक शांति समिति का गठन किया गया था, ताकि अशांत इलाक़ों में शांति और व्यवस्था फिर

से स्थापित की जा सके। इसके संस्थापक सदस्यों में बैजविहारी महतो, रघुनाथ राय और रामप्रीतसिंह थे। 15 सदस्यों की इस समिति ने विभिन्न 'अशांत' गाँवों में सभाएँ कीं। सरकार की निगाह में भी समिति को काफ़ी सम्मान प्राप्त था। इसके अधिकांश नेता सुधारवादी थे और हिंसा में उनका विश्वास नहीं था। रामप्रीत सिंह बाद में ज़िला जनता पार्टी के अध्यक्ष बन गये।

समिति ने ज़मींदारों से अनुरोध किया कि वे खेतिहर मज़दूरों के साथ अच्छा व्यवहार करें। उनका मुख्य नारा था दैनिक मज़दूरी के रूप में "खेसारी की जगह पर चार सेर चावल दो।" खेसारी एक ऐसा अनाज है जिसे डॉक्टरों ने ख़तरनाक बताया है और आगाह किया है कि इसके खाने से बेरी-बेरी नाम की बीमारी, चर्मरोग तथा अन्य कई बीमारियाँ हो सकती हैं।

अगिआँव, बंसडेहरी, एकवारी, गुलज़ारपुर, खैरा, बहुआरा, बरगाँव, नारायणपुर तथा अन्य गाँवों में समिति द्वारा आयोजित सभाओं को कोई सफलता नहीं मिली और ज़मींदारों ने इनकी अपील पर कोई ध्यान नहीं दिया। अगिआँव में ज़मींदारों ने मज़दूरी संबंधी माँग को स्वीकार कर लिया, किंतु जैसे ही मज़दूरों ने अपना आंदोलन समाप्त किया, वे फिर पुराने तौर-तरीक़े पर लौट आये। बरगाँव में तो ज़मींदारों ने इन अपीलों पर एकदम ध्यान नहीं दिया।

संगठनकर्ताओं ने इस तथ्य को रेखांकित किया कि जिन गाँवों में खेतिहर मज़दूर समान मज़दूरी के लिए संघर्ष कर रहे हैं वहाँ नक्सलवाद बड़ी प्रमुखता के साथ स्थान प्राप्त कर रहा है। एकवारी, चवरी, बेरथ, बंसीडेहरी आदि ने इस प्रश्न पर असंतोष को बड़ी तल्ख़ी के साथ महसूस किया था। रामप्रीत सिंह ने बताया कि "अन्ततोगत्वा शांति कार्यक्रम पूरी तरह विफल हो गया।" इन सारी घटनाओं ने सर्वोदय नेता के मनोबल में तनिक भी कमी नहीं की।

12 और 13 जून, 1975 को जयप्रकाशनारायण ने भोजपुर के उन इलाक़ों का दौरा किया जहाँ नक्सलवादी काफ़ी सक्रिय थे और लोगों से अनुरोध किया कि वे हिंसा का रास्ता छोड़कर 'सम्पूर्ण क्रांति' के लिए एकजुट होकर काम करें। नारायणपुर की सभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने वायदा करने के अन्दाज में कहा, "आज से पाँच वर्ष के भीतर अगर स्थितियाँ नहीं बदलती हैं तो मैं आपसे कभी यह नहीं कहूँगा कि नक्सलवादी राजनीति को आप छोड़ दें। लेकिन फ़िलहाल हमको और आपको लोकतंत्र की स्थापना करनी है और सम्पूर्ण क्रांति के लिए काम करना है।" जयप्रकाशनारायण की यह यात्रा बहुत संक्षिप्त थी और दो दिन के अन्दर उन्होंने दुल्लमचक के रामप्रवेश कहार और रामबचन अहीर के शोक-संतप्त परिवार से मिलने का समय निकाल लिया। यह अफ़वाह काफ़ी ज़ोरों पर थी कि जयप्रकाश नारायण ने इलाक़े के कुछ वरिष्ठ नक्सलवादी नेताओं से

भी विचार-विमर्श किया और बातचीत जारी रखने की कोशिश की जो विफल हो गयी।

ज़िले में जयप्रकाश नारायण की यात्रा के बाद गाँव-गाँव में लोग जिस तरह के व्यंग्य कर रहे थे उससे पता चलता है कि स्थानीय जनता का उन लोगों पर तनिक भी विश्वास नहीं है जो संघर्ष को भुला देने की सलाह देते हैं और शांति स्थापित करने की कोशिश करते हैं। लोगों का कहना था कि "बरसात आते ही मेंढकों की टर्र-टर्र सुनायी देने लगती है।"

लेकिन जयप्रकाशनारायण ने दो दिन की यात्रा अपने ख़ास अन्दाज़ में पूरी की। सहार में दुल्लमचक गाँव के एक ज़मींदार ने जब उन्हें पानी का गिलास दिया तो एक न्यायप्रिय पिता की भाँति उन्होंने पानी पीने से इंकार कर दिया, क्योंकि उस ज़मींदार के घर पर पुलिस तैनात थी। दूसरी तरफ़ उन्होंने ज़मींदारों को आश्वासन दिया कि यदि वे अपने तौर-तरीक़े में सुधार ला दें तो उन्हें अन्तिम दंड मिलने से बचाया जा सकता है। बाद की घटनाओं ने यह प्रमाणित किया कि जयप्रकाश नारायण के इस कथन को कुछ ज़मींदारों ने इस बात की गारंटी मान ली थी कि उनकी यात्रा के बाद भोजपुर में शांति स्थापित हो जायेगी।

दूसरी तरफ़ इस बात के संकेत प्राप्त हो रहे थे कि राज्य सरकार इस ज़िले को समस्याओं से ग्रस्त ज़िले के रूप में देखने लगी थी और सोच रही थी कि किसानों की अशांति की जड़ में कुछ सामाजिक-आर्थिक कारण छिपे हुए हैं। समस्या के समाधान के प्रयास में बिहार मंत्रिमंडल ने नक्सलवादी समस्या के अध्ययन के लिए तथा इससे संबंधित समाधानों पर विचार-विमर्श के लिए 15 सदस्यों की एक समिति का गठन किया। यह समिति बिहार के तत्कालीन राज्यपाल आर० डी० भंडारे की देख-रेख में बनायी गयी थी। अनुसूचित जाति के एक मंत्री बालेश्वर राम और एक आई० ए० एस० अफ़सर माधव सिंह के नेतृत्व में गठित 'सामाजिक अन्याय निवारण समिति' की रिपोर्ट अभी पूरी भी नहीं हुई थी। (रिपोर्ट पूरी करने के लिए एक वर्ष का समय निर्धारित किया गया था) कि इमरजेंसी की घोषणा हो गयी। इसके फलस्वरूप सभी नक्सलवादी गुटों पर पाबंदी लगा दी गयी और ज़ाहिर था कि राज्य के प्रति विद्रोह को सामाजिक समस्या के दुष्परिणाम के रूप में देखने की प्रक्रिया को वहीं छोड़ देना पड़ा।

सर्वोदय के नेताओं और राज्य सरकार—दोनों के लिए फ़िलहाल भोजपुर का मामला स्थगित हो गया। असंतोष को दबाने के लिए पुलिस की ओर से लाठी और गोली का सहारा लिया जाता रहा जबकि जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में काम करनेवाले लोग इमरजेंसी के ख़िलाफ़ बिहार में वातावरण तैयार करने में जुट गये थे। छठी लोकसभा के चुनाव के बाद मार्च 1977 में जब जनता पार्टी को विजय मिली तो एक बार फिर जयप्रकाश नारायण और राज्य का ध्यान भोजपुर

की घटनाओं की ओर आकर्षित हुआ।

फिर भी इसमें थोड़ा समय लगा। जयप्रकाश नारायण बूढ़े हो चुके थे और थकान महसूस कर रहे थे। लेकिन बिहार में सम्पूर्ण क्रांति के नतीजे भी दिखायी दे रहे थे। खद्दर का कुरता और रबड़ की चप्पलों में सुशोभित सर्वोदयी कार्यकर्ताओं के स्थान पर उन्हें अब निःस्वार्थ युवकों के एक नये गुट का आलोचनात्मक समर्थन मिल गया था जो इमरजेंसी-विरोधी संघर्ष को सामने रखकर राजनीतिक लाभ उठाने के पक्ष में नहीं थे और संपूर्ण क्रांति के निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने में जिनकी दिलचस्पी थी। पुराने सर्वोदयी लोगों के शिथिल समर्थन के बजाय जयप्रकाश नारायण को इस तरह के नौजवानों की दृढ़ निष्ठा प्राप्त हुई और इन नौजवानों ने उनके आशीर्वाद से संघर्षवाहिनी का गठन किया।

भोजपुर के अशांत क्षेत्रों की अपनी पहली यात्रा के दो वर्ष बाद जयप्रकाश नारायण ने 17 नवंबर, 1977 को पश्चाताप के लहजे में कहा, "भोजपुर ज़िले में आज जो अस्थिर स्थिति है उसे देखकर मैं बेहद विचलित हो गया हूँ। ख़बर मिली है कि पिछले कुछ वर्षों में धनी किसानों के साथ संघर्ष में अनेक भूमिहीन किसानों की जानें गयी हैं। इस स्थिति में सर्वोदय तथा अन्य निष्पक्ष कार्यकर्ताओं को बड़ी सतर्कता के साथ काम करना है। उन्हें एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। भोजपुर के गाँवों से असंतोष को दूर करने के लिए उन्हें कुछ करना ही चाहिए। एक महत्वपूर्ण और वरिष्ठ सर्वोदय कार्यकर्ता बाबूराव चन्दावर ने फ़ैसला किया है कि वह अपना समय और शक्ति भोजपुर में लगायेंगे। उनका प्रस्ताव है कि विभिन्न वर्गों के लोगों को एकजुट होना चाहिए और मिल-बैठकर सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का शांतिपूर्ण ढँग से समाधान ढूँढना चाहिए। मेरी इच्छा है कि मेरे नक्सलवादी दोस्त अहिंसक क्रांतिकारियों के साथ मिलकर काम करें और सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन लाने के लिए अहिंसक ढँग से जन-आंदोलन तैयार करने में मदद करें।"

भोजपुर के बारे में जयप्रकाश नारायण की लगातार दिलचस्पी को देखते हुए संघर्ष-वाहिनी के सदस्यों ने 11 अक्तूबर, 1977 की शाम को सहार की अपनी पहली यात्रा शुरू की। 21 अक्तूबर तक यह यात्रा पूरी हो गयी और दूसरी यात्रा 30 जनवरी से फ़रवरी 1978 के बीच सम्पन्न हुई। सहार रिपोर्ट में संघर्ष-वाहिनी की भोजपुर शाखा के सदस्यों ने बड़ी ईमानदारी के साथ अपने अनुभवों को दर्ज किया—इन अनुभवों में इलाक़े के दौरों से लेकर दुल्लमचक, बंसीडेहरी और बरगाँव गाँवों में समय-समय पर लिये गये नोट्स शामिल थे। उन्होंने महसूस किया कि उन स्थानों पर जहाँ गाँव के लोग प्रायः इन लोगों के पास आकर अपनी समस्याएँ बताते थे, ज़मींदारों ने वाहिनी को संदेह की दृष्टि से देखा और इसे किसानों के समर्थक लोगों का संगठन माना, जिसकी मौजूदगी सम्बद्ध क्षेत्र के

लिए वांछनीय नहीं थी।

सहार की रिपोर्ट में इस बात पर भी बल दिया गया था कि भोजपुर में सर्वोदय का अनुशासित आधार तैयार करने के लिए दुल्लमचक, बंसीडेहरी और बरगाँव में वाहिनी के प्रवेश करने और वहाँ काम करने पर विचार किया जा रहा है। मुसहरी में 'एवार्ड' के प्रयासों को देखते हुए कलकत्ता से प्रकाशित वामपंथी साप्ताहिक पत्र 'फ्रंटियर' ने अपने एक स्तंभकार के हवाले से इन सारी चीज़ों पर संदेह व्यक्त किया। उन्होंने तो यहाँ तक निष्कर्ष निकाला कि चूँकि उनके अनुसार नक्सलवादी आंदोलन ने वर्ग संबंधी आयाम की अवहेलना की है और बहुधा जाति वाले पक्ष पर ज़ोर दिया है, इसलिए वहाँ उनके काम के लिए अनुकूल स्थितियाँ हैं : मज़दूरों को जाति के आधार पर संगठित करने के बजाय वर्ग के आधार पर संगठित करने की ज़्यादा गुंजाइश है।

'सहार रिपोर्ट' के अंत में वाहिनी ने किसानों के लिए एक-मुश्त 'आवश्यक सुधारों' पर विचार किया था : गैर-मजरुआ ज़मीन को भूमिहीन मज़दूरों के बीच बाँटना, अतिरिक्त ज़मीन का हदबंदी क़ानून के अनुसार वितरण, मज़दूरी संबंधी विवादों को उचित ढँग से हल करना, मज़दूरों को अतिरिक्त आमदनी के लिए गाँव में कपड़ा, तेल और साबुन उद्योगों की स्थापना, मंदिर में हरिजनों के प्रवेश पर लगायी गयी अन्यायपूर्ण पाबंदी को समाप्त करना, गाँव से थाना, अदालत और पुलिस छावनी को हटाना क्योंकि इनसे शोषण को बढ़ावा मिलता है, शहर द्वारा गाँव का शोषण समाप्त करने के लिए ग़रीब किसानों का संगठन तैयार करना। जयप्रकाश नारायण और सर्वोदय के विचारों की झलक, राममनोहर लोहिया की समाजवादी विचारधारा और किसानों से किये गये वायदों को तत्काल पूरा करने के लिए राज्य सरकार पर ज़ोर देने का आदर्शवादी जोश—संघर्ष वाहिनी के कार्यों की ये कुछ खास बातें थीं 'सहार रिपोर्ट' का सार यही था कि ज़िले में व्याप्त गहरे असंतोष का अचूक इलाज अहिंसक रास्ता है।

1978 के मध्य तक राज्य सरकार एक बार फिर आंदोलन और इसके कारणों में दिलचस्पी लेने लगी। मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर ने, जिन्होंने मई 1973 में चवरी में हुई पुलिस ज़्यादती का बड़े उग्र ढँग से विरोध किया था; भोजपुर के अशांत सहार ब्लाक की स्थिति की छानबीन के लिए नक्सलवादियों से संबंधित एक समिति का गठन किया। इस जाँच के दिशा-निर्देशन के लिए चार चुनिंदा व्यक्तियों को समिति में रखा गया : कुँवर बहादुर सक्सेना, आई० ए० एस०, बद्रीनारायण सिन्हा, डी० आई० जी० (नक्सलवादी), अनुग्रह नारायण सिन्हा समाज अध्ययन संस्थान के निदेशक डॉ० सच्चिदानंद और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली के समाजविज्ञान के एसोसिएट प्रोफ़ेसर पार्थ मुखर्जी।

बड़ी चतुराई से लोगों का चयन किया गया था : एक कर्मठ निःस्वार्थ

आई० ए० एस० अफ़सर, एक पुलिस अफ़सर जो पत्रकार भी हैं और दो जाने-माने विद्वान। इस चुनाव पर कुछ लोगों ने प्रतिक्रिया भी व्यक्त की थी कि पुलिस-राज्य के मामलों में विद्वानों से आवश्यक हस्तक्षेप कराया जा रहा है।

पटना के एक समाजवादी युवक बजरंग सिंह और अ० ना० समाज विज्ञान संस्थान के एक शोध-छात्र कमलेशकुमार सिन्हा से जब अनुरोध किया गया कि वे जाँच-पड़ताल के लिए सहार जायें तो उन्हें यह थोड़ा आश्चर्यजनक लगा। कमलेशकुमार सिन्हा को तब और आश्चर्य हुआ जब सहार इलाक़े से लौटने के बाद उनके निदेशक के साथ एक और व्यक्ति बैठा था जो जाँच के निष्कर्षों के बारे में पूछ रहा था—यह व्यक्ति था बद्रीनारायण सिन्हा, डी० आई० जी० (नक्सलवादी)। समाजवादी विचारधारा वाले बजरंग सिंह ने इस सर्वेक्षण से इंकार कर दिया—उन्हें लगा कि शायद इस काम से उनका जीवन हमेशा के लिए कलंकित हो जाये।

कमलेश सिन्हा की रिपोर्ट 'भोजपुर ज़िले के सहार ब्लाक की एक क्षेत्र-यात्रा' में उद्विग्नता का पुट था और बड़े ठोस निरीक्षण थे। इसे उन्होंने अगस्त 1978 में पूरा किया था। उन्होंने देखा कि सहार ब्लाक के करबासिन और कोरनडेहरी गाँवों में एक विचित्र क़िस्म का अक्खड़पन है। इन दोनों गाँवों में घटनाओं और मुठभेड़ों का जायज़ा लेने के बाद उन्होंने निष्कर्ष निकाला : "यह आंदोलन अतीत में किये गये अत्याचारों का बदला है।" यह भी बताया गया कि जेल में नक्सलवादी नेताओं से भेंट करने के लिए बी० एन० सिन्हा के साथ डॉ० सच्चिदानंद भी गये थे।

फ़रवरी 1979 में भोजपुर के तरारी ब्लाक में बिहटा इंगलिश गाँव में एक बड़ा दिलचस्प जमावड़ा हुआ। पुराने सोशलिस्ट रामइकबाल के नेतृत्व में पाँच दिन का एक सम्मेलन आयोजित किया गया और इसे 'भारत के गाँव में गाँव का प्रथम सम्मेलन' जैसा भव्य नाम दिया गया। कुछ सोशलिस्ट युवकों और संघर्ष-वाहिनी के कार्यकर्ताओं के अलावा इस सम्मेलन में भाग लेने वाले गाँव के अशक्त और बूढ़े लोग थे। 23 फ़रवरी से 27 फ़रवरी यानी पाँच दिन तक लोग लोहिया का वही पुराना सिद्धांत बघारते रहे कि शहरों के ज़रिये गाँवों का शोषण हो रहा है। दरअसल जिन सोशलिस्टों ने किसी ज़माने में तरारी में सामाजिक जागृति का मार्ग प्रशस्त किया था, उनका स्थान अब हर दृष्टि से नये लोगों ने ले लिया था। रामइकबाल तथा किशन पटनायक के संदेश बूढ़े और बहरे कानों के लिए बेअसर साबित हुए। उनका जोश अब जनता को आंदोलित करने में असमर्थ था।

इससे एक महीने पूर्व पटना में 4-5 जनवरी, 1979 को ज़मींदारों का एक दल, रामदेवसिंह और उनके माँ-बाप की लाश को नरहीचंडी (आरा) से लादकर

पटना में कदमकुआँ में जयप्रकाश नारायण के निवास-स्थान तक ले गया था। किसान छापामारों के हाथों 3 जनवरी को मारे गये अपने निकट संबंधियों की मृत्यु पर इन लोगों ने न्याय की माँग की। इन्होंने बूढ़े, थके और डायलसिस पर जीवन गुज़ार रहे जयप्रकाश नारायण पर आरोप लगाया कि उन्होंने ज़िले में शांति क़ायम होने का झूठा आश्वासन दिया था। इसके बाद ये लोग एक ट्रक की छत पर लाश को रखकर बिहार विधानसभा तक ले गये, ताकि विधानसभा के सदस्यों से न्याय की माँग कर सकें।

1979 के खत्म होते-होते जयप्रकाश नारायण और नक्सलवादी मामलों के इंचार्ज बद्रीनारायण सिन्हा, डी० आई० जी० (नक्सलवादी)—दोनों की मृत्यु हो गयी। इनमें एक सर्वोदय का मसीहा था और दूसरा विद्रोह कुचलने में माहिर—दोनों अब नहीं रहे। सोन के तट पर धान के खेतों में हरिजनों के लिए उगजी कड़वी फ़सल पर टिप्पणी करने का अब यही एक माकूल समय था। 22 अक्तूबर, 1979 को पटना के दैनिक 'द सर्चलाइट' ने अपने सम्पादकीय में कर्पूरी ठाकुर द्वारा स्थापित समिति के निष्कर्षों पर—जो अभी अपूर्ण थे—प्रकाश डाला। इसने देर से ही सही—एक सच बात कही। एक ऐसे सत्य का उल्लेख किया जिसकी तरफ़ से पिछले एक दशक से, जब से भोजपुर में किसान-संघर्ष शुरू हुआ था, बिहार के सभी समाचारपत्रों ने आँखें मूँद रखी थीं।

समिति की आंशिक तौर पर पूरी रिपोर्ट में टिप्पणी की गयी थी कि: "नक्सलवादी आंदोलन किसी भी तरह क़ानून और व्यवस्था की समस्या नहीं है और इसका संबंध सामाजिक-आर्थिक अन्याय से है। इसके अलावा, समिति ने यह भी देखा कि नक्सलवादियों के ख़िलाफ़ दर्ज मामलों में से 50 प्रतिशत मामले झूठे हैं और व्यक्तिगत दुश्मनी के कारण हैं।"

भोजपुर के मैदानी इलाक़ों में आज दस वर्ष पूर्व जिस युद्ध की शुरुआत हुई थी, वह आज भी जारी है। नवंबर 1979 में 'द हिन्दुस्तान टाइम्स' ने खबर दी कि भोजपुर ज़िले के लगभग उन आधा दर्जन अंचलों में बिहार सरकार की हुकूमत नहीं चल रही है जिन्हें नक्सलवादियों ने 'मुक्त' करा रखा है।

अध्याय 5

प्रतिक्रियाएँ

भोजपुर में नयी चेतना की लहर आयी है। उस पर तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती हैं, तरह-तरह की आवाज़ें सुनायी देती हैं—इनमें से कुछ हमदर्दी-भरी आवाज़ें हैं तो कुछ नफ़रत-भरी। 1551 वर्गमील क्षेत्रफल और 20,07,669 की आबादी वाले इस छोटे-से ज़िले में कुछ घटित हो रहा है और जनता, पुलिस, ग़रीब किसानों, ज़मींदारों की प्रतिक्रियाएँ सुनने को मिल रही हैं। सब की अपनी-अपनी राय है। यहाँ का मौन भी बहुत कुछ कह डालता है।

☐ *जगन्नाथ पाठक, महालेखागार कार्यालय; बिहार के एक कर्मचारी जो ब्रह्मपुर ब्लाक के नीमज गाँव में रहते हैं:*

"नक्सलवादी लोग लुटेरे हैं। उन्होंने अनपढ़ लोगों को पाठ पढ़ाया है कि ज़मींदार का सफ़ाया करके वे ज़मीन के मालिक बन जायेंगे। लेकिन यह तर्क ग़लत है। अगर एक भूमिहीन किसान किसी ज़मींदार की हत्या करता है तो इससे समस्या नहीं हल होती।"

☐ *विश्वनाथ यादव, सी० पी० आई० के सदस्य और ब्रह्मपुर ब्लाक में रघुनाथपुर गाँव के सरपंच:*

"पुरुष सब कुछ बरदाश्त कर सकता है, लेकिन जब औरतों और बेटियों पर हमला होता है तो बात बरदाश्त से बाहर हो जाती है। जो भी विद्रोह करता है उसे नक्सलवादी कह दिया जाता है। जैसे ब्रह्मपुर के गाँव भदवर में जब मज़दूरों ने मज़दूरी बढ़ाने की माँग की तो ज़मींदारों ने उन्हें बहुत तंग किया। पुलिस भी एकदम जातिवादी है। हरिजनों के साथ बलात्कार किया गया, उन्हें लूटा गया और गिरफ़्तार किया गया—यह सारा जुल्म नक्सलवादी कहकर किया गया।"

☐ *बलराम पांडे, ब्रह्मपुर के नीमज गाँव की कार्यकारिणी के एक सदस्य :*
"नक्सलवाद पिछड़ी जाति और ऊँची जाति के बीच का तनाव है।"

☐ *इचरी, जगदीशपुर के अहीर ज़मींदार :*
"नक्सलवादी लोग रुपया-पैसा या सामान नहीं चुराते हैं। वे पढ़े-लिखे और काफ़ी प्रशिक्षित हैं। वे मज़दूरी बढ़ाने के लिए संघर्ष नहीं कर रहे हैं। वे तो राजसत्ता चाहते हैं।"

☐ *एकवारी, सहार के मुसहर विहारी राम द्वारा रचित गीत :*
कइसे सुधरी, कइसे सुधरी
जिनकर बिगड़लबा चलनिया
कइसे सुधरी; कइसे सुधरी
रात-दिन बेगार करावे, मारे-पीटे और डेरावे
हमनीके इज्जत पर हरदम ऊ रखेला आँख
देखली धनिकन क शैतनिया
कइसे सुधरी, कइसे सुधरी !

☐ *रामइकबाल, ओरसी, तरारी के प्रमुख सोशलिस्ट नेता :*
"नक्सलवाद न तो वर्ग-संघर्ष है न जातिगत संघर्ष, यह बस एक विचार है जिसे ग़रीबों के मन में बैठा दिया गया है कि ऊँची जाति के धनी लोगों की हत्या करने से उन्हें गद्दी मिल जायेगी। व्यक्तिगत आतंक से कोई भी सफलता नहीं मिल सकती। जगदीश महतो और डॉ० निर्मल ने जो किया वह गुस्से के कारण किया।"

भेंटवार्ता : 7 मार्च, 1978, ओरसी

☐ *बनारसीदेवी गुप्ता, खेतिहर किसान मज़दूर संघ की आयोजिका :*
"ढेर सारे बेक़सूर लोग मुक़दमेबाज़ी के शिकार हुए हैं। नक्सलवादी लोग आत्मसर्पण में विश्वास नहीं करते। उनका तरीक़ा तब तक कारगर नहीं होगा जब तक उन्हें ग़रीबों की प्रवृत्ति बदलने में सफलता नहीं मिल जाती।"

भेंटवार्ता : 7 मार्च, 1978, सरैया, बड़हरा

☐ *रामगोपाल तिवारी, बड़हरा के बगनगावा गाँव के मुखिया :*
"भोजपुर में नक्सलवाद व्यक्तिगत अंतर्विरोधों के कारण जन्म ले सका है।

किसी के साथ बलात्कार की घटना हुई, फिर संघर्ष शुरू हुआ और आगे बढ़ता गया।"

भेंटवार्ता, 8 मार्च, 1978

☐ *बगनगावा, बड़हरा का एक दुसाध :*
"नक्सलवादियों ने हमें कुछ बातें सिखलायीं। इस ज़मीन पर हमारा हक़ है। हमें बेहतर मज़दूरी मिलनी चाहिए। हमें इज्ज़त मिलनी चाहिए।"

☐ *रामेश्वरप्रसाद, बलिगाँव हाई स्कूल, सेमराँव के हेडमास्टर :*
"उत्पीड़न का अंत नहीं। मुझे इसलिए गालियाँ दी गयीं कि मैं ज़मींदार के सामने बैठा रहा। नक्सलवादी आंदोलन मुख्यतया इज्ज़त की लड़ाई है।"

भेंटवार्ता : 12 मार्च, 1978

☐ *रामेश्वरप्रसाद सिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०, हदियाबाद, जगदीशपुर के एक ज़मींदार :*
"हम बेहतर मज़दूरी देना चाहते हैं लेकिन रासायनिक खाद मँहगा है, इस प्रकार हम मज़दूरों को उनकी माँग के मुताबिक़ नहीं दे सकते।"

भेंटवार्ता : 12 मार्च, 1978

☐ *बरनाव, जगदीशपुर में पुलिस द्वारा छापा डाले जाने के दौरान संदिग्ध व्यक्ति के रूप में गिरफ़्तार सकलदेव महतो की माँ :*
"क्या आप बता सकते हैं कि मेरा बेटा कहाँ है ?"

☐ *इचरी, जगदीशपुर की भूमिहीन महिलाएँ :*
"जमींदार हमारे ऊपर जुलुम करते हैं। वे हमसे अपने खेतों में काम कराते हैं और हमारा हिस्सा अनाज भी नहीं देते। नक्सलवादियों में क्या खराबी है ?"

☐ *रामप्रीत सिंह, 1974 की शांति समिति के एक सदस्य :*
"समूचा संघर्ष 3 सेर खेसारी को लेकर है। यह एकवारी में जगदीश महतो पर हमले के साथ शुरू हुआ। इसके बाद ज़मींदारों की हत्याएँ हुईं। वे बड़े ज़मींदार नहीं थे—केवल लठैत थे। वे ऐसे लोग थे जो अपनी संपत्ति और ताक़त से संतुष्ट होकर ज़मींदारों की तरह बैठे नहीं रहते थे। वे खेतों पर जाकर हाँक लगाते थे, "कहाँ गये सारे नक्सलवादी मैं उन्हें देख लूँगा" और

फिर मौत के घाट उतार दिये जाते थे। चवरी, एकवारी, बेरथ, बंसीडेहरी जैसे अधिकांश स्थानों में मजदूरी के सवाल पर गड़बड़ी शुरू हुई। दूसरा कारण औरतों की इज्जत के साथ खेलना रहा है। नक्सलवादियों ने जिन्हें मारा है उनमें से अधिकांश दुराचारी और लम्पट रहे हैं। फ़िलहाल भोजपुर में इन गतिविधियों में कमी है, लेकिन संघर्ष जारी है। जनता धमकियों के आगे नहीं झुकेगी। इसके अलावा पुलिस की भूमिका भी अजीब है। वे जितना ही हरिजनों की हत्या करेंगे, उतना ही संघर्ष बढ़ेगा। लेनिन ने कहा ही था कि हमारे ऊपर जार जितना ही अत्याचार करेगा, हमारी पार्टी उतनी ही मजबूत होगी।"

भेंटवार्ता : 16 मार्च, 1978

☐ *कमलेशकुमार सिन्हा, अ० ना० सिन्हा समाज अध्ययन संस्थान, पटना के कर्मचारी :*

"सहार बाजार में हरिजनों ने बातचीत के दौरान कहा—'यह एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या है। इस समस्या को सरकार कभी भी अपनी विभिन्न एजेंसियों के जरिए नहीं हल कर सकती। नक्सलवादी लोग खुद ही इस समस्या को हल करेंगे।' आंदोलन के बारे में बातचीत के दौरान उन्होंने कहा, 'यह कोई आंदोलन नहीं है। यह, जैसा कि मार्क्स ने कहा है, एक वर्ग-संघर्ष है।' आंदोलन के बारे में जब हमने कुछ तथ्यों की जानकारी चाही तो उन्होंने कहा, 'बेहतर हो कि आप ज़मींदारों से ही जाकर बात करें। वे जो बतायें उसका उलटा आप समझिये, तब आपको आंदोलन की सही तसवीर मिल जायेगी।' आंदोलन के बारे में किसी भी हरिजन ने एक शब्द नहीं बताया।"

('भोजपुर ज़िले के सहर ब्लाक की एक क्षेत्र-यात्रा, अगस्त, 1978' का अंश)

☐ *गिरजानंदन प्रसाद, चवरी गोलीकांड जाँच आयोग (31 दिसम्बर, 1975) के एकमात्र सदस्य। 189 पृष्ठ की अपनी रिपोर्ट के अंत में उन्होंने लिखा :*

"नक्सलवादी हिंसा के बढ़ते आतंक से निबटने के लिए स्थानीय पुलिस-अधिकारी ठीक ढँग से लैस नहीं थे और वे नक्सलवादी अपराधियों तथा नक्सलवादी अपराधों को क़ानून और व्यवस्था की आम समस्या के रूप में देखते थे। उनके सामने एक और अड़चन यह थी कि नक्सलवादी पार्टी एक राजनीतिक पार्टी थी जो सरकार द्वारा प्रतिबंधित नहीं थी। दरअसल इस सच्चाई को जब महसूस किया गया तब काफ़ी देर हो गयी थी कि चवरी

गाँव में नक्सलवादी गतिविधियों से निबटने के लिए एक ठोस कार्यनीति की जरूरत है। लगभग एक वर्ष बाद पुलिस द्वारा सोनाटोला पर छापा मारने के समय जो नीति तैयार की गयी थी उसका अनुसरण करते हुए उच्च अधिकारियों से स्थानीय पुलिस को उचित निर्देश और साज-सामान पहले ही मिल जाने चाहिए थे ताकि वे स्थिति का सामना कर सकें।"

☐ *बी० एन० सिन्हा, डी० आई० जी० (नागरवादी)*

"इस हिंसा में मृत अथवा घायल लोगों तथा साथ ही मृत अथवा घायल नक्सलवादियों की बारीकी से जाँच करने पर एक दिलचस्प रहस्योद्घाटन होता है और यह भ्रम दूर हो जाता है कि यह महज हरिजनों और ऊँची जाति के बीच का संघर्ष है। इस इलाक़े में जिस विचारधारा का प्रचार किया जा रहा है वह एकदम स्पष्ट हो जाता है।"

"नक्सलबाड़ी से एकवारी तक" का एक अंश,
'द सर्चलाइट', 11 जून, 1975

☐ *उमेशचंद, सुशीलकुमार और अरुणकुमार—संघर्षवाहिनी के सदस्य जिन्होंने 1978 के प्रारंभ में भोजपुर के गाँवों की यात्रा की :*

"नक्सलवादी आंदोलन की ताक़त और कमजोरी के बारे में चाहे जो भी रवैया रहा हो, पर एक बात स्पष्ट है—हम इसे दबाना नहीं चाहते। इसके अनुभवों का अध्ययन और मूल्यांकन करने के बाद हम यही चाहते हैं कि हत्या की घटनाएँ अब समाप्त हो जायें। सहार के गाँवों में जो चेतना पैदा हुई वह खत्म नहीं होनी चाहिए, बल्कि इस चिनगारी को सही ढँग से और तेज प्रकाश में बदल जाना चाहिए—और ग्रामीणों को अपने अधिकार मिलने चाहिए।"

"सहार रिपोर्ट" का एक अंश

☐ *'द सर्चलाइट', 22 अक्तूबर, 1979*

"नक्सलवादी शब्द की उत्पत्ति नक्सलबाड़ी से है—यह आंदोलन संक्रामक था और बिहार तक पहुँच गया। 1968 में मुजफ़्फ़रपुर ज़िले में 12 गाँवों के एक छोटे-से ब्लाक मुसहरी में यह आग भड़क उठी। इसके फ़ौरन बाद इसका अन्य स्थानों में प्रसार हुआ और 1975 में शाहाबाद तथा पटना ज़िले इससे प्रभावित हुए। इसके बाद से सैकड़ों नक्सलवादी, किसान और पुलिस कर्मचारी मुठभेड़ों में मारे गये। सरकार ने समस्या के समाधान के लिए अब तक कोई ठोस क़दम नहीं उठाया है।"

☐ 'द हिन्दुस्तान टाइम्स', ईवनिंग न्यूज़, 7 नवम्बर, 1979
"दक्षिण बिहार में भोजपुर जिले के लगभग उन आधा दर्जन अंचलों में बिहार सरकार की हुकूमत नहीं चल रही है जिन्हें 'नक्सलवादियों ने मुक्त' करा रखा है।"

• •